श्री धनमुनि 'प्रथम'

६

तप.
.कर्म. मानवता.
मनुष्य का कर्तव्य.
गुण. भलाई. गुणज्ञ.
संगठन आत्म-विश्वास. मोक्ष
.विनय. नम्रता संसार का स्वरूप ममता
अपमान. कषाय नरक संसार संतोष. क्षमा
मनुष्यलोक कुमित्र प्रमादत्याग क्रोध. वैर. वैरत्याग
मित्र के गुण-दोष. ईर्ष्या. कलह से हानि. तृष्णा-विजय
तृष्णा. अपरिग्रह. निद्रा. स्वप्न. सोने का समय. भय
कर्मबंध के कारण. भोजन की शुद्धि. अभयदाता
.भोजन की मात्रा. हास्य. विद्वान
शिक्षा. शिक्षा-ग्रहण. निन्दा निषेध
विद्या. विद्या के पात्र. मूर्ख. मूर्खता. ज्ञान
मूर्खता के उदाहरण व्रत. शील. सभ्यता
घृणा. शोक. आंसू योगियों के चमत्कार
कवि-प्रशंसा योग. स्थविर
रिवाज भयभीत

वक्तृत्वकला के बीज

स्त्री के दोष.
.विवाह. पुनर्विवाह.
कन्यादान. असत्य की निंदा
.चोरी. चोरी का त्याग. ईमानदार
सत्य वचन. सच्चे व्यक्ति
.ईश्वर. भक्त.

६

वक्तृत्व-कला के बीज

श्री धनमुनि "प्रथम"

[सर्वाधिकार सुरक्षित—प्रबन्ध-संपादक के लिए]

वक्तृत्वकला के बीज

भाग ६

समन्वय-प्रकाशन

सम्पादन-सहयोग :
स्व० श्री लालचंदजी बैद (भादरा)

प्रबन्ध-सम्पादक :
मोतीलाल पारख

प्रकाशक :
बेगराज भंवरलाल चौरड़िया—चैरिटेबल ट्रस्ट,
५, सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता १

संस्करण :
वि० सं० २०३० चैत्र सुदि १३
महावीर जयंती
अप्रेल १९७३
२१०० प्रतियां

70 मूल्य :
~~चार~~ रुपया ~~पचास पैसे~~

मुद्रक :
संजय साहित्य संगम, आगरा–२ के लिए—
रामनारायन मेड़तवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजा की मंडी, आगरा–२ ।

उन जिज्ञासुओं को

जिनकी उर्वर-मनोभूमि में

ये बीज

अंकुरित

पुष्पित

फलित हो

अपना विराट्रूप प्राप्त कर सकें !

प्राप्तिकेन्द्र :

- श्री बेगराज भँवरलाल चोरड़िया—
  चैरिटेबल ट्रस्ट,
  ५, सीनागोग स्ट्रीट
  कलकत्ता-१

●

- श्री मोतीलाल पारख
  C/o दि अहमदाबाद लक्ष्मी काटन मिल्स, कं० लि०
  पो० बा० नं० ४२
  अहमदाबाद—२२

●

- श्री सम्पतराय बोरड़
  C/o मदनचंद संपतराय बोरड़
  ४०, धानमंडी,
  श्रीगंगानगर (राजस्थान)

प्राक्कथन

मानव-जीवन में वाचा की उपलब्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठान है, **वाचा सरस्वती भिषग्**[1]—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वयं सरस्वती-रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचाररूप रोगों को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावों को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बड़ा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी मूकपशुओं की तरह भीतर-ही-भीतर घुटकर समाप्त नहीं हो जाता? मनुष्य जो गूँगा होता है, वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है, फिर भी अपना सही आशय कहां समझा पाता है दूसरों को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुतः एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नहीं है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय में ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हें जीवन भर नहीं भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्‌महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान् प्रवक्ता थे, जिनकी वाणी का

---

१ यजुर्वेद १९।१२

नाद आज भी हजारों-लाखों लोगों के हृदयों को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओं में भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न बुझी है और न बुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नहीं बन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एवं अनुभव का आयाम बहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन-चिंतन एवं अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एवं चिरस्थाई बनाता है। बिना अध्ययन और विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भषण (भोंकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे ; यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नहीं है, तो वह सभा में हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसलिए बहुत प्राचीनयुग में एक ऋषि ने कहा था—**वक्ता शतसहस्रेषु**', अर्थात् लाखों में कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनिश्री धनराजजी जैनजगत् के यशस्वी प्रवक्ता है। उनका प्रवचन, वस्तुतः प्रवचन होता है। श्रोताओं को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एवं मन्त्रमुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बड़े व्यापक एवं गंभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी ! मालूम होता है, उन्होंने पांडित्य को केवल छुआ भर नहीं है, किन्तु समग्रशक्ति के साथ उसे गहराई से अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक **'वक्तृत्वकला के बीज'** में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति में जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदों से लेकर उपनिषद् ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतें, रूपक, ऐतिहासिक घटनाएँ, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएँ—इस प्रकार शृंखला-बद्धरूप में संकलित हैं कि किसी भी विषय पर हम बहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। सचमुच वक्तृत्वकला के अगणित बीज इसमें सन्निहित हैं। सूक्तियों का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है। अंग्रेजी

साहित्य व अन्य धर्मग्रंथों के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसंग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नहीं है, उनमें विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उसपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है, जैसे मुनिश्री जी वाङ्मय के रूप में विराट् पुरुष हो गए हैं। जहाँ पर भी दृष्टि पड़ती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है, जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसंगतः अपने भाषण में उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओं के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—'वक्तृत्वकला के बीज' में मुनिश्री का अपना क्या है? यह एक संग्रह है और संग्रह केवल पुरानी निधि होती है; परन्तु मैं कहूंगा—कि फूलों की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एवं विभिन्न रंगों के मोहक पुष्पों की माला बनाता है तो उसमें उसका अपना क्या है? बिखरे फूल, फूल हैं, माला नहीं। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रंग-बिरंगे फूलों का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप में संयोजन करना—यही तो मालाकार का काम है, जो स्वयं में एक विलक्षण एवं विशिष्ट कलाकर्म है। मुनिश्री जी वक्तृत्वकला के बीज में ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयों का उपयुक्त चयन एवं तत्सम्बन्धित सूक्तियों आदि का संकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का संकलन अन्यत्र इस रूप में नहीं देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनिजी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओं ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशंसक रहा हूं। श्री धनमुनि जी उनके बड़े भाई हैं—जब यह मुझे ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब कैसे कहूं कि इन दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूँ। उनकी बहुश्रुतता एवं इनकी संग्रह-कुशलता से मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनिश्री जी, और उनकी इस महत्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूं। विभिन्न भागों में प्रकाशित होनेवाली इस विराट् कृति से प्रवचनकार, लेखक एवं स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के लिए ऋणी रहेंगे। वे जब भी चाहेंगे, वक्तृत्वकला के बीज में से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नहीं रहेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रवक्तृ-समाज—मुनिश्रीजी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-३
आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि

●●

मंगल-संदेश

मनुष्य विभिन्न शक्तियों का स्रोत है। नहीं, वह अनन्तशक्तियों का स्रोत है।

पर, जिन-जिन शक्तियों को अभिव्यक्त होने का समय और साधन मिल पाता है वही हमारे सामने विकसित रूप से प्रगट होती है, शेष अनभिव्यक्त रूप में अपना काम करती रहती हैं।

संग्राहक शक्ति भी उन्हीं में से एक है, जो अन्वेषण-प्रधान है और दूसरों के लिए बहुत उपयोगी बन जाती है।

मक्खन का आस्वादन करना एक बात है, पर उसे दही में से मथकर निकालकर संग्रहीत करना एक विशिष्ट शक्ति है।

मुनि श्री धनराजजी (सिरसा) में यह शक्ति अच्छी विकसित हुई है। शुरू से ही उनकी यह धुन रही है, आदत रही है, वे बराबर किसी न किसी रूप में खोज करते रहते हैं और फिर उसको संग्रहीत कर एक आकार दे देते हैं। वह साहित्य बन जाता है, जन-जन की खुराक बन जाता है।

"वक्तृत्वकला के बीज" एक ऐसी ही कृति हमारे समक्ष प्रस्तुत है जो मुनि धनराजजी की संग्राहकशक्ति का एक विशिष्ट उदाहरण है। उसमें प्राचीन, अर्वाचीन अनेक ग्रन्थों का मन्थन है, अनेक भाषाओं का प्रयोग है। मूल उद्धरण के साथ हिन्दी अनुवाद देकर और सरसता उसमें लाई गई है। बड़ा सुन्दर प्रयास है। अपनी वक्तृत्वकला का विकास चाहनेवाले वक्ता के लिए बहुत उपयोगी है यह ग्रन्थ, जो अनेक भागों में विभक्त है। मेरा विश्वास है--यह प्रयत्न बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय सिद्ध होगा।

—आचार्य तुलसी

चूरू
११ सितम्बर १९७२

सम्पादकीय

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह बहुत बड़ी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एवं परिस्थितियों का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणों की साधना एवं विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुतः हजारों लाखों में कोई एकाध ही मिलते हैं।

तेरापंथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी में वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढंग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओं के मध्य लाखों नर-नारियों ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उसके मधुर प्रभाव को जीवन में अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनिश्री धनराजजी भी वास्तव में वक्तृत्वकला के महान गुणों के धनी एक कुशल प्रवक्ता संत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापंथ शासन में सर्वप्रथम अवधानकार भी है; इन सबके साथ-साथ बहुत बड़े विद्वान् तो हैं ही। उनके प्रवचन जहां भी होते हैं, श्रोताओं की अपार भीड़ उमड़ आती है। आपके विहार करने के बाद भी श्रोता आपकी याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करे और उसका सदुपयोग करे, अतः जनसमाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियों का यह विशाल संग्रह प्रस्तुत किया है।

बहुत समय से जनता की विद्वानों की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियों की मांग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जनहिताय प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारना प्रारंभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में श्री डूंगरगढ़, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, उकलाना, कैथल, हांसी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियों एवं युवकों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियों में यह सामग्री संकलित हुई है। हम इस विशाल संग्रह को विभिन्न भागों में प्रकाशित करने का संकल्प लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए है।

परमश्रद्धेय आचार्य प्रवर ने पुस्तक के लिए अपना **मंगल-संदेश** देकर इस प्रयत्न को प्रोत्साहित किया—उनके प्रति मैं हृदय की असीम श्रद्धा व्यक्त करता हूं। तथा पुस्तक की महत्ता और उपयोगिता के अनुसार ही इसकी भूमिका लिखी है जैनसमाज के बहुश्रुत विद्वान् तटस्थ विचारक उपाध्याय श्री अमर-मुनि जी ने। उनके इस अनुग्रह का मैं हृदय से आभारी हूं।

इसके प्रकाशन का समस्त भार श्री बेगराज भंवरलाल जी चोरड़िया, चैरिटेबल ट्रस्ट, कलकत्ता ने वहन किया है, इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। इसके प्रकाशन एवं प्रूफ संशोधन-मुद्रण आदि की समस्त व्यवस्था 'संजय-साहित्य-संगम' के संचालक श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने की है, तथा अन्य सहयोगियों का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओं और लेखकों के लिए एक संदर्भग्रंथ (विब्लोग्राफी) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा।....

आ त्म नि वे द न

'मनुष्य की प्रकृति का वदलना अत्यन्त कठिन हैं'—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक साबित हुई। बचपन में जब मैं कलकत्ता—श्री जैनश्वेताम्वर तेरापंथी-विद्यालय में पढ़ता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्राय: प्रति-दिन एक आना मिलता था। प्रकृति में संग्रह करने की भावना अधिक थी, अत: मैं खर्च करके भी उसमें से कुछ न कुछ बचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम संवत् १९७९ में अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी, मैं, छोटी बहन दीपांजी और छोटे भाई चन्दन-मल जी) परमकृपालु श्रीकालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयों-पैसों का संग्रह छोड़ दिया, फिर भी संग्रहवृत्ति नहीं छूट सकी। वह धनसंग्रह से हटकर ज्ञानसंग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणों में हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ़ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढ़ने में अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हें लिख लेता या संसार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा संग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा में कह दिया करते थे कि "धन्नू तो न्यारा में जाने की [अलग विहार करने की] तैयारी कर रहा है।" उत्तर में मैं कहा करता—क्या आप गारंटी दे सकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही

रखेंगें ? क्या पता, कल ही अलग विहार करने का फरमान करदें ! व्याख्यानादि का संग्रह होगा तो धर्मोपदेश या धर्म-प्रचार करने में सहायता मिलेगी।

समय-समय पर उपरोक्त साथी मुनियों का हास्य-विनोद चल ही रहा था कि वि० सं० १९८६ में श्री कालुगणी ने अचानक ही श्रीकेवलमुनि को अग्रगण्य बनाकर रतननगर (थेलासर) चातुर्मास करने का हुक्म दे दिया। हम दोनों भाई (मैं और चन्दन मुनि) उनके साथ थे। व्याख्यान आदि का किया हुआ संग्रह उस चातुर्मास में बहुत काम आया एवं भविष्य के लिए उत्तमोत्तम ज्ञानसंग्रह करने की भावना बलवती बनी। हम कुछ वर्ष तक पिताजी के साथ विचरते रहे। उनके दिवंगत होने के पश्चात् दोनों भाई अग्रगण्य के रूप में पृथक्-पृथक् विहार करने लगे।

विशेष प्रेरणा—एक बार मैंने 'वक्ता बनो' नाम की पुस्तक पढ़ी। उस में वक्ता बनने के विषय में खासी अच्छी बातें बताई हुई थीं। पढ़ते-पढ़ते यह पंक्ति दृष्टिगोचर हुई कि "कोई भी ग्रन्थ या शास्त्र पढ़ो, उसमें जो भी बात अपने काम की लगे, उसे तत्काल लिख लो।" इस पंक्ति ने मेरी संग्रह करने की प्रवृत्ति को पूर्वापेक्षया अत्यधिक तेज बना दिया। मुझे कोई भी नई युक्ति, सूक्ति या कहानी मिलती, उसे तुरन्त लिख लेता। फिर जो उनमें विशेष उपयोगी लगती, उसे औपदेशिक भजन, स्तवन या व्याख्यान के रूप में गूंथ लेता। इस प्रवृत्ति के कारण मेरे पास अनेक भाषाओं में निबद्ध स्वरचित सैकड़ों भजन और सैकड़ों व्याख्यान इकट्ठे हो गए। फिर जैन-कथा साहित्य एवं तात्त्विकसाहित्य की ओर रुचि बढ़ी। फलस्वरूप दोनों ही विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना हुई। उनमें छोटी-बड़ी लगभग २० पुस्तकें तो प्रकाश में आ चुकीं, शेष ३०-३२ अप्रकाशित ही हैं।

एक बार संगृहीत-सामग्री के विषय में यह सुझाव आया कि यदि प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया जाए, तो यह उत्कृष्ट उपयोगी चीज बन जाए। मैंने इस सुझाव को स्वीकार किया और अपने प्राचीन-संग्रह को व्यवस्थित करने में जुट गया। लेकिन पुराने संग्रह में कौन-सी सूक्ति, श्लोक या हेतु किस ग्रन्थ या शास्त्र के हैं अथवा किस कवि,

वक्ता या लेखक के हैं—यह प्रायः लिखा हुआ नहीं था। अतः ग्रन्थों या शास्त्रों आदि की साक्षियां प्राप्त करने के लिए—इन आठ-नौ वर्षों में वेद, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, पुराण, कुरान, बाइबिल, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, संगीत शास्त्र तथा अनेक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, मराठी एवं पंजाबी सूक्तिसंग्रहों का ध्यानपूर्वक यथासम्भव अध्ययन किया। उससे काफी नया संग्रह बना और प्राचीन संग्रह को साक्षी सम्पन्न बनाने में सहायता मिली। फिर भी खेद है कि अनेक सूक्तियां एवं श्लोक आदि बिना साक्षी के ही रह गए। प्रयत्न करने पर भी उनकी साक्षियां नहीं मिल सकीं। जिन-जिन की साक्षियां मिली हैं, उन-उनके आगे वे लगा दी गई हैं। जिनकी साक्षियां उपलब्ध नहीं हो सकीं, उनके आगे स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। कई जगह प्राचीन-संग्रह के आधार पर केवल महाभारत, वाल्मीकिरामायण, योग-शास्त्र आदि महान् ग्रन्थों के नाममात्र लगाए हैं, अस्तु !

इस ग्रन्थ के संकलन में किसी भी मत या सम्प्रदाय विशेष का खण्डन-मण्डन करने की दृष्टि नहीं है, केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि कौन क्या कहता है या क्या मानता है ? यद्यपि विश्व के विभिन्न देशनिवासी मनीषियों के मतों का संकलन होने से ग्रन्थ में भाषा की एकरूपता नहीं रह सकी है। कहीं प्राकृत-संस्कृत, पारसी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा है तो कहीं हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी और बंगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओं के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा में कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ में भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थों, कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा में व्यक्त किए हैं तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा में ही बोले हैं। मुझे जिस रूप में जिसके जो विचार मिले हैं, उन्हें मैंने उसी रूप में अंकित किया है लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वद्य-सिद्धान्तों के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ में उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमों के गम्भीर पद्य हैं, वेदों, उपनिषदों के अद्भुत मंत्र हैं,

स्मृति एवं नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं, वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तियां, लोकोक्तियां, हेतु, दृष्टान्त एवं छोटी-छोटी कहानियाँ भी हैं। अतः यह ग्रन्थ निःसंदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एवं हृदयग्राही बना सकेंगे एवं अद्भुत विचारों का विचित्र चित्रण करके उनमें निखार ला सकेंगे, अस्तु !

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्तृत्वकला के बीज' रखा गया है। वक्तृत्वकला की उपज के निमित्त यहां केवल बीज इकट्ठे किए गए हैं। बीजों का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहां करना—यह वप्ता [बीज बोनेवालों] की भावना एवं बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वप्ता परमात्मपदप्राप्तिरूप फलों के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रों में इन बीजों का वपन करेंगे। अस्तु !

यहां मैं इस बात को भी कहे बिना नहीं रह सकता कि जिन ग्रन्थों, लेखों, समाचार पत्रों एवं व्यक्तियों से इस ग्रन्थ के संकलन में सहयोग मिला है—वे सभी सहायकरूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

यह ग्रन्थ कई भागों में विभक्त है एवं उनमें सैकड़ों विषयों का संकलन है। उक्त संग्रह बालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्यश्री तुलसी को भेंट किया। उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एवं फरमाया कि इसमें छोटी-छोटी कहानियाँ एवं घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाएं। आचार्यश्री का आदेश स्वीकार करके इसे संक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओं से सम्पन्न किया गया।

मुनि श्री चन्दनमलजी, डूंगरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एवं साध्वियों ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। बीदासर महोत्सव पर कई संतों का यह अनुरोध रहा कि इस संग्रह को अवश्य धरा दिया जाए !

सर्व प्रथम वि० स० २०२३ में श्री डूँगरगढ़ के श्रावकों ने इसे धारना शुरू किया। फिर थली, हरियाणा एवं पंजाब के अनेक ग्रामों-नगरों के उत्साही युवकों के तीन वर्षों के अथकपरिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से अपने बुद्धि वैभव को क्रमशः बढ़ाते जायेंगे—

वि० सं० २०२७, मृगसर बदी ४
मङ्गलवार, रामामंडी, (पंजाब)

—**धनमुनि 'प्रथम'**

अनुक्रमणिका

पहला कोष्ठक : पृष्ठ १ से ६३ तक

१ सज्जन (सत्पुरुष), २ सज्जनों का स्वभाव, ३ सज्जनों के स्वभाव की निश्चलता, ४ सत्संगति, ५ सत्संगति का प्रभाव, ६ दुर्जन (दुष्ट), ७ दुर्जनों का स्वभाव, ८ दुर्जनसंग-परित्याग, ९ कुसंगति का असर, १० कुसंगति से हानि, ११ दुष्टों का सुधार कठिन, १२ दुर्जनों के साथ व्यवहार, १३ धूर्त-दगाबाज, १४ ढोंग और ढोंगी, १५ सज्जन-दुर्जन का अन्तर, १६ भलाई-सज्जनता, १७ बुराई-दुर्जनता, १८ भलाई बुराई की अमरता, १९ संगति के अनुसार गुण-दोष, २० महान्पुरुष-महात्मा, २१ महापुरुषों का पराक्रम, २२ महान् पुरुषों के विषय में विविध, २३ महापुरुषों का सम्पर्क, २४ बड़ा आदमी और बड़प्पन, २५ उत्तमपुरुष, २६ उत्तमपुरुषों का स्वभाव, २७ अधम (नीच) पुरुष, २८ शारीरिक दोष पर आधारित अधमता, २९ धीर-पुरुष, ३० धैर्य, ३१ उत्तावल, ३२ तेजस्वीपुरुष, ३३ समर्थपुरुष, ३४ शूरवीर पुरुष, ३५ कायर, ३६ शूरता और कायरता, ३७ बलवान व्यक्ति, ३८ अद्‌भुत बलिष्ठ व्यक्ति, ३९ निर्बल, ४० बल-पराक्रम, ४१ कुलीन पुरुष।

दूसरा कोष्ठक : पृष्ठ ९४ से १७४ तक

१ गुण, २ गुणों का महत्व, ३ विभिन्न प्रकार के गुण, ४ गुणों का नाश एवं प्रकाश, ५ गुणज्ञ, ६ गुणी, ७ गुणग्राहक बनो! ८ गुणग्राही के अभाव में, ९ गुणहीन, १० गुणहीन नाम, ११ दोष, १२ स्वदोष, १३ पर-दोष, १४ गुणों में दोष १५ दृष्टि-दोष एवं उसके आश्चर्य, १६ उपकार (अहसान), १७ परोपकार, १८ प्रत्युपकार (उपकार का बदला), १९ कृतज्ञता और कृतज्ञ, २० परोपकारी, २१ निरुपकारी, २२ कृतघ्न, २३ उदार और उदारता, २४ दाता,

२५ दाता के उदाहरण, १६ दान, २७ दान की महिमा, २८ दान की प्रेरणा, २६ दान में विवेक, ३० दान के भेद, ३१ अभयदान, ३२ सुपात्रदान, ३३ कुपात्रदान, ३४ पात्र-कुपात्र, ३५ ज्ञानदान, ३६ कृपण, ३७ याचक, ३८ याचना।

तीसरा कोष्ठक : पृष्ठ १७५ से २३४

१ धन, २ धन की भूख, ३ धन का प्रभाव, ४ धन का उत्पादन, ५ धन का उपयोग, ६ धन का खजाना अमेरिका में, ७ धन के विविधरूप, ८ धन की निंदनीयता, ९ अन्याय का धन, १० न्यायार्जित धन, ११ वास्तविक धन, १२ लक्ष्मी, १३ लक्ष्मी का मूल आदि, १४ लक्ष्मी की नश्वरता एवं अस्थिरता, १५ लक्ष्मी का निवास, १६ लक्ष्मी के अप्रिय स्थान, १७ लक्ष्मी के विकार, १८ धनवान, १९ दुनिया के बड़े धनी, २० धनिकों की स्थिति, २१ निर्धन और निर्धनता, २२ गरीब और गरीबी, २३ गरीबी के चित्र, २४ दरिद्र, २५ दरिद्रता, २६ आय, २७ व्यय, २८ अपव्यय निषेध, २९ ऋण (कर्ज), ३० उधार, ३१ संग्रह, ३२ व्याज।

चौथा कोष्ठक : पृष्ठ २३५ से ३१६ तक

१ आत्मा, २ आत्मा का स्वरूप, ३ आत्मा की शाश्वतता आदि, ४ आत्मा का कर्तृत्त्व, ५ आत्मा का दर्शन, ६ आत्मा का ज्ञान, ७ आत्मज्ञ, ८ आत्मरक्षा, ९ आत्मकरक्षक, १० आत्मसम्मान, ११ आत्मविश्वास, १२ आत्मप्राप्ति, १३ आत्मशुद्धि, १४ आत्मदमन, १५ आत्मविजय, १६ आत्मचिन्तन, १७ आत्मा की महिमा, १८ आत्मा के भेद, १९ इन्द्रिय, २० इन्द्रियों की शक्ति, २१ इन्द्रियदमन, २२ जितेन्द्रिय, २३ कान और बधिरता, २४ आँख, २५ अन्धा, २६ जिह्वा, २७ मन, २८ मन का स्वभाव, २९ मन के आश्रित बन्ध-मोक्षादि, ३० मन की मुख्यता, ३१ मन के बिना कुछ नहीं, ३२ मनःशुद्धि, ३३ मनः-शुद्धि दुष्कर, ३४ मनःशुद्धि के अभाव में, ३५ मन की शिक्षा, ३६ मनोनिग्रह, ३७ मनोनिग्रह के मार्ग, ३८ मनोनिग्रह से लाभ, ३९ मन का तार, ४० विलपावर-दृढ़संकल्प, ४१ मन की उपमाएँ, ४२ मन के विषय में विविध।

चारों कोष्ठकों में कुल १५३ विषय तथा दस भागों में लगभग १५०० विषय एवं उपविषय हैं।

वक्तृत्वकला के बीज

[भाग ६]

अकारादि क्रम-विषयानुक्रमणिका

अद्‌भुतबलिष्ठ व्यक्ति	८६	आत्मा की महिमा	२६६
अधम (नीच) पुरुष	६५	आत्मा की शाश्वतता	
अन्धा	२८३	आदि	२३६
अन्याय का धन	१६४	आय	२२३
अपव्यय-निषेध	२२७	इन्द्रिय	२७२
अभयदान	१५४	इन्द्रिय-दमन	२७६
आत्मचिन्तन	२६४	इन्द्रियों की शक्ति	२७४
आत्मदमन	२६०	उत्तम-पुरुष	६२
आत्मप्राप्ति	२५६	उत्तम पुरुषों का स्वभाव	६३
आत्मरक्षक	२५२	उत्तावल	७३
आत्मरक्षा	२५०	उदार और उदारता	१३८
आत्मविजय	२६२	उधार	२३०
आत्मविश्वास	२५४	उपकार (अहसान)	१२६
आत्मसम्मान	२५३	कान और बधिरता	२७६
आत्मशुद्धि	२५८	कायर	८१
आत्मज्ञ	२४८	कृतघ्न	१३६
आंख	२८१	कृतज्ञता और कृतज्ञ	१३२
आत्मा	२३५	कृपण	१६३
आत्मा का कर्तृत्व	२४१	कुपात्रदान	१५८
आत्मा का दर्शन	२४३	कुलीन-पुरुष	६२
आत्मा का स्वरूप	२३७	कुसंगति का असर	२४
आत्मा के भेद	२७०	कुसंगति से हानि	२५
आत्मा का ज्ञान	२४५	गरीब और गरीबी	२१५

गरीबी के चित्र २१७
गुण ६४
गुणग्राहक बनो ! १०६
गुणग्राही के अभाव में १११
गुणहीन ११२
गुणशून्य नाम ११४
गुणज्ञ १०३
गुणी १०४
गुणों का नाश एवं प्रकाश १०२
गुणों का महत्व ६६
गुणों में दोष १२३
जितेन्द्रिय २७८
जिह्वा २८५
ढोंग और ढोंगी ३३
तेजस्वी पुरुष ७५
दरिद्र २१६
दरिद्रता २२१
दाता १३६
दाता के उदाहरण १४२
दान १४३
दान की प्रेरणा १४६
दान की महिमा १४४
दान के भेद १५२
दान में विवेक १४६
दृष्टिदोष एवं उसके आश्चर्य १२४
दुर्जन (दुष्ट) १५
दुर्जनों का स्वभाव १८
दुर्जनों के साथ व्यवहार २६
दुर्जन संग परित्याग २२
दुनियाँ के बड़े धनी २१०
दुष्टों का सुधार कठिन २७
दोष ११६
धन १७५
धन का खजाना (अमेरिका में) १८३
धन का उत्पादन १८०
धन का उपयोग १८१
धन की निन्दनीयता १६१
धन का प्रभाव १७८
धन की भूख १७६
धनवान २०८
धन के विविधरूप १८४
धनिकों की स्थिति २१२
धीरपुरुष ६८
धूर्त-दगाबाज ३१
धैर्य ७०
न्यायार्जित धन १६५
निर्धन और निर्धनता २१३
निर्बल ८८
निरुपकारी १३५
प्रत्युपकार-उपकार का बदला १३०
परदोष १२१

परोपकार	१२८	याचना	१७१
परोपकारी	१३३	ऋण (कर्ज)	२२८
पात्र-कुपात्र	१६०	लक्ष्मी	१९७
व्याज	१३४	लक्ष्मी का निवास	२०२
बड़ा आदमी और बड़प्पन	६०	लक्ष्मी का मूल आदि	१९८
बलवान व्यक्ति	८४	लक्ष्मी की नश्वरता एवं अस्थिरता	२००
बल-पराक्रम	९०	लक्ष्मी के अप्रियस्थान	२०३
बुराई-दुर्जनता	४१	लक्ष्मी के विकार	२०५
भलाई (सज्जनता)	३८	व्यय	२२५
भलाई और बुराई की अमरता	४४	वास्तविक धन	१९६
मन	२८७	विभिन्न प्रकार के गुण	९८
मनका तार	३१०	विलपावर-दृढ़संकल्प	३१२
मनका स्वभाव	२९१	शारीरिकदोष पर आधारित अधमता	६७
मनके आश्रित बन्ध-मोक्षादि	२९६	शूरता और कायरता	८३
मन के बिना कुछ नहीं	२९७	शूरवीर पुरुष	७८
मन के विषय में विविध	३१६	स्वदोष	११९
मन की उपमाएँ	३१३	सज्जन (सत्पुरुष)	१
मन की मुख्यता	२९४	सज्जन-दुर्जन का अन्तर	३४
मन की शिक्षा	३०३	सज्जनों का स्वभाव	५
मनोनिग्रह	३०४	सत्संगति	१०
मनोनिग्रह के मार्ग	३०६	सज्जनोंके स्वभावकी निश्चलता	८
मनोनिग्रह से लाभ	३०८	सत्संगति का प्रभाव	११
मनःशुद्धि	२९९	समर्थपुरुष	७७
मनःशुद्धि के अभाव में	३०२	संग्रह	२३२
मनःशुद्धि दुष्कर	३०१	संगति के अनुसार गुण-दोष	४५
महापुरुषों का पराक्रम	५३	सुपात्रदान	१५६
महापुरुषों का सम्पर्क	५८	ज्ञानदान	१६१
महान्पुरुषोंके विषयमें विविध	५५		
महान्पुरुष-महात्मा	४९		
याचक	१६८		

भाग छठा

वक्तृत्वकला के बीज

पहला कोष्ठक

१ सज्जन (सत्पुरुष)

१. उपकारिषु यः साधुः, साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः, स साधुः सद्भिरिष्यते ॥

—पंचतन्त्र १।१६६

उपकारी के साथ उपकार करने में सज्जनता की कोई विशेषता नहीं है, किन्तु अपकार करनेवालों पर भी जो उपकार करता है, सत्पुरुष उसे ही सज्जन मानते हैं ।

२. व्यवहारों की शुद्धि और दूसरों के प्रति आदरभाव, सज्जन मनुष्य के ये ही दो लक्षण हैं ।

—डिजराइली

३. सज्जनश्च गुणग्राही ।

—सुभाषित-संचय

सत्पुरुष गुणग्राही होते हैं ।

४. स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः ।

जो परहित को ही अपना हित समझता है, वही सत्पुरुषों में अग्रगण्य है ।

५. प्रियंवदः स्यादकृपणः, शूरः स्यादविकत्थनः ।
दाता नाऽपात्रवर्षी च, प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः ॥

—हितोपदेश ३।१०५

सत्पुरुष प्रियवादी होते हुए भी उदार होते हैं, शूर होने पर भी अपनी प्रशंसा नहीं करते, दाता होने पर भी कुपात्रों को नहीं देते और साहसी होने पर भी निष्ठुर नहीं होते।

६. सज्जन ऐसा होत है, जैसे सूप सुहाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देत उड़ाय॥

—कबीर

७. सिंह-संगम सज्जन-बयण, कदली फले एक बार।
तिरिया-तेल हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

८. आदानं ही विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव।

—रघुवंश

बादलों के समान सज्जन-पुरुष भी दान करने के लिए ही किसी वस्तु को ग्रहण करते हैं।

९. कण्ठे सुधावसति वै खलु सज्जनानाम्।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

सत्पुरुषों के गले में अमृत निवास करता है।

१०. लोभं प्रयाता अपि नैव सन्तो, दुष्टामशिष्टां गिरमुद्गिरन्ति।

—रश्मिमाला १८।१३

क्षुब्ध होने पर भी सज्जन दुष्ट एवं अशिष्ट वाणी का व्यवहार नहीं करते।

११. परोपकाराय सतां विभूतयः।

—उद्भटसागर

सत्पुरुषों की विभूतियां परोपकार के लिए ही होती हैं।

१२. पारस में अरु सुजन में, बड़ो आंतरो जाण।
वो लोहा कंचन करे, वो करे आप समान॥

१३. अरे बिनोले बावरे! मन के बड़े अधीर।
आप उघाड़ो रहत है, पर का ढकै शरीर॥

१४. मुख मीठा सज्जन घणा, मिजलस मित्र अनेक।
काम पड्यां कायम रहे, सो लाखन में एक॥

१५. काछ-दृढा कर बरसणां, मन चंगा मुख-मीठ।
रण-शूरा जग-वल्लभा, सो मैं विरला दीठ॥

१६. शूराः सन्ति सहस्रशः प्रतिपदं विद्याविदोऽनेकशः।
सन्ति श्रीपतयो निरस्तधनदास्तेपि क्षितौ भूरिशः॥
किन्त्वाकर्ण्य निरीक्ष्य वान्यमनुजं दुःखार्दित यन्मन-
स्ताद्रूप्यं प्रतिपद्यते जगति ते सत्पूरुषाः पञ्चषाः॥

—**सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ५५**

कदम-कदम पर हजारों शूर-वीर हैं, अनेक विद्वान् हैं, धनद को पराजित करनेवाले लक्ष्मीपति भी बहुत हैं, किन्तु दुःखी मनुष्य को सुनकर या देखकर जिनका मन दुःख से पीड़ित हो जाता है—ऐसे सत्पुरुष विश्व में पांच-छः ही हैं अर्थात् विरले हैं।

१७. न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः

—**हर्षचरित**

संसार में ऐसे लोग हैं हो नहीं, जिनके स्वयं सज्जन होने पर भी मित्र, उदासीन और शत्रु न हों।

१८. जाके सौ सज्जन नहीं, दुर्जन नहीं पच्चास।
तसु जननी सुत जनम के, भार मरी दस मास॥

१९. सज्जनों के शीश पर, संकट रहेंगे कितने दिन!
चाँद को घेरे हुए, बादल रहेंगे कितने दिन!

२०. सज्जन व्यक्ति को समझने के लिए भी एक और सज्जन चाहिए।

—**बर्नार्डशा**

२१. मेरा तो यह भी विश्वास है कि सत्पुरुषों के कार्य का सच्चा आरम्भ उनके देहान्त के बाद होता है।

—गांधी

२२. साजन सांकड़ा ही भला।

- साजन जिसा भोजन।
- मीठी रोटी तोड़े जठी नें ही मीठी।

—राजस्थानी कहावतें

२ सज्जनों का स्वभाव

१. उपकर्तुं प्रियं वक्तुं, कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं, केनेन्दुशिशिरीकृतः ?

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ४७

उपकार करना, प्रिय बोलना और स्वाभाविक स्नेह करना—सज्जनों का चन्द्रमा के समान यह शीतल स्वभाव किसने बनाया ?

२. असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ? २८ ।।
प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथा,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ? ६४ ।।

—भर्तृहरि-नीतिशतक

असत्पुरुषों से नहीं मांगना, धनहीन मित्रका (दिया हुआ) नहीं लेना, न्याय से आजीविका चलाना, प्राणान्त में भी नीचकर्म नहीं करना, विपत्ति में अधीर न होना और महान् पुरुषों के पीछे चलना—यह खड्गधारावत् कठोर व्रत करना सज्जनों को किसने सिखाया ? २८ ।।

गुप्तदान करना, घर आये व्यक्ति का सत्कार करना, भलाई करके मौन रहना, दूसरे के किए हुए उपकार को सभा मे कहना, धन का अभिमान नहीं करना और पराई चर्चा में उसके निरादर की बात बचाकर कहना

—यह खड्गधारावत् कठोर व्रत सत्पुरुषों को किसने सिखाया ? (सिखाने वाला कोई नहीं, उनका स्वभाव ही ऐसा है।) ६४ ॥

३. वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि, को नु विज्ञातुमर्हति ?

—उत्तर रामचरित २।७

श्रेष्ठ पुरुषों के वज्र से भी कठोर और फूलों से भी कोमल चित्तों को कौन जान सकता है ?

४. अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि, वासयन्ति करद्वयम्।
अहो! सुमनसां वृत्ति-र्वामदक्षिणयोः समा।

—प्रसंग-रत्नावली

अञ्जलि-धोबे में रहे हुए फूल दोनों हाथों को सुवासित करते हैं। सद्हृदय-वालों की वृत्ति समान हुआ करती है, उसमें वाम-दक्षिण का भेद नहीं रहता।

५. कुसुमस्तबकस्येव, द्वे गती स्तो मनस्विनाम्।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य, विशीर्येत वनेऽथवा॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक–३३

फूलों के गुच्छे के समान मनस्वी पुरुषों की दो तरह की गति होती है। वे या तो सब के सिर पर रहें या वन में ही कुम्हला जाएँ।

६. के हंसा मोती चुगै, के निरणा रह जाय।

७. तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ. नेदं सिन्धावगाधता।
अलङ्घनीयता हेतु-रुभयं तन् मनस्विनि॥

—शिशुपालवध

पर्वत में ऊँचाई है, गहराई नहीं है और समुद्र में गहराई है, ऊँचाई नहीं है; किन्तु अलंघनीय होने के ये दोनों ही कारण मनस्वि-पुरुष में विद्यमान रहते हैं अर्थात् वह पर्वत के समान ऊँचा और समुद्र के समान गहरा होता है।

८. अम्बरमनूरुलङ्घ्यं, वसुन्धरा सापि वामनैकपदा।
अब्धिरपि पोतलङ्घ्यः, सतां मनः केन तुल्यं स्यात् ?

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-५०

आकाश चरणरहित सूर्य के सारथी द्वारा लांघा जाता है, पृथ्वी वामन अवतार के एक पग में समा जाती है और समुद्र जहाज से पार किया जा सकता है; किन्तु सन्तों के विशाल मन की किससे तुलना की जाय ?

३ सज्जनों के स्वभाव की निश्चलता

१. स्वभावं नैव मुञ्चन्ति, सन्तः संसर्गतोऽसताम् ।

दुष्टों का संसर्ग होने पर भी सज्जन अपना स्वभाव नहीं छोड़ते ।

२. न त्यजति रुतं मञ्जु, काकसंसर्गतः पिकः ।

—कुसुमदेव

कौवे के साथ रहने पर भी कोयल अपने मधुर वाणीविलास को नहीं छोड़ती ।

३. मूले भुजङ्गाः शिखरे विहङ्गाः, शाखासुकीशाः कुसुमेषु भङ्गाः ।
तिष्ठन् सदैवं किल दुष्टमध्ये, न चन्दनो मुञ्चति चारुगन्धम् ॥

—हितोपदेश २।१६१

मूल में सांप हैं, शिखर पर पक्षी हैं, शाखाओं पर बानर हैं और फूलों पर भंवरे हैं। इन सब दुष्टों के बीच में रहता हुआ भी चन्दन अपनी सुगन्धि को नहीं छोड़ता ।

४. युगान्ते प्रचलेन्मेरुः, कल्पान्ते सप्त सागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ॥

—चाणक्यनीति १३।२०

युगान्त में मेरु एवं कल्पान्त में सातों समुद्र चल जाते हैं; किन्तु सत्पुरुष स्वीकार किए हुए अपने सिद्धान्त से नहीं चलते ।

५. कान द्यावा पण कानू न द्यावा ।

—मराठी कहावत

सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी सज्जन अपना मार्ग नहीं छोड़ते ।

६. शिरश्छेदेपि वीरस्तु, धीरत्वं नैव मुञ्चति ।

वीर पुरुष शिर कट जाने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ता ।

७. सिंहनी मर जाती है, पर घास को खाती नहीं ।
आग में जल जाय सोना, पर चमक जाती नहीं ॥

८. **तुलसी** उत्तम प्रकृति को, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापै नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥

९. लोह-कञ्चन री लाट, रात-दिवस भेली रहै ।
कदे न लागै काट, सोना ऊपर सगतिया !

—**सोरठा संग्रह**

१०. कोकिलानां खल्वपत्यं, काक्याः पुष्टोऽपि कोकिलः ।

—**त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र ३।३**

कोयल का बच्चा कौवी द्वारा पोषे जाने पर भी कोयल ही रहता है ।

११. घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलै-
र्जलं नहि व्रजति विकारमम्बुधेः ।

— **शिशुपालवध**

मेघ के जल से भरी हुई नदियों के पानी से समुद्र कभी विकृत नहीं होता ।

१२. आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दनः किं विषायते ।

—**सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा**

जहरीले सर्पों के घेर लेने पर भी चन्दन जहरीला नहीं होता ।

१. सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति ।

—उत्तर रामचरित २।२

सज्जनों को भी सज्जनों का संग किसी विशेष पुण्य के उदय से ही मिलता है ।

२. सत्संगश्च विवेकश्च, निर्मलं नयनद्वयम् ।

—गरुड़पुराण

सत्संग और विवेक ये दोनों निर्मलनेत्र हैं ।

३. संसार विषवृक्षस्य, द्वे फले अमृतोपमे ।
सुभाषितरसास्वादः, संगतिः सुजनैः सह ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-३०

संसाररूपी विषवृक्ष के दो फल अमृतोपम हैं—एक तो सुभाषित रस का आस्वादन और दूसरा सज्जनों का संगम ।

४. सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः, स चेत् त्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः, सतां सङ्गो हि भेषजम् ॥

—हितोपदेश ५।६३

सभी प्रकार के संग (आसक्ति) का त्याग करो । न कर सको तो सत्पुरुषों का संग करो; क्योंकि सत्संग ही दिव्य औषधि है ।

५. सद्भिरेव सहासीत, सद्भिः कुर्वीत संगतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च, नासद्भिः किंचिदाचरेत् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार पृष्ठ-१५९

सज्जनों के साथ बैठो ! उन्हीं की संगति करो ! तथा उन्हीं से विवाद एवं मित्रता करो ! दुर्जनों के साथ कुछ भी मत करो !

५ सत्संगति का प्रभाव

१. जाड्यं धियो हरित सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्ति,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ?

—भर्तृहरि-नीतिशतक-२३

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य को सींचती है, सम्मान की वृद्धि करती है, पापों को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दशों दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है। अब तुम ही कहो ! सत्संगति मनुष्यों का क्या काम नहीं करती ?

२. मित्तो हवे सत्तपदेन होति, सहायो पन द्वादसकेन होति।
मासड्ढमासेन च ञाति होति, ततुत्तरिं अत्तसमो पि होति ॥

—जातक-१।८३।८३

सत्पुरुषों के साथ सात कदम चलने से व्यक्ति मित्र हो जाता है, बारह कदम चलने से सहायक हो जाता है। महीना-पन्द्रह दिन साथ रहने से शान्ति बन्धु बन जाता है, और इससे अधिक साथ रहने से तो आत्मा के समान ही हो जाता है।

३. दर्शन-ध्यान-संस्पर्शाद्, मत्स्यी कूर्मी च पक्षिणी ।
शिशुं पालयते नित्यं, तथा सज्जनसंगतिः ॥

—चाणक्यनीति ५।३

मछली, कछुई और पक्षिणी क्रमशः जैसे—दर्शन, ध्यान और स्पर्श से

बच्चों का पालन करती हैं, सत्संगति भी ठीक वैसे ही व्यक्ति का संरक्षण करती है।

४. क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका,
भवति भवार्णवतरणे नौका।

—शङ्कराचार्य

क्षणभर की सत्संगति संसारसमुद्र से तारने के लिए एक नाव के समान हो जाती है।

५. तात ! स्वर्ग- अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव-सतसंग ॥

—रामचरितमानस

६. तुलयामि लवेनापि, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य, मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

—श्रीमद्भागवत १।१८।१३

भगवत्संगी प्रेमियों के निमेष-मात्र सङ्ग की तुलना स्वर्ग-अपवर्ग के साथ भी नहीं की जा सकती, फिर मर्त्यलोक के राज्यादि सम्पत्ति की तो बात ही क्या !

७. दस हजार वर्ष की तपस्या और आधे क्षण का सत्संग—

एक बार महर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ में एक विवाद हो गया। विश्वामित्र तप को बड़ा कह रहे थे और वशिष्ठ सत्संग को। निर्णय के लिए दोनों शेषनाग के पास पहुंचे। शेषनाग ने कहा—मैं पृथ्वी के भार से खिन्न हूँ। कोई इसे थोड़ी देर के लिए ले ले तो मैं निर्णय कर सकता हूँ। विश्वामित्र बोले—मैं दस हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ। मेरे शिर पर पृथ्वी ठहर जाये। पृथ्वी डगमगाने लगी। सारे विश्व में तहलका मच गया। यह दृश्य देखकर वशिष्ठ ने आधे क्षण के सत्संग के

फल का सङ्कल्प किया तो पृथ्वी उनके सिर पर टिक गई। जब शेष पृथ्वी को वशिष्ठ से वापस लेने लगे तब विश्वामित्र ने कहा—हमारा निर्णय तो कर दीजिये। शेष ने हंसकर फरमाया—क्या आप नहीं समझे कि आधे क्षण के सत्संग की बराबरी दश हजार वर्ष की तपस्या नहीं कर सकती ?

—कल्याण 'संत अंक' से

८. **ज्ञान बढ़े गुणवंत की संगत, ध्यान बढ़े तपसी संग कीन्हे।**
मोह बढ़े परिवार की संगत, लोभ बढ़े धन में चित दीन्हे।
क्रोध बढ़े नर मूढ़ की संगत, काम बढ़े तिरिया संग भीने।
बुद्धि-विचार-विबेक बढ़े, 'कवि दीन' सुसज्जन संगति लीन्हे।

९. बिनु सतसंग विवेक न होई, रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई।

—रामचरितमानस

१०. सत संगत परताप तें, मिटै अविद्या-जाल।
बार-बार बरनन करे, नानक देव-दयाल॥

११. संगति का फल देखलो, वही तिली वही तेल।
जाति नाम निज छोड़कर, पाया नाम फुलेल॥

१२. असज्जनः सज्जनसङ्गि-संगात्,
करोति दुःसाध्यमपीह साध्यम्।
पुष्पाश्रयाः शंभुशिरोऽधिरूढा,
पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्॥

—कल्पतरु

सतसंगी के संग से असज्जन भी दुःसाध्य कार्य साध लेता है। फूलों के सहारे शिवजी के मस्तक पर चढ़ी हुई चींटी भी चन्द्रबिम्ब का चुम्बन कर लेती है।

१३. कश्चिदाश्रय-सौन्दर्याद्, धत्ते शोभामसज्जनः ।
प्रमदालोचनन्यस्तं, मलीमसमिवाञ्जनम् ॥

—हितोपदेश २।१५१

आश्रय की सुन्दरता से असज्जन भी शोभित हो जाता है। जैसे—स्त्री की आंखों में डाला हुआ काला कज्जल।

१४. कुशल वैद्य की संगति से विष अमृत का काम करने लगता है। चतुर कलमकार के हाथ पाकर नींबू नारंगी का रूप ले लेता है।

१५. कालियो गोरिये कनें बैठे, रंग नहीं पण अक्कल तो आवे ही।

—राजस्थानी कहावत

१६. भगवान महावीर के सत्संग से **अर्जुनमाली** एवं **चण्डकौशिक** तर गये। जम्बूकुमार के सत्संग से **प्रभवचोर** एवं सप्तऋषियों के सत्संग से **डाकू अग्निशर्मा** (जो आगे चलकर महर्षि वाल्मीकि कहलाए) पार हो गये। महात्मा बुद्ध के सम्पर्क से कलिंग-विजय के बाद **सम्राट् अशोक** दयावान बन गया तथा उन्हीं के उपदेश से डाकू **अंगुलिमाल** (जो राजा प्रसेनजित् से भी नहीं पकड़ा गया) प्रतिबुद्ध होकर साधु बन गया। इसी प्रकार यूरोपीय प्रसिद्ध चर्च के अधिष्ठाता **सेंटपाल** (जो डाकू-लुटेरे थे) सत्संगति से ईसाईधर्म के महान् प्रचारक बन गए।

—अध्ययन के आधार पर

१७. सत्संग में जाकर भी यदि कुछ लाभ नहीं कमाया तो उसके लिए वे ही कहावतें चरितार्थ हुईं, जैसे—बारह वर्ष दिल्ली में रहकर भी भाड़ झोंकी, चौबीस वर्ष अफ्रीका में रहकर रुई धुनी, छत्तीस वर्ष अमेरिका में रहकर खाक छानी, दस लाख वर्ष नंदनवन में रहकर अप्सराओं की कुर्सियाँ बिछाईं और करोड़ वर्ष इन्द्रलोक में रहकर ढोल बजाया।

—संकलित

६

दुर्जन (दुष्ट)

१. तक्षकस्य विषं दन्ते, मक्षिकायाः शिरोविषम् ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे, सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ॥

—चाणक्यनीति १७।८

सांप के दांत में, मक्खी के शिर में और बिच्छू के केवल पूंछ में ही विष होता है, किन्तु दुर्जन के सारे ही अंग विषमय हैं ।

२. विषधरतोऽप्यतिविषमः, खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः ।
यदयं नकुलद्वेषी, सुकुलद्वेषी पुनः पिशुनः ॥

—सुबन्धु

दुर्जन साँप से भी ज्यादा खतरनाक है, यह बात विद्वान सत्य ही कहते हैं, क्योंकि साँप तो नकुल का ही द्वेषी है, दुर्जन तो सुकुल-सज्जनों से भी द्वेष रखता है ।

३. दुर्जनस्य विशिष्टत्वं, परोपद्रवकारणम् ।
व्याघ्रस्य चोपवासेन, पारणं पशुमारणम् ।

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-५६

दूसरों को उपद्रव करना ही दुर्जनों की विशेषता है । जैसे—पशुओं को मारना ही बाघ के उपवास का पारणा होता है ।

४. नदीरयस्तरूणामङ्घ्रीन् क्षायलन्नप्युन्मूलयति ।

—नीतिवाक्यामृत

नदी का वेग वृक्षों के चरणों का क्षालन करता हुआ भी उन्हें उखाड़ता ही है । (ऐसे ही दुर्जन पैरों में गिरकर भी नाश करता है ।)

५. क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो, रुष्टस्तुष्टः क्षणे-क्षणे ।
अनवस्थित्तचित्तास्य, प्रसादोऽपि भयंकरः ॥

—घटखर्पर का नीतिसार

जो क्षण-क्षण में रुष्ट एवं तुष्ट होता रहता है, ऐसे अस्थिर चित्तवाले तुच्छ व्यक्ति की प्रसन्नता भी भयंकर है ।

६. फांस मिसरी की भले हो, किरकिराती है बराबर ।
भूल चाहे प्यार की हो, रंग लाती है बराबर ॥
लाख फूलों में बसाओ ! गन्ध की चादर ओढ़ाओ ।
किन्तु काँटा तो चुभेगा, सौ तरह उसको रिझाओ ॥

—रामानन्द दोषी

७. स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः ।
पालयन्नपि भूपालः, प्रहसन्नपि दुर्जनः ॥

—पंचतन्त्र ३।८२

हाथी स्पर्श करता हुआ, सांप सूंघता हुआ, राजा पालन करता हुआ एवं दुर्जन हँसता हुआ भी मार डालता है ।

८. असूयकः पिशुनः कृतघ्नो दीर्घरोषइति कर्मचाण्डालाः ।

—नीतिवाक्यामृत २२।११

ईर्ष्यालु, चुगल, कृतघ्न और अधिक समय तक क्रोध रखनेवाला—ये कर्म-चाण्डाल हैं ।

९. चुगल बधक गुरुसेजरति, चोर कृपण गुणचोर ।
कुण बधतो घटतो कवण, एकज गिरि का टोल ॥

१०. सबकी औषधि जगत में, खल की औषधि नाहिं ।
औषधि हू चूरन हुवै, परिके खल के माँहि ॥

११. सर्पाणां च खलानां च, सर्वेषां दुष्टचेतसाम् ।
अभिप्रायाः न सिध्यन्ति, तेनेदं वर्तते जगत् ।

— पञ्चतन्त्र ५।४४

१२. खलः करोति दुर्वृत्तं, नूनं फलति साधुषु ।
दशाननोऽहरत् सीतां बन्धनं स्याद् महोदधेः ।

—हितोपदेश ३।२२

दुष्ट, दुष्टता करता है और उसका फल सज्जनों को भोगना पड़ता है । देखो ! रावण ने सीता का हरण किया और समुद्र को बँधना पड़ा ।

१३. गलियो एकज पान, सगलाहि बिगाड़ै ।
भरियो माटो दूध, छांट कांजी री फाड़े ॥
कुल में हुवे कपूत, वंश आपणो लजावै ।
पंचा थापी बाड़, चुगल चिमठियाँ उठावै ॥
सूत में कुसूत भेलो करै, पापी ने काढ़ो परो !
कवि गद कहे सुण राय हर ! पंचां में खड़बो बुरो ॥

१४. साँप किसका बाप और अग्नि किसकी माँ ?

—हिन्दी कहावत

१५. सर्पां रै किसी सैंध ।

- सर्प रै बच्चै रो कांई छोटो र कांई मोटो ?
- दीसती तो गिलारी, कर जावै बिच्छू रो गटको ।

१६. दीसत दीसे टाबर्यो, बोलै घणो नरम ।
जाणें-बीणै कांई नहीं, फोड़ नाखे करम ॥

—राजस्थानी कहावतें

१७. बिल्ली का खेल, चूहे की मौत ।

—हिन्दी कहावत

७ दुर्जनों का स्वभाव

१. निसर्गतो ऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

दुर्जन स्वभाव से ही मन के मैले होते हैं।

२. प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः।

—किरातार्जुनीय १४।२१

दुष्ट लोग स्वभाव से ही सज्जनों के शत्रु हुआ करते हैं।

३. अकरुणत्वमकारणविग्रहः, परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता, प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्।

—भर्तृहरि-नीतशतक-५२

निर्दयीपन, बेमतलब लड़ना, परधन और परस्त्री की इच्छा रखना, स्वजन-बन्धुओं से ईर्ष्याभाव रखना—ये दुर्जनों के स्वाभाविक लक्षण हैं।

४. त्यक्त्वा निजप्राणान्, परहितविघ्नं खलः करोत्येव।
कवले पतिता सद्यो, वमयति मक्षिकाऽन्नभोक्तारम्॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जन अपने प्राण देकर भी दूसरों के हित में विघ्न करता है। जैसे-कवल में पड़ी हुई मक्खी भोजन करनेवाले को वमन करवा देती है।

५. देखो! सण की दुष्टता, नेक न आवै लाज।
खाल खिचावै आपणी, पर-बन्धन के काज॥

६. नाक बाढ़ी ने अपशकुन करवा।

—गुजराती कहावत

७. घर तो घोसी रो बलसी पण सोहरा ऊँदरा ही को रेवेंनी।

- भाई भलाई मर जाओ भोजाई रो बट निकलणो चाहिजे।
- खाट गाय आप तो दूध को देवै नीं, दूजी रो ढोलाय दै।
- मिनकी दूध पीवै नहीं तो ढुला तो देवै।

—राजस्थानी कहावतें

८. न विनापरवादेन, रमते दुर्जनो जनः।
काकः सर्वरसान् भुङ्क्त्वा, विनाऽमेध्यं न तृप्यति॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जन परनिंदा किये बिना खुश नहीं होता। रसीले पदार्थ खाकर भी काक (कौवा) गंदगी में मुँह दिए बिना तृप्त नहीं होता।

९. अग्निरिव स्वाश्रयमेव दहन्ति दुर्जनाः।

—नीतिवाक्यामृत

अग्नि की तरह दुर्जन अपने आश्रय को ही जला देते हैं।

१०. खलः सर्षपमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनोबिल्वमात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति॥

—शाकुन्तल

दुष्ट व्यक्ति दूसरों के सरसों जितने छोटे-छोटे दोषों को भी देख लेता है, किन्तु अपने बिल्वफल जितने बड़े दोष को भी नहीं देखता।

११. स्तोकेनोन्नतिमायाति, स्तोकेनायात्यधोगतिम्।
अहो! सुसदृशी चेष्टा, तुलायष्टेः खलस्य च॥

—शार्ङ्गधर

तराजू की डंडी और दुष्ट व्यक्ति—इन दोनों की प्रवृत्ति एक जैसी है। ये थोड़े में ऊँचे एवं थोड़े में नीचे हो जाते हैं।

१२. त्यजति च गुणान् सुदूरं, तनुमपि दोषं निरीक्ष्य गृह्णाति।
मुक्त्वाऽलंकृतकेशान्, यूकामिव वानरः पिशुनः॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ-६०

दुर्जन बड़े-बड़े गुणों को छोड़कर छोटे से दोष को उसी तरह खोजकर पकड़ता है, जैसे—वानर शृंगारयुक्त केशों में से केवल जूं को ही पकड़ता है।

१३. अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः, क्रमेलकः कण्टकजालमेव।

—बिल्हणकवि

अनेक फलों-फूलों वाले क्रीड़ावन में चले जाने पर भी ऊँट तो कांटेवाले वृक्षों को ही खोजेगा।

१४. सुपक्वमपि निम्बस्य, फलं बीजे कटु स्फुटम्।
वयसः परिणामेऽपि, यः खलः खल एव स॥

—विवेकविलास

निम्बू का फल पक जाने पर भी उसका बीज कड़ुवा ही रहता है। बूढ़ा हो जाने पर भी दुष्ट-दुष्ट ही रहता है।

१५. बिखरे कांटे राह में, सज्जन रहे बुहार।
हँस-हँस के दुर्जन वहाँ, और रहे हैं डार॥

—दोहासंदोह

१६. भूंडो भूंडा नो भाव भंज्या बगैर न रहै,
खोड़ी बिलाड़ी, अपशकुन कर्‍याँ वगैर न रहै।

—गुजराती कहावत

१७. तिशनगारा नुमायद अंदर ख्वाब।
हमा आलम व चश्म चश्मये आब॥

—फारसी कहावत

बिल्ली को स्वप्न में भी माँस दीखता है।

१८. चोर नें कहै चोरी कर, कुत्ते नें कहै भूंस अने साह नें कहै जाग।

—राजस्थानी कहावत

१९. आँगली आपीए तो पहोंचो पकड़े अने हाथ आपीए तो गलुं पकड़े अने बेस कहे तो सूई जाय।
बाबाजी, "नमो नारायण" तो कहे—तेरे घर धामा।

—गुजराती कहावतें

२०. प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं,
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरुप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः,
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥

—हितोपदेश १।८०

जैसे—दुष्ट पुरुष पहले पैरों में गिरता है, फिर दूसरों की बुराई करता है। पहले कानों में मीठी-मीठी बातें करता है और फिर मौका पाकर अन्दर घुस जाता है। मच्छर भी दुष्टों की सी सारी क्रियाएं करता है।

२१. तीखी निष्ठुर कुटिल अति, रखती जरा **कृपा न**।
इस अन्तिम गुण से पड़ा, तेरा नाम **कृपान** ॥

८ दुर्जनसंगपरित्याग

१. अलं बालस्स संगेणं।

—आचारांग १।२।५

बाल-अज्ञानियों की संगति से दूर रहना चाहिए।

२. खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीड्ं च वज्जए।

—उत्तराध्ययन १।९

क्षुद्रजनों का संसर्ग एवं उनके साथ हास्य और क्रीड़ा नहीं करनी चाहिए।

३. दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः। काम-क्रोध-मोह-स्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश-सर्वनाश कारणत्वात्।

—भक्तिसूत्र ४३-४४

दुःसंग का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए, क्योंकि वह काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश एवं सर्वनाश का कारण है।

४. दुर्जनः परिहर्त्तव्यो, विद्यया भूषितोऽपि सन्।
मणिनालंकृतः सर्पः, किमसौ न भयंकरः॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ५३

विद्या से अलंकृत हो तो भी दुर्जन छोड़ने योग्य है, क्योंकि मणि से विभूषित होने पर भी साँप भयंकर ही है।

५. बदों की सोहबत में मत बैठो, है उसका अंजाम बुरा।
बद न बने पर बद कहलाए, बद अच्छा, बदनाम बुरा॥

—उर्दू शेर

६. शकटं पञ्चहस्तेन, दशहस्तेन वाजिनम्।
हस्ती हस्तसहस्रेण, देशत्यागेन दुर्जनम्॥

—चाणक्यनीति ७।७

बैलगाड़ी को पाँच हाथ से, घोड़े को दश हाथ से, हाथी को हजार हाथ से और दुर्जन को देश त्यागकर भी छोड़ देना चाहिए।

७. दुर्जनेन समं वैरं, प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः, शीतः कृष्णायते करम्॥

—हितोपदेश १।८०

दुर्जन के साथ वैर और प्रीति दोनों ही नहीं करने चाहिए। वह अंगार के समान है। अंगार गर्म हो तो हाथ को जलाता है और ठंडा हो तो हाथ को काला करता है।

८. अलसं अणुबद्ध वेरं, सच्छंदमती पयहीयव्वो।

—व्यवहारभाष्य १।६६

आलसी, वैर-विरोध रखनेवाले और स्वच्छन्दाचारी का साथ छोड़ देना चाहिए।

९. त्यज दुर्जनसंसर्गं, भज साधु-समागमम्।
कुरु धर्ममहोरात्रं, स्मर नित्यमनित्यताम्॥

—चाणक्यनीति १४।२०

दुर्जनों का संसर्ग छोड़ो, सज्जनों का समागम करो। दिन-रात धर्म करो और सदा संसार की अनित्यता का चिन्तन करो।

९ कुसंगति का असर

१. संगत जिसी रंगत, संगत जिसो असर।

—राजस्थानी कहावत

२. संगतेवो रंग, वान न आवे पण शान आवे, गधेड़ा साथे घोडुं बाँधे तो भूंकता न सीखे पण आलोटतां तो सीखेज।

● दालनी संगति थी चोखो नर मटी नारी थयो।

—गुजराती कहावतें

३. यदि तुम सदा लंगड़ों के साथ रहोगे तो लंगड़ाना सीख जाओगे।

—लैटिन लोकोक्ति

४. फाख्ता का जब कौवों से संयोग होता है तो उसके पर तो श्वेत रहते हैं, पर हृदय काला हो जाता है।

—जर्मन लोकोक्ति

५. कोयलां री दलाली में काला हाथ।

—राजस्थानी कहावत

● कुसंगति में जाता देखकर पिता ने पुत्र को रोका। पुत्र बोला—मेरे पर असर कहाँ होता है ? पिता ने उसके हाथ में कोयला देकर समझाया कि जैसे—इसका दाग अवश्य लगता है, उसी प्रकार कुसंगति का असर भी होता है।

६. चिराग गुल पगड़ी गायब।

—पारसी कहावत

कुसंगति से हानि

१. खलसंगेन किं नाम न भवत्यनिष्टम् ?

—नीतिवाक्यामृत

दुर्जन के संग से क्या अनिष्ट नहीं होता ?

२. असतां सङ्गदोषेण, साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणेगतः ॥

—पञ्चतन्त्र १।२७४

दुष्टों के संग से साधु-सत्पुरुष भी बिगड़ जाते हैं। देखो दुर्योधन के प्रसंग से भीष्मपितामह भी गोहरण जैसे निकृष्ट कार्य के लिये चले गये।

३. अहो ! दुर्जन संसर्गाद्, मानहानिः पदे-पदे ।
पावको लोहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुर्जनों की संगति से कदम-कदम पर मानहानि होती है। देखो ! लोहे की संगति से अग्नि भी मुद्गरों से कूटी जाती है।

४. **रहिमन** नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सब ताहि ॥

५. कर कुसंग चाहत कुशल, **तुलसी** यह अफसोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावण बसे पड़ौस ॥

६. संगति भली न श्वान की, दोनूं कानी दुःख ।
खीज्यां काटै टांगड़ी, रीझ्यां चाटै मुख ॥

७. काक रू हंस बसे तरु ऊपर, दोहु परस्पर चित्त मिलायो।
सांझ समे कोउ भूपति खेलत, छांह निहार जसा तिहां आयो।
काग कुजात ने बींठ करी, नृप तान के बान सुजान पठायो।
काग गयो रह्यो हंस सुवंश को, नीच की संगति मृत्यु हि पायो ॥

—भाषाश्लोकसागर

८. दुर्जन दूषितमनसां, पुंसां सुजनेऽप्यविश्वासः।
बालः पयसा दग्धो, दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति ॥

—प्रसंगरत्नावली

दुष्टों द्वारा ठगे गये पुरुषों का सज्जनों में भी अविश्वास हो जाता है। जैसे—दूध से जला हुआ बालक दही को भी फूंक मारकर खाता है।

९. पिशुन छल्यो नर सुजन सौं, करत विशास न चूक।
जैसे दाध्यो दूध को, पिवत छाछ को फूंक ॥

११ दुष्टों का सुधार कठिन

१. न दुर्जनः साधुदशामुपैति, बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन, न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ॥

—**चाणक्यनीति ११।६**

अनेक प्रकार से शिक्षा देने पर भी दुर्जन सज्जनता को प्राप्त नहीं होते। जैसे—बार-बार दूध-घृत से सींचा हुआ भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं होता।

२. नलिका गतमपि कुटिलं, न भवति सरलं शुनः पुच्छम्।
तद्वत् खलजन हृदयं, बोधितमपि नैव याति माधुर्यम्।

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २६**

नली में रहने पर भी कुत्ते की पूँछ सीधी नहीं होती, टेढ़ी ही रहती है। इसी प्रकार बोध देने पर भी दुष्टों का हृदय मधुर नहीं होता।

३. काली ऊन कुमाणसां, चढ़ै न दूजो रंग। —**राजस्थानी कहावत**

४. खलः सत्क्रियमाणोऽपि, ददाति कलहं सताम्।
दुग्धधोतोऽपि किं याति, वायसः कलहंसताम् ॥

—**शार्ङ्गधर**

सत्कार करने पर भी दुर्जन सज्जनों को क्लेश ही देता है, दूध से धोने पर भी काग हंस नहीं बनता।

५. Black will take no other hue,
ब्लैक विल टेक नो अदर ह्यु। —**अँगरेजी कहावत**

कूकर धोने से बछिया नहीं होता।

६. गधेड़ी गंगा नहाय पण घोड़ी न थाय,
सीदी भाई सौ मण साबुए धुए तो पण काला ना काला।
—गुजराती कहावत

७. किं मर्दितोऽपि कस्तूर्या, लशुनो याति सौरभम् ?
—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

कस्तूरी से मथने पर भी लहसुन क्या अपनी दुर्गन्धि को छोड़ता है ?

८. अपि निर्वाणमायाति, नानलो याति शीतताम्।
आग बुझ भले ही जाय ! ठंडी नहीं होती।

९. गधे को उढ़ादो जो मखमल की झूल,
दुलत्ता चलाना न जाएगा भूल।
जाहिल के नेकी-बदी बात एक,
के होते हैं अन्धे के दिन-रात एक॥ —उर्दू शेर

१०. दुर्जन कबहु न सूधरै, सौ साधन के संग।
मूंज भिजोवै गंग में, ज्यूं भीजै ज्यूं तंग।

११. दुष्ट से अलग होते समय एक साधु रोने लगा। कारण पूछने पर कहा—"मेरे साथ इतने दिन रह कर भी तू नहीं सुधर सका इसलिये रो रहा हूँ।"

१२. बिगड़्या तीवण कदे आगै ही सुधर्या हा।
—राजस्थानी कहावत

१३. दुगुनी फीस—दो विद्यार्थी बीन बजाने की कला सीखने गए। एक नया था और दूसरा कुछ सीखा हुआ। शिक्षक ने नए से आधी फीस मांगी और दूसरे से पूरी। क्योंकि नए मनुष्य की अपेक्षा विकृत को सुधारना कठिन है।

१२ दुर्जनों के साथ व्यवहार

१. दुर्जनं प्रथमं वन्दे, सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात्पूर्वं, गुदप्रक्षालनं यथा ।

—सुभाषितरत्नभांडागार पृष्ठ ५५

जैसे—मुंह धोने से पहले गुदा धोई जाती है, उसी प्रकार मैं सज्जनों से पहले दुर्जनों को नमस्कार करता हूँ ।

२. शाम्येन् प्रत्यपकारेण, नोपकारेण दुर्जनः ।

—कुमारसंभव

दुर्जनों को अपकार-बुराई से शांत करना चाहिए, उपकार-भलाई से नहीं ।

३. हस्ती ह्यङ्कुशमात्रेण, बाजी हस्तेन ताड्यते ।
शृङ्गी लकुटहस्तेन, खड्गहस्तेन दुर्जनः ।

—चाणक्यनीति ७।८

हाथी को केवल अंकुश से, घोड़ों को हाथ से, सींगवाले जन्तुओं को लाठी से और दुर्जन को तलवार से मारा जाता है ।

४. खलानां कण्टकानां च, द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानद्मुखभङ्गो वा, दूरतो वा विसर्जनम् ॥

—चाणक्यनीति १५।३

दुष्टों और कांटों के दो ही इलाज हैं—जूतों से उनका मुंह तोड़ देना या उनसे दूर रहना ।

५. खरं श्वानं गजं मत्तं, रण्डां च बहुभाषिणीम् ।
क्रोधवन्तं मदोन्मत्तं, दूरतः परिवर्जयेत् ।

—सुभाषितरत्न भांडागार, पृष्ठ १६१

गदहा, कुत्ता, मत्त हाथी, अधिक बोलनेवाली विधवा स्त्री, क्रोधी और मदोन्मत्त—इन सबका दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

६. खीरा मुख तें काटिये, मलिये लौण लगाय।
रहिमन कड़ुवे मुखन को, चहिये यही सजाय।

७. मुख ऊपर मीठास, घटमांही खोटा घड़ै।
इसड़ां सू इकलास, राखीजे नहिं राजिया !

—सोरठा संग्रह

८. शठे शाठ्यं समाचरेत्।

—संस्कृत कहावत

दुष्ट से दुष्टता करनी चाहिए।

९. Tit for tat
टिट फोर टैट —अंग्रेजी कहावत
जैसे को तैसा।

१०. आप सूं करै बीरैं बाप सूं करणी।
● कांकरै री मारसी, जिको पंसेरी री खासी।

—राजस्थानी कहावतें

१३ धूर्त-दगाबाज

१. मुखं पद्मदलाकारं, वाचा चन्दनशीतला।
हृदयं क्रोधसंयुक्तं, त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५७

धूर्त व्यक्ति के तीन लक्षण हैं। उसका मुंह कमलपत्रवत् खिला होता है, वाणी चन्दनवत् शीतल होती है और हृदय क्रोध से भरा हुआ होता है।

२. असती भवति सलज्जा, क्षारं नीरं च शीतलं भवति।
दम्भी भवति विवेकी, प्रियवक्ता भवति धूर्त्तजनः ॥

—पञ्चतन्त्र १।४५१

कुलटा स्त्री अधिक लज्जा करती है, खारा जल ज्यादा ठंडा होता है, कपटी व्यक्ति विवेक अधिक दिखलाता है और धूर्त मनुष्य मीठा बोलता है।

३. **धूर्त-सम्बन्धीकहावतें—**

- टु मच करटिसी टु मच क्रैफ्ट।

—**अंग्रेजी कहावत**

- अतिभक्तिश्चौरस्य लक्षणम्।

—**संस्कृत कहावत**

- अतिभक्ति चारेर लखन।

—**बंगला कहावत**

- शकल मोमनां, करतुत काफरां।

—**पंजाबी कहावत**

- बेंवतां-बेंवतां आंख्यां में घूड़ नाख दें।
- बेच र जगात को भरै नी।
- रोटी खाणी शक्कर स्यूं, दुनियां ठगणी मक्कर स्यूं।

—राजस्थानी कहावतें

- ठाठ तिलक और मधुरी बानी, दगाबाज की यही निशानी।
- ओछी गर्दन दगाबाज।
- आंख का अन्धा गांठ का पूरा। उंगली पकड़ते पहुंचा पकड़ा।

—हिन्दी कहावतें

४. नराणां नापितो धूर्तः, पक्षिणां चैव वायसः।।
चतुष्पदां शृगालस्तु, स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी।।

—चाणक्यनीति ५।२१

पुरुषों में नाई, पक्षियों में काग, पशुओं में गीदड़ और स्त्रियों में मालिन—ये धूर्त माने जाते हैं।

५. बिल्ली गुरु बगलो कियो, वरण ऊजलो देख।
पार किसी विध ऊतरै, दोनां री गति एक।

१४ ढोंग और ढोंगी

१. जो गुण अपने में नहीं है, उसे दिखाने की कोशिश करना ढोंग है।

—कन्फ्यूशियस

२. सफेद कमीज के नीचे गन्दी बनियान हो सकती है, सीता-सावित्री के गीत गानेवालों के कमरे में कुलटाओं के चित्र हो सकते हैं, गीता-भागवत टेबल पर रखनेवालों के पुस्तकालय में कोकशास्त्र मिल सकते हैं तथा सुखी का ढोंग करनेवाले अन्दर से परम दुःखी हो सकते हैं। अतः बाहर के रूप से अन्दर के गुणों का अन्दाज नहीं लग सकता।

—आत्मविकास

३. ऊंची दुकान का फीका पकवान। —हिन्दी कहावत

४. मिन्नी केदारकंकण पहर्यो।

● मिन्नी तीर्थां न्हा र आई। —राजस्थानी कहावतें

५. कल का जोगी पाँव तक जटा। —हिन्दी कहावत

६. जीवतां पूमडुं पाणी नहिं ने मूआँ मसाणा मां गाय।

● जीवता सेक्या कालजा ने मूआँ छाजियानो शोर।

● सौ-सौ ऊँदरा मारी नै मिन्नीबाई पाटे बैठा।

● सात धणी बदली ने सती थया। —गुजराती कहावतें

७. माख्यां मार र तीसमारखाँ बण्यां। —राजस्थानी कहावत

१५ सज्जन-दुर्जन का अन्तर

१. मृद्घटवत् सुखभेद्यो, दुःसंधानश्च दुर्जनो भवति ।
सुजनस्तु कनकघटवद्, दुर्भेद्यश्चाशुसंधेयः ॥

—पञ्चतन्त्र २।३८

दुर्जन को मिट्टी के घड़े की तरह फोड़ना सरल है, किन्तु उसे फिर से जोड़ना कठिन है तथा सज्जन को स्वर्ण-घटवत् फोड़ना कठिन है, किन्तु कदाच फूट जाय तो उसे जोड़ना सरल है ।

२. मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्, कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं, कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥

—हितोपदेश १।१०१

दुरात्माओं का सोचना, कहना और करना भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है तथा महात्माओं के सोचने, बोलने और करने मे समानता होती है ।

३. विद्यामदो धनमद-स्तृतीयोऽभिजनो मदः ।
मदा एतेऽवलिप्ताना—मेत एव सतां दमाः ॥

—विदुरनीति २।४४

विद्या का मद, धन का मद और तीसरा ऊँचे कुल का मद—अभिमानियों के लिए तो ये मद है, लेकिन सज्जनों के लिए ये ही दम के साधन हैं ।

४. रक्तत्वं कमलानां, सत्पुरुषाणां परोपकारित्वम् ।
असतां च निर्दयत्वं, स्वभावसिद्धं त्रिषु त्रितयम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८७

कमलों में रक्तता, सज्जनों में परोपकार बुद्धि और दुर्जनों में निर्दयता क्रमशः तीनों में ये तीन बातें स्वभावसिद्ध हैं।

५. शरदि न वर्षति गर्जति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः।
नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ४९

शरदृतु में मेघ गर्जता है—वर्षता नहीं, किन्तु वर्षाऋतु में चुपचाप बरसने लगता है। नीच व्यक्ति बोलता है पर करता नहीं, किन्तु सत्पुरुष बोलता नही—करता है।

६. नालिकेरसमाकारा, दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा, बहिरेव मनोहराः ॥

—हितोपदेश १।९४

सज्जन नारियल के समान ऊपर से कड़े होते है और अन्दर मीठे होते हैं एवं दुर्जन बेरों की तरह केवल बाहर से ही मनोहर होते हैं।

७. विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।

—भवभूति के गुणरत्न से

दुष्टपुरुषों की विद्या विवाद के लिए, धन अभिमान के लिए और शक्ति (बल) दूसरों को दुःख देने के लिए है तथा सज्जनों की पूर्वोक्त चीजें इनसे बिलकुल विपरीत हैं। यथा—विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरों की रक्षा करने के लिए होती है।

८. संत्यज्य सूर्पवद्दोषान् गृह्णाति पण्डितः।
दोषग्राही गुणत्यागी, पल्लोलीव हि दुर्जनः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

पंडित छाज की तरह दोषों को छोड़कर गुणों को ग्रहण करता है और दुर्जन चालिनी की तरह गुणों को त्यागकर दोषों को ग्रहण करता है।

९. श्लोकस्तु श्लोकतां याति, यत्र तिष्ठन्ति साधवः।
लकारो लुप्यते तत्र, यत्र तिष्ठन्त्यसाधवः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ४७

साधुओं के पास श्लोक सुयश को प्राप्त होता है और असाधुओं के पास उसका लकार लुप्त होकर वह शोकरूप में परिणत हो जाता है।

१०. सूची मुख अरु पीठ सम, दुर्जन-सुजन बखान।
छिद्र करत इक शठ सहस, पूरत इक गुनवान॥

११. दुर्जन री किरपा बुरी, भली सज्जन री त्रास।
जद सूरज गरमी करै, तब बरसण री आस॥

● दुर्जन री बातां बुरी, भली सज्जन री लात।
बै बातां लातां जिसी, बै लातां है बात॥

—राजस्थानी दोहे

१२. गुरु नानक शिष्यों सहित एक गांव में ठहरे, लोगों ने खूब सेवा की। प्रातः विदा होते समय कहा—उजड़ जाओ। दूसरे एक गांव में फिर ठहरे, लोगों ने पत्थर मारे। जाते समय बोले—बसते रहो। शिष्यों के पूछने पर गुरु नानक ने तत्त्व बतलाया—वे सज्जन हैं, जहाँ जाएँगे दुनियाँ को सुधारेंगे और ये बिगाड़ेंगे, क्योंकि दुष्ट हैं।

१३. दुर्जन जाता है जहाँ, फैलाता है पाप।
काला करता कोयला, पानी को चुपचाप॥

—दोहा-संदोह

१४. यात्री ने एक वृद्ध से पूछा—यह गांव कैसा है, मैं यहाँ बसना चाहता हूं?

वृद्ध—पहले बता कि तू जहाँ से आया है, वह गाँव कैसा-क है?

यात्री—वह तो एक नरक के समान है।

वृद्ध—तो फिर यह गांव उससे भी खराब हैं।

इतने में दूसरे यात्री ने आकर पूछा—गाँव कैसा है?

वृद्ध—तेरेवाला कैसा-क है ?

यात्री—मेरेवाला तो स्वर्ग जैसा है ।

वृद्ध—यह उससे भी अच्छा है ।

पहला विस्मित होकर तत्त्व पूछने लगा ।

वृद्ध ने कहा—बुरे के लिए सारा संसार बुरा है एवं अच्छे के लिए अच्छा है, अतः तू खुद अच्छा बन ।

१६ भलाई-सज्जनता

१. भलाई-बुराई का अभाव नहीं, वरन् उस पर विजय है ।

—सर अर्नेस्ट बोर्न

२. संपूर्ण भलाई और श्रेष्ठता का किरीट है—बन्धुत्व की भावना ।

—एडविन मार्कहम

३. भलाई जितनी अधिक की जाती है, उतनी ही अधिक फैलती है ।

—मिल्टन

४. जो नेकी लेकर आए, उसके लिए उसका दसगुना है । जो बदी लेकर आये, उसे उसका बराबर बदला दिया जाएगा, उस पर जुल्म नहीं किया जाएगा ।

—कुरान ६।१६०

५. जो व्यक्ति भलाई से प्रेरित होकर भलाई करता है, वह न तो प्रशंसा का आकांक्षी होता है और न पुरस्कार का ।

—विलियम पेन

६. हमारा उद्देश्य संसार के प्रति भलाई करना है, अपना गुणगान करना नहीं ।

—विवेकानन्द

७. नेकी कर दरियाव में डाल !

—हिन्दी-कहावत

८. बुराई का बदला भलाई से दो ।

—कुरान २३।९६

९. बुराई करने के अवसर तो दिन में सौ-सौ बार आते हैं; किन्तु भलाई का अवसर तो वर्ष में ही एक बार आता है।

—वाल्टेयर

१०. जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, ताको हैं तिरसूल॥

—कबीर

11. Bless them those curse you.

—बाइबिल

ब्लेस देम दोज कर्स यू।
तुम्हें शाप दे, उन्हें भी आशीर्वाद दो।

12. Love your enemies

—अंग्रेजी कहावत

लव योर एनीमीज!
तुम्हारे शत्रुओं से भी प्रेम करो।

१३. समर्थगुरु रामदास के शिष्यों ने खेत से ईख तोड़ ली। मालिक ने गुरु-सहित शिष्यों को पीटा। पता चलने पर राजा ने खेतवाले को बुलाकर गुरुजी से पूछा—इसे क्या सजा दूं? गुरु ने कहा—जगात माफ करदो।

१४. श्रावक बनारसीदासजी ने सड़क पर पेशाब किया। सिपाही ने थप्पड़ मारा। उन्होंने बादशाह शाहजहाँ से कहकर उसकी नौकरी बढ़वाई।

१५. मजबूतीपनो रखनो मन में, दुख दीनपनो दरसावनो ना।
वहनो कुलरीत सुमारग में, हरितें हिय हेत हटावनो ना॥
"चिमनेश"! खुशी हंस बोलन में, बिन स्वारथ बैर बसावनो ना।
जग जेती भलाई बने सो करो, मर जावनो है फिर आवनो ना॥१॥

घर स्वारथ हो या कुस्वारथ हो, कहि बात पिछे सिट जावनो ना।
हरिनाम भरोसे कियो सो कियो, करि काम पिछे पिछतावनो ना॥
दुख आनि परे सहनो सब ही, दुख देख घनो घबरावनो ना।
जग जेती भलाई बने सो करो, मर जावनो है फिर आवनो ना॥२॥

तुम मुष्टिका बांध के आए यहां, करखोले बिना फिर जावनो ना।
"कवि दीन" दया कर दीनन पै, दिल काहु को देव दुखावनो ना॥
दिन चार को यार तू पाहुनो है, बदनामी को ढोल बजावनो ना।
जग जेती भलाई बने सो करो, मर जावनो है फिर आवनो ना॥३॥

—भाषाश्लोकसागर

१६. भलाई करने की अपेक्षा भला बनना कठिन है। डाकू, चोर, व्यभिचारी भी दान-उपकार आदि भलाई के काम कर सकते हैं।

१७. भलाई चाहनेवाला पशु, भलाई करनेवाला मनुष्य और भला बननेवाला देवता।

१८. जो भलाई करने में अतिलीन है, उसको भला होने का समय नहीं मिलता।

—टैगोर

१९. दुर्जनों के साथ भलाई करना, सज्जनों के साथ बुराई करने के समान है।

—शेखशादी

१७ बुराई-दुर्जनता

१. बुराई क्या है ? जो कुछ दुर्बलता से उत्पन्न होती है ।

—नीत्से

२. बुराई का संपर्क हमारी अच्छी आदतों को भी दूषित कर देता है ।

—बाइबिल

३. नतीजा कारबद का कारबद है ।

—पारसी कहावत

बुराई का नतीजा बुरा है ।

४. दियासलाई दूसरों को जलाने की प्रवृत्ति करती है, तब पहले उसी का मुंह जलता है ।

५. जो जलाता है किसी को, खुद भी वह जल जायेगा ।
समां भी जल जायेगा, परवाना जल जाने के बाद ।।

● जो मिटाता है किसी को, खुद भी वह मिट जायेगा ।
मिट गया दारा तो क्या, बाकी सिकन्दर रह गया ।।

● जुल्म की टहनी कभी फलती नहीं ।
नाव कागज की कभी चलती नहीं ।।

● दूसरों को दुःख दे, खुद सुख कभी पाता नहीं,
पैर में चुभता ही काँटा, टूट जाता है सही ।।

● जो कि जालिम है वो हर्गिज, फूलता फलता नहीं ।
क्या, सब्ज होते खेत देखा है, कभी समसीर का ?

● कोई खूबी नहीं होती है, जिस इन्सान में 'दानिश'।
समझता फख्र अपना है, वह औरों की बुराई में ।।

—उर्दू शेर

६. Evil to him who evil thinks

—अंग्रेजी कहावत

इविल टु हिम, हू इविल थिंक्स ।
बुरा पराया जो करे, बुरा आपका होय ।

७. चाह करना चाह दरपेश ।

—पारसी कहावत

कुआँ खोदनेवाले के आगे कुआँ ।

८. हार्म सेट हार्म गेट ।

—अंग्रेजी कहावत

कर बुरा हो बुरा ।

९. पुवा बणाया चीनी घाली, संता नें जीमावण हाली ।
कीधा स्त्री खाधा भरतार, खाड़ खणे तो कूवो त्यार ।।
साधु को मारने के लिए सेठाणी ने मीठा जहर डालकर पूड़े बनाए, लेकिन उन्हें उसी के पति ने खाया और मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

१०. रुपिया दीजो रोकड़ा, मत दीजो सूलाक ।
घर में आघो घाल ने, काटी लीजो नाक ।।
ब्राह्मण के साथ बुराई करने से पुरोहित की नाक कटी ।

११. बुरा किसी का मत करो, गर्चे करना हो !
बुरा बुराई का करो, बेशक तरना हो ।।

—दोहासंदोह

१२. कोयला खासी जिकै रो मुँहडो कालो हुसी।

● सेर नैं सवा सेर त्यार है।

—राजस्थानी कहावतें

१३. बिलाड़ी ने कह्ये शीकुं टूटतुं नथी।
रांडी-रांड ना शाप लागता नथी।

● सती शाप दे नहीं अनें शंखणी ना शाप लागे नहिं।

—गुजराती कहावतें

१४. कागला री दुराशीष सूं ऊँट को मरैनी।
ढेढां री दुराशीष सूं गाय को मरैनी।
रांडां री दुराशीष सूं टाबर को मरैनी।

—राजस्थानी कहावतें

१५. बुराई की माँ गरीबी है और बाप अज्ञान है।

१६. **बुराई नहीं करने के तीन कारण होते हैं**—
(१) राज्यभय (२) समाजभय (३) आत्मभय।

१७. **पुलिस की बुराइयां**—रिश्वत लेना, मद्य पीना, चोरों-डाकुओं से मिल जाना आदि।

१८. लोग कहते हैं, अहिंसा आदि से आज के जमाने में काम नहीं चलता, तो क्या हिंसा आदि से चल सकता है? क्या कोई सच बोलने का एवं क्षमा करने का त्याग कर सकता है?

१९. मूरख रोगी बावलो, बाल त्रिया मतवाल।
इनका बुरा न मानिये; जो देवै लख गाल॥

१८ भलाई-बुराई की अमरता

१. वासन विलाय जाय रह जाय वासना।

—किसनबावनी

२. कुल्ला मांथी हींग जाय पण तेनी गंध न जाय।

- कर नो करनारो जाय पण कर रही जाय।
- मार्ग करनारो जाय पण शेरड़ो रही जाय।
- काल जाय पण कहेणी रहे।
- आव्यो होदो जाय पण मार्‍यो गोदो न जाय।

—गुजराती कहावतें

३. संगीत बन्द हो जाता है, पर उसके स्वर वर्षों तक कानों में गूंजते रहते हैं। स्वप्न उड़ जाता है, पर उसकी स्मृति बहुत समय तक चित्त को बेचैन बनाए रखती है। नदी का पूर तीन दिन में उतर जाता है, किन्तु उसका किया हुआ विनाश युगोंयुग अमर रह जाता है।

४. हाथिन के दांत के खिलौने बने भांत-भांत,
बाघ की बाघंबर कोउ तपसी मन भात है।
मृगन की मृगच्छाला ओढ़त हैं जती-जोगी,
बकरे की खाल तामें पानी हु भरात है।
सांभर की खाल ताकूं ओढ़त सिपाही लोग,
गैंडे की ढाल रहे राजन के हाथ है।
नेकी और वदी दोनूं संगे चले '**मयाराम**',
माणस की खाल कुछ काम नहीं आत है॥

१९ संगति के अनुसार गुण-दोष

१. संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

दोष और गुण संसर्ग-संगति से ही उत्पन्न होते हैं।

२. संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम् ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक, ६७

तप्तलोहे पर पड़ा हुआ पानी का बिन्दु नष्ट हो जाता है, कमलपत्र पर रहा हुआ वही मोती के समान सुशोभित होता है तथा स्वाती नक्षत्र में समुद्रस्थित सीप के मुंह में पड़ा हुआ वही जलबिन्दु मोती बन जाता है। तात्पर्य यह है कि अधम, मध्यम एवं उत्तम गुण मनुष्यों को संसर्ग से ही प्राप्त होते हैं।

३. हीयते च मतिस्तात ! हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति, विशिष्टैश्च विशेषताम् ।

—हितोपदेशप्रास्ताविका, ४२

नीचों के समागम से बुद्धि क्षीण होती है, समान-व्यक्तियों के समागम से समान रहती है और बिशिष्ट-पुरुषों के समागम से बढ़ जाती है।

४. अश्वं शस्त्रं शास्त्रं, वीणा वाणी नरश्च नारी च ।
पुरुषविशेषं प्राप्ता, भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥

—हितोपदेश २।७५

घोड़ा, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, नर और नारी—ये पुरुषविशेष की संगति से योग्य-अयोग्य बन जाते हैं।

५ गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने दुर्जनमुखे,
गुणा दोषायन्ते तदिदमपि नो विस्मयपदम् ।
महामेघः क्षारं पिबति कुरुते वारि मधुरं,
फणी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं दुस्सहतरम् ॥

—शाकुंतल

सज्जनों के वदन में दोष गुण बन जाते हैं और दुर्जनों के वदन में गुण दोष का रूप धारण कर लेते हैं। मेघ समुद्र का खारा जल लेकर उसे मीठाकर देता है और सांप दूध पीकर भी दुस्सह विष छोड़ता है।

६. संगति शोभा पाइये, सुण सज्जन के वैण ।
वो ही कज्जल ठीकरी, वोही कज्जल नैण ॥

७. गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं, लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम् ।
जम्बुकालयगते च लभ्यते, वत्सपुच्छ–खरचर्मखण्डनम् ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २४

मनुष्य यदि सिंह की गुफा में जाता है तो वहाँ गजकुम्भस्थल के मोती मिलते हैं और यदि सियाल (गीदड़) के स्थान पर जाता है तो बछड़े के पूंछ व गदहे के चाम का टुकड़ा मिलता है।

८. यादृशैः संनिवसते, यादृशाँश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं, तादृग् भवति पूरुषः ॥

—विदुरनीति ४।१३

मनुष्य जैसों के पास बैठता है, जैसों की सेवा करता है और जैसा खुद बनना चाहता है—वैसा ही बन जाता है।

९. A man is Known by the Company he keeps.

—अंग्रेजी कहावत

ए मैन इज नोन बाई दी कम्पनी ही कीप्स ।
संगति के अनुसार मनुष्य पहचाना जाता है ।

१०. जैसी संगति बैठिए, तैसी इज्जत पाय ।
सिर पर मखमल सेहरे, पनही मखमल पाय ॥

११. संगति से गुण होत हैं, बुधजन करत बखान ।
गांधी और कलाल की, देखो बैठ दुकान ॥

१२. कदली-सीप-भुजंगमुख, एक स्वाति गुण तीन ।
जैसी संगति पाइये, तैसो ही गुण दीन्ह ॥

—रहीम

१३. एक युवक ससुर, पिता व मित्र के साथ चलता है । तीनों समय का व्यवहार भिन्न-भिन्न रहेगा ।

१४. मनुष्य कृपण या दानी जैसे भी व्यक्ति के साथ रहेगा, उस पर उसका प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा ।

१५. भेड़ों के साथ रहनेवाला जंगली मनुष्य, भेड़ों की तरह पानी पीने लगा ।

● एक बालक (जो लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में था ।) हिंसक पशुओं में १२ वर्ष रहने से खान-पान एवं गमन उन्हींकी तरह करने लग गया ।

१६. तीन देश के व्यक्ति यदि साथ रहें तो उनके रहन-सहन, खान-पान एवं भाषा आदि मिश्रित होकर एक नयारूप ले लेते हैं । जैसे—पीपरमेंट पोदीना-कपूर से अमृतधारा बन जाती है ।

१७. संगति न करने योग्य व्यक्ति—

(क) यस्य न ज्ञायते वीर्यं, न कुलं न विचेष्टितम् ।
न तेन संगतिं कुर्या–दित्युवाच बृहस्पतिः ॥

—पञ्चतन्त्र ४।२०

जिसका बल, कुल, चेष्टायें ज्ञात न हों, उसकी संगति मत करो। (ऐसा बृहस्पति ने कहा है।)

(ख) लोकयात्रा भयं लज्जा, दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पंच यत्र न विद्यन्ते, न कुर्य्यात् तत्र संगतिम् ॥

—चाणक्यनीति १।१०

आजीविका, भय, लज्जा, चतुराई और देने की भावना—ये पांच बातें जहाँ न हों, वहाँ सम्पर्क नहीं रखना चाहिए।

महान्पुरुष-महात्मा

१. अक्षोभ्यतैव महतां, महत्त्वस्य हि लक्षणम् ।

—कथासरित्सागर

प्रतिकूल परिस्थिति में क्षुब्ध न होना, महापुरुषों की महत्ता का लक्षण है ।

२. निर्दम्भता सदाचारे, स्वभावो हि महात्मनाम् ।

महापुरुषों का यह स्वभाव है कि वे अपने सदाचरणों पर बनावटीपन नहीं आने देते ।

३. विवेकः सह संपत्त्या, विनयो विद्यया सह ।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं, चिह्नमेतन्महात्मनाम् ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ४७

संपत्ति के साथ विवेक का होना, विद्या के साथ विनय का होना और प्रभुत्व के साथ प्रश्रय-विनय का होना—ये महात्माओं के लक्षण हैं ।

४. विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६३

विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में सहिष्णुता, सभा में वचन की चतुराई, संग्राम में पराक्रम, सुयश में रुचि, शास्त्रपठन में व्यसन—ये बातें महात्माओं में स्वाभाविक होती हैं ।

५. करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गरुपाद-प्रणमनं,
मुखेसत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छावृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं,
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६५

हाथों में सुपात्रदान, मस्तक पर गुरुजनों के चरणों का अभिवादन, मुख में सत्यवचन, विजयी भुजाओं में अतुल पराक्रम, हृदय में स्वच्छ भावना और कानों में शास्त्रों का श्रवण। जो प्रकृति से महापुरुष होते हैं, उनके ये सब गुण बिना ऐश्वर्य के आभूषण हैं।

६. पाषाणरेखेव प्रतिपन्नं महात्मनाम् ।

महात्माओं द्वारा लिया हुआ प्रण पत्थर की रेखा की तरह अमिट होता है।

७. न कालमतिवर्तन्ते, महान्तः स्वेषुकर्मषु ।

—योगवाशिष्ठ ५।१०।६

महापुरुष अपने कार्यों में कलातिक्रम नहीं होने देते अर्थात् समय के पाबन्द होते हैं।

८. मनस्वी म्रियते कामं, कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति, नानलो याति शीतताम् ॥

—हितोपदेश १।१३३

महापुरुष मर जाते हैं, किन्तु कृपणता कभी नहीं करते। आग बुझ जाती है परन्तु शीतल कभी नहीं होती।

९. संपत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता ।
उदये सविता रक्तो, रक्तोऽस्तसमये तथा ॥

—पञ्चतन्त्र २।७

महापुरुष संपत्ति और विपत्ति में एकरूप रहते हैं। देखो ! सूर्य उदय होने के समय भी लाल रहता है और अस्त होने के समय भी लाल रहता है।

१०. अहो किमपि चित्राणि, विचित्राणि महात्मनाम्।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते, तद्भारेण नमन्त्यपि ॥

—देवेश्वर

महापुरुषों के चित्र कुछ विचित्र ही होते हैं। वे लक्ष्मी को तृण के समान समझते हैं, पर लक्ष्मी के भार से नम भी जाते हैं।

११. हिताय नाहिताय स्याद्, महान् संतापितोऽपि हि।
पश्य ! रोगापहाराय, भवेदुष्णीकृतं पयः ॥

महान्पुरुष संतापित होकर भी हितकारी ही होता है, अहितकारी नहीं होता। देखो ! अग्नि में गर्म कर लेने पर भी दूध रोगनाशक होता है।

१२. दुर्जनवचनाङ्गारै-र्दग्धोऽपि न विप्रियं वदत्यार्यः।
नहि दह्यमानोऽप्यऽगुरुः, स्वभावगन्धं परित्यजति ॥

—प्रसङ्गरत्नावली

दुष्टों के वचनरूप अंगारों से जला हुआ भी आर्यपुरुष कभी अप्रिय नहीं बोलता। जैसे—जलता हुआ भी अगर-धूप अपनी सुगन्धि नहीं छोड़ता।

१३. संपत्सु महतां चित्तं, भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैल-शिला-संघातकर्कशम् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ६६

संपत्ति के समय महात्माओं का चित्त कमलवत् कोमल रहता है और आपत्ति के समय महान् पर्वत की शिलाओं के समूहवत् कठोर हो जाता है। तत्त्व यह है कि संपत्ति में वे अभिमान नहीं करते और आपत्ति में घबड़ाते नहीं।

१४. गवादीनां पयोऽन्येद्यु, सद्योवा जायते दधि।
क्षीरोदधेस्तु नाद्यापि, महतां विकृतिः कुतः॥

—देवेश्वर

गाय आदि का दूध दूसरे ही दिन दही बन जाता है, किन्तु क्षीर-समुद्र का जल आज तक दही नहीं बन सका; क्योंकि बड़ों में विकार नहीं आता।

१५. महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।

—शिशुपालवध २।१३

महान्पुरुष स्वभाव से ही मितभाषी (कम बोलनेवाले) होते हैं।

१६. महापुमांसो गर्भस्था, अपि लोकोपकारिणः।

—त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित्र २।२

महापुरुष गर्भ में होते हुए भी लोकोपकारी होते हैं।

१७. बड़े सनेह लघुन पर करहीं, गिर निज सिरन सदा तृन धरहीं।
निजगुन श्रवन सुनत सकुचाहीं, परगुन सुनत अधिक हरषाहीं॥

—रामचरितमानस

१८. दोषाकरोपि, कुटिलोपि कलङ्कितोपि,
मित्रावसानसमये विहितोदयोपि।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति
न ह्याश्रितेषु महतां गुण-दोषचिन्ता॥

—चन्दचरित्र, पृष्ठ ७५

चन्द्रमा दोषा-रात्रि का करनेवाला है, कुटिल है, कलङ्कसहित है, मित्र-सूर्य के अस्त होने पर उदय होनेवाला है। फिर भी महादेव को प्रिय लगता है; क्योंकि महापुरुष आश्रितों के गुण-दोषों का विचार नहीं करते।

२१ महापुरुषों का पराक्रम

१. विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि—
विपक्षो लङ्केशो रणभुवि सहायाश्च कपयः ।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद् राक्षसकुलं,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

लंका पर विजय पानी थी, समुद्र पैरों से तैरना था, रावण जैसा दुश्मन था, रणभूमि के सहायक केवल वानर थे । इतने पर भी अकेले राम ने राक्षसकुल को नष्ट कर दिया । क्योंकि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं ।

२. रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिता सप्ततुरगा,
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि ।
व्रजत्यन्तं सूर्यः प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५४

रथ के पहिया एक है, घोड़े सात हैं, जिनके पैरों में सांप लिपटे हुए हैं, मार्ग निरालम्ब आकाश है एवं सारथी पांगला है । इतने पर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार कर देता है । कारण यही है कि महापुरुषों के पराक्रम में ही उनकी कार्यसिद्धि रहती है, सहायक उपकरणों में नहीं ।

३. अनुहुंकुरुते घनध्वनिं, नहि गोमायु–रुतानि केसरी ।

—शिशुपालबध

सिंह मेघ के पीछे गर्जा करता है, किन्तु गीदड़ के पीछे नहीं। ऐसे ही बड़े आदमी छोटों के साथ नहीं उलझते।

४. तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो, मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
समुच्छ्रितानेव तरून् प्रबाधते, महान् महत्येव करोति विक्रमम्॥

—हितोपदेश २।८८

नीचे की ओर झुके हुए कोमल तृणों को वायु नहीं उखाड़ती, वह तो उच्छृंखलता से खड़े हुए वृक्षों का ही उन्मूलन करती है, क्योंकि बड़ा-बड़े के सामने ही अपना पराक्रम दिखाता है।

५. ग्राम्यशूकर ने सिंह से कहा—मेरे साथ युद्ध कर, अन्यथा मैं सबसे कह दूँगा कि मैंने सिंह को जीत लिया। सिंह ने उत्तर दिया—

गच्छ शूकर ! भद्रं ते, वद सिंहो जितो मया।
पण्डिता एव जानन्ति, सिंह-शूकरयोर्बलम्॥

—दृष्टान्तशतक

शूकर ! तेरा कल्याण हो। जा, भले ही कहदे कि मैंने सिंह को जीत लिया। विद्वान्, सिंह और सूअर के बल को जानते हैं।

६. सूर-मिल्टन अंधे थे, कर्ण-ईशा में वंश की कमी थी, अष्टावक्र, चाणक्य, सुकरात व बर्नार्डशा में रूप की कमी थी, नेपोलियन और हिटलर में धन एवं प्रतिष्ठा की कमी थी ; किन्तु इन महापुरुषों ने कभी अपने में कमी महसूस नहीं की।

२२ महानुपुरुषों के विषय में विविध

१. कुछ व्यक्ति जन्मजात महान् है, कुछ महानता प्राप्त करते हैं और कुछ पर महानता लाद दी जाती है।

—शेक्शपियर

२. ऐसा कोई वास्तव में महान् व्यक्ति नहीं हुआ, जो वास्तव में सदाचारी न रहा हो।

—फ्रैंकलिन

३. संसार के इतिहास में कभी भी काफी सुलझे हुए आदमी सभी जगह नहीं हुए।

—विज्म

४. न खलु परमाणोरल्पत्वेन महान् मेरुः किन्तु स्वगुणेन।

—नीतिवाक्यामृत २२।१९

मेरु पर्वत अपने गुण से महान् है, परमाणु के छोटापन से नहीं।

५. कोई भी व्यक्ति अनुकरण–मात्र से आज तक महान् नहीं हुआ।

—सेमुएल जॉनसन

६. पानी जैसा चंचल व्यक्ति, कभी महान् नहीं होता।

—बर्क

७. निकट जाने से पता लगता है कि महान्पुरुष केवल मानव ही हैं अतएव निकटवर्ती व्यक्तियों को वे कभी महान् प्रतीत नहीं होते।

—लाब्रेयेर

८. महान् व्यक्ति हमें महान् इसलिए लगते हैं कि हम घुटनों पर टिके हुए हैं।

—स्टर्नर

९. परिमाण किसी भी व्यक्ति एवं राष्ट्र की महानता की निकृष्टतम कसोटी है।

—जवाहरलाल नेहरू

१०. महान् दोषों से संपन्न होना भी महान्पुरुषों का ही अधिकार है।

—रोशफूको

११. विश्व को महान्पुरुषों की आवश्यकता है, किन्तु उनके पुजारियों एवं खुशामदियों की नहीं।

—वीरजी

१२. महान्पुरुष वही है, जो कहने से पहले करके दिखाता है।

—कन्फ्यूसियस

१३. मनुष्य को तुच्छ (छोटी) बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए; यदि वह उन्हीं में फंसा रहेगा तो बड़े काम कब करेगा एवं महान् कब बनेगा।

—कन्फ्यूसियस

१४. किसी महापुरुष को तब तक महान् नहीं समझना चाहिये, जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो जाती।

१५. स्वामी रामतीर्थ (जब कालेज में प्रोफेसर थे) ने काले पट्टे (ब्लैक बोर्ड) पर लकीर खींच कर कहा—इसे छोटी बनाओ। तब एक लड़का उसे मिटाने लगा, स्वामी जी ने कहा—मिटाओ मत! सभी छात्र स्तब्ध थे। इतने में एक बुद्धिमान छात्र ने उस लकीर के नीचे बड़ी लकीर खींच दी एवं वह छोटी बन गई। तत्त्व यह है कि दूसरों को मिटाओ मत, अपने गुणों को बढ़ाकर महान् बनो।

१६. गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधराः ।

पंकनिमग्न हाथियों का उद्धार हाथी ही कर सकते हैं, इसी प्रकार महापुरुषों की सहायता महापुरुष ही कर सकते हैं।

१७. **महानता के विघातक दोष—**

आलस्यं स्त्री-सेवा, सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् !
सन्तोषो भीरुत्वं, षड् व्याघाता महत्त्वस्य ॥

—हितोपदेश १।५

आलस्य, स्त्री-सेवा, अस्वस्थता, जन्मभूमि से प्रेम, सन्तोष और भय—ये छह दोष महानता का नाश करनेवाले हैं।

२३ महापुरुषों का सम्पर्क

१. महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

—भक्तिसूत्र ३९

महात्माओं का सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।

२. महाजनस्य संसर्गः, कस्य नोन्नतिकारकः?
पद्मपत्रस्थितं वारि, धत्ते मारकतिं द्युतिम् ।

—पञ्चतन्त्र ३।५९

महापुरुषों का संसर्ग किसे उन्नत नहीं करता ? देखो कमलपत्र पर ठहरा हुआ जलबिन्दु मरकतमणिवत् चमकने लगता है।

३. कीटोऽपि सुमनःसंगा-दारोहति सतां शिरः ।
अश्मापि याति देवत्वं, महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ।।

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४५

कीड़ा भी फूलों की संगति से सज्जनों के सिर पर पहुंच जाता है तथा महापुरुषों द्वारा स्थापित किया हुआ पत्थर भी देवता कहलाने लगता है।

४. काचः काञ्चनसंसर्गाद्, धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।

—हितोपदेश-प्रास्ताविका ४१

सोने के संसर्ग से काँच भी मरकतमणिवत् प्रभा धारण करने लगता है।

५. मलयाचल गन्धेन, त्विन्धनं चन्दनायते ।

मलयाचल पर रहे हुए चन्दन की सुगन्धि से साधारण वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं।

६. रथाम्बु जाह्नवी संगात्, त्रिदशैरपि पूज्यते ।

——प्रसंगरत्नावली

गलियों का गंदा पानी भी गंगा में मिलने से गंगाजल कहलाकर देवों द्वारा वन्दनीय बन जाता है ।

७. स्वर्णीस्यातां सिद्धरसे, शीशक-त्रपुणी अपि ।

——त्रिषष्ठिशलाका-पुरुषचरित्र २।३

रस के संयोग से शीशा और त्रपु भी सोना बन जाते हैं ।

२४ बड़ा आदमी और बड़प्पन

१. He who humbles shall be exalted

—अंग्रेजी कहावत

हि हू हम्बल्स शैल बि एग्जाल्टेड ।

बड़ा बनना हो तो छोटा बनो ।

२. गांधीजी थर्डक्लास में मुसाफिरी कर रहे थे । किसी के पूछने पर बोले—"भारत की जनता गरीब है और मैं जनता का सेबक हूँ । फोर्थ क्लास तो है नहीं, अन्यथा उसी में बैठता ।"

३. प्रभुता मेरुसमान, आप रहै रजकण जिसा ।
तिके पुरुष धन जाण, रविमण्डल में **राजिया** !

—सोरठा संग्रह

४. हाथी हींडत देख, खर कूकर लव-लव करै ।
बड़पण तणों विवेक, क्रोध न आणैं **किसनिया** !

—सोरठा संग्रह

५. छोटे आदमियो से सद्व्यवहार करके बड़े आदमी अपना बड़प्पन प्रकट करते हैं । —कार्लाइल

६. **तीन बड़प्पन पाते हैं**—(१) दूसरों को थोड़ा भरोसा देकर अधिक काम करनेवाले (२) काम कर देने के बाद अहंकार न करनेवाले (३) दूसरे को सफल होते देखकर रंज न करनेवाले ।

७. बातांस्यू बड़ा को हुवैनी ।

—राजस्थानी कहावत

८. पहले थे हम मर्द, पीछे नारी कहाये।
कर गंगा में स्नान, पाप सब धोय गमाये॥
कर शिल्ला से युद्ध, घाव बरछिन के खाये।
उछल पड़े अग्निकुंड में, तब हम बड़े कहाये॥

—भाषाश्लोकसागर

९. सुमेर की बैठक में दो डोरा हुवै।
● बड़ा लाज री खातर मरै।

—राजस्थानी कहावतें

१०. High winds blow on high hills.

—अंग्रेजी कहावतें

हाई विंड्स ब्लो ओन हाई हिल्स।
बड़ों की बड़ी बात।

११. बड़ी रात रा बड़ा तडका।
● बड़ां रा बड़ा काम।
● मोटां री पंसेरी ही भारी।
● बड़ा कहै ज्यूं करणो, करै ज्यूं नहीं करणो।
● मोटां री बात करै सो बिना मौत मरे।
● मोटांरे माँयने बड़नो सोहरो, पण निकलणो दोहरो।
● बड़ां रै कान हुवै, आंख्यां को हुवैनी।
● राम जठे अयोध्या,
● राणाजी थरपै जठेई उदयपुर।

—राजस्थानी कहावतें

उत्तमपुरुष

१. गुणैरुत्तमतां यान्ति, नोच्चैरासनसंस्थिताः ।
प्रासादशिखरारूढः, काकः किं गरुडायते ॥

—चाणक्यनीति १६।६

ऊंचे आसन पर बैठने-मात्र से मनुष्य उत्तम नहीं बन जाता, गुणों से बढ़ता है । क्या महल के शिखर पर बैठने से काग गरुड़ बन जाता है ? कभी नहीं ।

२. सर्वोत्तम मनुष्य वे ही हैं, जो अवसरों की बाट न देखकर उनको अपने दास बना लेते हैं ।

—ई. एच. चेपिन

३. भणेल करतां गणेल सरस, गणेल करतां फरेल सरस अनें फरेल करतां कषायेल सरस ।

—गुजराती कहावत

४. जलेर् मध्ये गंगाजल, फलेर् मध्ये आम ।
नारीर् मध्ये सीता सती, पुरुषेर् मध्ये राम ॥

—बंगला कहावत

५. झाड़ी-बंको झाबुवो, रणबंको कुशलेश ।
नारी-बंकी पुग्गल तणीं, नर बंको मरुधर देश ॥

६. उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा, कम्मपुरिसा—१. धम्मपुरिसा—अरिहंता, २. भोगपुरिसा—चक्कवट्टी, ३. कम्मपुरिसा–वासुदेवा ।

—स्थानांग ३।१।१२८

उत्तम पुरुष तीन प्रकार होते हैं—(१) धर्मपुरुष (२) भोगपुरुष (३) कर्मपुरुष । धर्मपुरुष—तीर्थङ्कर, भोगपुरुष—चक्रवर्ती और कर्मपुरुष—वासुदेव माने जाते हैं ।

२६ उत्तमपुरुषों का स्वभाव

१. दग्धं-दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
घृष्टं-घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धम् ।
छिन्नं-छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुदं चेक्षुखण्डं,
प्राणान्तेऽपि प्रकृति-विकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥

बार-बार जलाने पर सोना अधिक चमकीला बनता है, बार-बार घिसने पर चन्दन अधिक सुगन्ध फैलाता है। बार-बार काटने पर इक्षुखण्ड अधिक मीठा स्वाद देता है—तत्त्व यह है कि प्राणान्त कष्ट में भी उत्तम-पुरुषों की प्रकृति में विकार नहीं आता ।

२. गव्हां चा आटा आणी कुणब्या चा बेटा ।

—मराठी कहावत

सताने पर भी उत्तम-उत्तम ही फल देता है ।

३. आपन्नार्ति-प्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ।

—मेघदूत १।५३

उत्तमपुरुषों की संपत्तियाँ, दुःखितों के दुःखों को शान्त करने के लिए ही होती हैं ।

४. त्यजन्त्युत्तमसत्त्वा हि, प्राणानपि न सत्पथम् ।

—कथासरित्सागर

उत्तमपुरुष प्राणों का त्याग कर देते हैं, लेकिन सच्चेमार्ग का नहीं ।

५. प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक २७

नीच-मनुष्य विघ्नों के होने के भय से काम का आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम-मनुष्य काम का आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीच में छोड़ देते हैं। परन्तु उत्तमपुरुष जिस काम का आरम्भ कर देते हैं, उसे बार-बार विघ्न आने पर भी पूरा करके ही छोड़ते हैं।

६. केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥

—मेघदूत

उत्तमपुरुषों की संपत्तियाँ, दुःखितों के दुःखों को शान्त करने के लिए ही होती है।

७. शास्त्रं बोधाय दानाय, धनं धर्माय जीवितम्।
वपुः परोपकराय, धारयन्ति मनीषिणः ॥

—चन्दचरित्र, पृष्ठ ७०

उत्तमपुरुष शास्त्रपठन ज्ञान के लिए, धन दान के लिये, जीवन धर्म के लिए और शरीर परोपकार के लिए धारण करते हैं।

२७ अधम (नीच) पुरुष

१. परवादे दशवदनः, पररन्ध्रनिरीक्षणे सहस्राक्षः।
सद्वृत्तवित्तहरणे, बाहुसहस्राऽर्जुनो नीचः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५६

नीच व्यक्ति परनिन्दा करने के लिए दशवदन (दस मुंहवाला-रावण) है, पर-छिद्र देखने के लिए सहस्राक्ष (हजार नेत्रोंवाला-इन्द्र), और दूसरों का सदाचाररूपी धन हरने के लिए सहस्रबाहु (हजार भुजाओं-वाला अर्जुन) है।

२. यस्मिन् देशे समुत्पन्न–स्तमेव निज-चेष्टितैः।
दूषयत्यचिरेणैव, घुणकीट इवाधमः॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार पृष्ठ ५६

घुण (कीट) जिस लकड़ी में पैदा होता है, उसी को खराब करता है। ऐसे ही नीच व्यक्ति दुराचरणों द्वारा अपने ही वंश को दूषित करता है।

३. चणका इव नीचा, नोदरस्थापिता अपि नाविःकुर्वाणास्तिष्ठन्ति।

—नीतिवाक्यामृत २७।३०

नीच मनुष्य चणों के समान हैं, जो पेट में रखने पर भी आवाज किए बिना नहीं टिकते।

४. बहुत किये हू नीच को, नीच सुभाव न जात।
छांडि ताल जलकुम्भ में कौआ चोंच भरात॥

—वृंदकवि

५. नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य, स्वामिनं हन्तुमिच्छति ।
मूषिको व्याघ्रतां प्राप्य, मुनिं हन्तुं गतो यथा ॥

—हितोपदेश

नीच अच्छे पद को पाकर अपने स्वामी को ही मारना चाहता है। जैसे— चूहा बाघ बनकर मुनि को मारने चला।

● एक योगी की झोंपड़ी में चूहा फिर रहा था। उसे पड़कने बिल्ली दौड़ी। योगी को दया आई और मंत्रशक्ति से चूहे को बिलाव बना दिया। बिल्ली तो भाग गई, लेकिन उस पर कुत्ता दौड़ा। योगी ने विलाव को बाघ का रूप दे दिया। उसे भूख लगी और कृतघ्न योगी को ही खाने के लिए तैयार हुआ। योगी ने कहा—'पुनर्मूषको भव' वह बाघ तत्काल चूहा बन गया और बिल्ली आकर उसे खा गई।

६. कुजात मनायां बांथाँ पड़े।
सुजात मनायाँ, पगाँ पड़े ॥

● हाथी रा दांत, कुत्ते री पूंछ और कुमाणस री जीभ सदा आँटी ही रेवै।

—राजस्थानी कहावत

७. वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।
मर जाना भला, पर नीच का सङ्ग अच्छा नहीं।

८. नीच चंग सम जानिबो, सुनि लखि "तुलसीदास"।
ढील देत महि गिर परत, खैंचत चढ़त अकास ॥

२८ • शारीरिकदोष पर आधारित अधमता

१. सौ नीच र एक आंख मींच।

—**राजस्थानी कहावत**

२. सौ में फूल सहँस में काणों, लाखाँ मांहो ईंचाताणो।
ईंचाताणें करी पुकार, मुझसे अधिको है मंजार॥

३. खाटरा खटदोषेण, अष्टदोषेण मंजरा।
बाड़ा बहत्तर दोषेण, काणे संख्या न विद्यते॥

४. काणियो, बाणियो ने स्वामीनाराणियो।

—**गुजराती कहावत**

५. भस्माङ्गुलिर्बकोड्डायी, बालशौची तथा हिही।
धारावर्ती चक्रवर्ती षडेते पुरुषाधमाः॥

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३८०**

स्त्री की गुलामी करनेवाले पुरुषों की अपेक्षा से छः प्रकार के अधम-पुरुष कहे हैं—

(१) **भस्माङ्गुली**—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन चूल्हा जलानेवाला।

(२) **बकोड्डायी**—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार पानी भरने के लिए तालाब पर जानेवाला एवं वहां बगुलों को उड़ानेवाला।

(३) **बालशौची**—प्रातः उठते ही स्त्री के आदेशानुसार प्रतिदिन बालकों को टट्टी बिठानेवाला।

(४) **हीही**—स्त्री की हर बात पर हीही करके दाँत दिखानेवाला।

(५) **धारावर्ती**—स्त्री के बनाए हुए कानूनों को पूरी तरह से पालनेवाला।

(६) **चक्रवर्ती**—स्त्री के कुचक्र में बुरी तरह से फंसा रहनेवाला।

१ विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः ।

—कुमारसम्भव १।५९

विकार उत्पन्न होनेवाली वस्तु पास होने पर भी जिनका मन विकृत नहीं होता, वास्तव में वे ही धीर पुरुष हैं ।

२. चलन्ति गिरयः कामं, युगान्तपवनाहताः ।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव, धीराणां निश्चलं मनः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८१

प्रलयकाल के पवन से चलकर पर्वत भले ही अपने स्थान से हट जाएँ परन्तु धीरपुरुषों का निश्चल मन घोर कष्टों में भी विचलित नहीं होता ।

३. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक—८४

नीतिज्ञपुरुष चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा करें । लक्ष्मी चाहे आए चाहे जाए तथा चाहे आज ही मरना पड़े, चाहे युगान्तर में, लेकिन धीरपुरुष न्यायमार्ग से एक कदम भी पीछे नहीं हटते ।

४. काच कथीर अधीर नर, कस्यां न उपजै प्रेम ।
कसणी तो धीरा सहै, के हीरा के हेम ॥

५. क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यङ्कशयनं,
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।

क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बर धरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक ८२

कभी भूमि पर शयन होता है और कभी पल्यङ्कों पर, कभी केवल शाक का आहार प्राप्त होता है और कभी स्वादिष्ट साल्योदन, कभी गुदड़ी ओढ़ कर समय बिताना होता है और कभी दिव्यवस्त्र पहनकर। वास्तव में कार्यार्थी मनस्वी (धीर-पुरुष) सुख-दुःख की परवाह न करके समभाव रहता है।

६. तं तु न विज्जइ कज्जं, जं धिइमंतो न साहेइ ?

—बृहत्कल्पभाष्य, १३५७

वह कौन-सा कठिन कार्य है, जिसे धैर्यवान् व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकता।

७. अंगणवेदी वसुधा, कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः, कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥

—अभिज्ञानशाकुन्तल

अपनी प्रतिज्ञा पालने में दृढ़ धीरपुरुष के लिए पृथ्वी अंगन की वेदी के समान, समुद्र एक नाली के समान, पाताल समतल भूमि के समान और मेरु पर्वत वल्मीक [कृमीपर्वत] के समान हो जाता है, अर्थात् कठिन से कठिन काम भी उसके लिए सरल हो जाता है।

८. दरिद्रता धीरतया विराजते।

—चाणक्यनीति, ९।१४

धीरता से दरिद्रता भी चमक जाती है।

९. धिती तु मोहस्स उपसमे होति।

—निशीथभाष्य ८५

मोह का उपशम होने पर ही धृति (धीरता) होती है।

३० धैर्य

१. धैर्य के नेत्रों से देखने पर महान् से महान् संकट भी धूम्र के बादलवत् क्षणभर में अदृश्य हो जाता है।

—वीरजी

२. धैर्यं न त्याज्यं विधुरेऽपि काले।
विपत्ति के समय भी धैर्य को नहीं छोड़ना चाहिये।

३. धन ! धीरज नहीं भूलिये, देख दुखों की चोट।
सागर में आती रहीं, सदा से भरती-ओट।

—दोहा-संदोह

४. न स्वधैर्यादृते कश्चिदभ्युद्धरति संकटात्।

—योगवाशिष्ठ ५।२६।१०

अपने धैर्य के बिना और कोई भी मनुष्य का संकट से उद्धार नहीं कर सकता।

५. धैर्य जिसके पास है, वह जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

—फ्रैंकलिन

६. वे कितने निर्धन हैं, जिनके पास धैर्य नहीं है। क्या आज तक कोई जख्म धैर्य के बिना ठीक हुआ है ?

—शेक्शपियर

७. शनैः कन्था शनैः पन्था, शनैः पर्वतलङ्घनम्।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तं, पञ्चैतानि शनैः शनैः।

—प्रसङ्गरत्नावली

(१) कंथा—पुराने वस्त्र को पहनना (२) रास्ता काटना (३) पर्वत लांघना (४) विद्या पढ़ना (५) धन पैदा करना—ये पांच काम धीरे-धीरे करने चाहिएँ।

8, Little starcks failgrate Aucts,
लिटल स्टार्क्स फेल ग्रेट आॅक्स।

—अंग्रेजी कहावत

● धीरे-धीरे रे मनां, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आयां फल होय।

—कबीर-साखी

9. Rome was not built in a day.
रोम वाज नॉट बिल्ट इन ए डे।

—अंग्रेजी कहावत

हथेली पर दही नहीं जमता।

१०. न हो जल्दबाजी से मकसद हसूल।
जो फल चाहता है तो मत तोड़ फूल॥

—उर्दू शेर

११. यह **रहीम** निज संग ले, नहिं जन्मत है कोय।
वैर प्रीति अभ्यास यश, होत-होत ही होय।

१२. धीरजना फल मीठा छे, सबूरी नो बदलो साहेब आपे।

● तेल जुओ तेल नी धार जुओ।

—गुजराती कहावतें

१३. तेल देखो तिलां री धार देखो।

● एक सूं नहीं दोनूं आख्याँ सूं देखणो।

● ऊंट नैं उठतां ही ढाण नहीं घालणो।

● उभां खेजड़ाँ बेझ थोड़ा ही पड़ै। (पहले काटना होगा)

- आंगली पकड़ र पुहुंचो पकड़णो।
- गाड़ी कनैं बलद आया रहसी।
- नाई-नाई ! केश कित्ता ?
  जजमान ! मुंह आगै आवै है।

—राजस्थानी कहावतें

१४. विलम्ब न करने के काम—

धर्मारम्भे ऋणच्छेदे, कन्यादाने धनागमे।
शत्रुघाते ऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥

धर्म का प्रारम्भ, ऋणच्छेदन, कन्यादान, धनग्रहण, शत्रुविनाश, अग्नि-शमन और रोगशमन—इन कामों में कालक्षेप-विलम्ब नहीं करना चाहिये।

उत्तावल

१. सहसा विदधीत न क्रिया-मविवेकः परमापदांपदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं, गुणलुब्धा स्वयमेव संपदः।।

—किरातार्जुनीय

किसी काम को उत्तावल से (बिना विचारे) न करे। अविवेक आपत्तियों का महान कारण है। विचारपूर्वक धैर्य से काम करनेवाले को उसके गुणों में लुब्ध होकर संपत्तियाँ स्वयमेव सेवन करती हैं।

२. हड़बड़ में जो भी करो, बिगड़ जायगा काम।
सीता को बनवास दे, पछताए श्रीराम।

—दोहा-संदोह

3, Haste is the mother of waste.
हेस्ट इज दी मदर आफ वेस्ट।

—अङ्गरेजी कहावत

शीघ्रता बुराई की जननी है।

४. उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यमादौ,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते--
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः।।

——भर्तृहरिनीतिशतक १००

पंडितपुरुष को उचित या अनुचित कोई भी काम करने से पहले उसका परिणाम देख लेना चाहिये। अति उत्तावल से किये गये कार्यों का फल शल्यवत् हृदय को जलानेवाला एवं विपत्ति के लिए होता है।

५. सहसा करि पाछे पछताहीं।
कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं॥
—**रामचरितमानस अयोध्या कांड २३०-४**

६. शल्य-वह्नि-विषादीनां, सुकरैव प्रतिक्रिया।
सहसा कृतकार्योत्था-ऽनुतापस्य तु नौषधम्॥
—**चन्दचरित्र पृष्ठ ४६**

शल्य, अग्नि एवं विष आदि का इलाज होना सुकर है, किन्तु उत्तावल में किए हुए कार्य के पश्चात्ताप की कोई औषधि नहीं है।

७. उत्तापकत्वं हि सर्वकार्येषु सिद्धीनां प्रथमोऽन्तरायः
—**नीतिवाक्यामृत ६।५४**

व्याकुलता-हड़बड़ाहट सब कार्यों की सिद्धियों में पहला विघ्न है।

८. उतावला सो बावला, धीरा सो गम्भीरा।
—**राजस्थानी कहावतें**

९. पगथिये-पगथिये चढ़ाय, बहुभूख्या बे हाथे खवाय नहिं।
उतावले आँबा पाके नहिं। उतावल मां काचुं कपाय।
अथरो माणस अथड़ाइपड़े। —**गुजराती कहावत**

१०. उतावलां री (आंख मींचकर युद्ध में मरनेवालों की) देवल्यां हुवै र धीरां रा गाम बसै।
—**गुजराती कहावत**

११. सामे पाणी पैसवो, तामस में अरदास।
चढ़े ताव औषधि करे, तीनों होत विनाश॥

१२. ऊंट तो कूद्यो ही कोनी, पलाण पहली ही कूदग्यो।
—**राजस्थानी कहावत**

● बैल न कूदा, कूदी गौन।
—**हिन्दी कहावत**

१३. हूँ आयो तू चाल।
—**राजस्थानी कहावत**

३२ तेजस्वी-पुरुष

१. होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

—हिन्दी कहावत

२. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ।

—रघुवंश

तेजस्वियों की उम्र नहीं देखी जाती ।

३. सिंहः शिशुरपि निपतति, मदमलिन-कपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां, न खलु वयस्तेजसो हेतुः ।

—भर्तृहरि नीतिशतक ३८

शेर बच्चा होने पर भी मदमलिन कुंभस्थलवाले हाथियों पर जा गिरता है, क्योंकि तेजस्वियों का यह स्वभाव ही है, अवस्था तेज का कोई कारण नहीं ।

४. बालस्यापि रवेः पादाः, पतन्त्युपरि भूभृताम् ।
तेजसा सह जातानां, वयः कुत्रोपयुज्यते ॥

—पञ्चतन्त्र १।३५७

बालक अर्थात् नवउदित सूर्य की किरणें भी पर्वतों के मस्तक पर गिरती हैं। तेजस्वियों के लिये यौवन की कोई खास बात नहीं है ।

५. प्रसिद्ध नाटककार श्री हरिश्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपना प्रसिद्ध नाटक **अब्हसन** १४ वर्ष की आयु में लिखा था। संत ज्ञानेश्वर ने १२ वर्ष की आयु में भगवद्गीता पर मराठीभाषा में **ज्ञानेश्वरी टीका** लिखी थी। भारतकोकिला सरोजनी नायडू ने १३ वर्ष की आयु में १३००

पंक्तियों की एक **अंगरेजी कविता** लिखी थी। कवीन्द्र टैगोर ने इङ्गलैण्ड के महाकवि शेक्सपियर के **मेकबैथ** नाटक का बंगला अनुवाद १४ वर्ष की आयु में किया था। शंकराचार्य ने १६ वर्ष की आयु में समूचे भारत के पण्डितों को **शास्त्रार्थ** में पराजित किया था। बादशाह **अकबर** ने १३ वर्ष की आयु में **राजगद्दी** प्राप्त की और १७ वर्ष की आयु में **राजकाज** संभाल लिया था। छत्रपति शिवाजी ने १३ वर्ष की आयु में **तोरण** का किला जीत लिया था।[1]

—नवभारत टाइम्स, २ अक्टूबर १६६६,
(सं० चतुर्भुजचान्द्रायण)

६. क्लिश्यन्ते केवलं स्थूलाः, सुधीस्तु फलमश्नुते।
दन्ता दलन्ति कष्टेन, जिह्वा गिलति लीलया॥

मोटे-ताजे खाली कष्ट उठाते हैं, किन्तु उसका फल बुद्धिमान ही पाते हैं। देखो! दाँत कितने परिश्रम से भोजन को चबाते हैं और जीभ उसे लीला करती हुई निगल जाती है।

७. अन्यायोऽपि खलु न्यायो, यस्तेजस्विभिरादृतः।
अङ्गीकृतः प्रदीपौघै-र्दर्शोऽपि हि महोत्सवः॥

तेजस्वी व्यक्ति द्वारा स्वीकृत अन्याय भी न्याय बन जाता है। देखो! दीपक-समूहों से स्वीकृत होने से अमावस्या भी दीपावली नामक एक त्यौहार बन गई।

---

१. जैनश्वेताम्बर तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीजयगणी ने ११ वर्ष की आयु में **संतगुणमाला** रची एवं श्रीमद्राजचन्द्र ने अत्यल्पआयु में **मोक्षमाला** रची थी।

३३ समर्थपुरुष

१. कोऽतिभारः समर्थानां, किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां, कोऽप्रियः प्रियवादिनाम् ॥

—चाणक्यनीति ३।१३

समर्थपुरुषों के लिए अतिभार कुछ भी नहीं, व्यापारियों के लिए दूर कुछ नहीं, विद्वानों के लिए विदेश में कोई कठिनाई नहीं एवं मीठा बोलनेवालों के लिए अप्रिय कोई भी नहीं।

२. समरथ को नहिं दोष गुसाईं ।
रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

—रामचरितमानस बालकांड ६८-८

३. लूंठाई रा लाल तुर्रा ।

—राजस्थानी कहावत

४. असहायः समर्थोऽपि, तेजस्वी किं करिष्यति ।
निर्वाते ज्वलिते वह्निः, स्वयमेवोपशाम्यति ॥

—पञ्चतन्त्र ३।५५

समर्थ एवं तेजस्वी पुरुष भी सहायक के बिना कुछ नहीं कर सकता। वायुरहित स्थान में जली हुई अग्नि स्वयमेव बुझ जाती है।

३४ शूरवीर पुरुष

१. चत्तारि सूरा पण्णत्ता, तं जहा—
खंतिसूरे, तवसूरे, दाणसूरे जुद्धसूरे।
खंतिसूरा अरिहंता, तवसूरा अणगारा, दाणसूरे वेसमणे, जुद्ध-
सूरे वासुदेवे।

—स्थानांग ४।३।३१७

चार प्रकार के शूर (वीर) कहे हैं—

तद्यथा—(१) क्षमाशूर, (२) तपःशूर, (३) दानशूर, (४) युद्धशूर।

क्षमाशूर—अरिहंत होते हैं।

तपःशूर—अनगार साधु होते हैं।

दानशूर—वैश्रवण होते हैं।

युद्धशूर—वासुदेव होते हैं।

२. शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा?
मनोज-वाणैर्व्यथितो न यस्तु।

—शंकर-प्रश्नोत्तरी

वीरों में सबसे बड़ा वीर कौन है?
वही है, जो काम-बाणों से व्यथित नहीं होता।

३. एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे परिमोयए।

—आचाराङ्ग २।६

वही वीर एवं प्रशंसित है, जो कर्मों से बन्धे हुए जीवों को मुक्त करता है।

४. दया मया हिरदै बसै; दिल का तजै दरद्द।
मार सकै मारै नहीं, ताका नाम मरद्द॥

५. पूरा मर्द वह है, जो देता लेता नहीं, आधा मर्द वह है, जो लेता है पर देता नहीं। पर नामर्द वह है, जो लेता है पर देता नहीं।

६. गर्जन्ति न वृथा शूरा, निर्जला इव तोयदाः।

—बाल्मीकिरामायण ६।६५।३

निर्जल-बादलों की तरह शूरपुरुष वृथा गर्जन नहीं करते।

७. नैव शूरा विकत्थन्ते, दर्शयन्त्येव पौरुषम्।

—भागवत १०।५०।२०

शूरपुरुष आत्मश्लाघा नहीं किया करते। वे तो पराक्रम करके ही दिखलाते हैं।

८. नाभिषेको न संस्कारः, सिंहस्य क्रियते मृगैः।
विक्रमार्जितराज्यस्य, स्वयमेव मृगेन्द्रता।

—हितोपदेश २।१६

मृग न तो राज्याभिषेक करते हैं और न ही कोई राज्यसम्बन्धी संस्कार। सिंह की मृगेन्द्रता उसके अपने पराक्रम से ही अर्जित है।

९. एकोऽहमसहायोऽहं, कृशोऽहमपरिच्छदः।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता, मृगेन्द्रस्य न जायते॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २४०

मैं अकेला हूँ, असहाय हूँ, दुर्बल हूँ एवं प्रजारहित हूं--ऐसे कमजोरी के बिचार स्वप्न में भी सिंह के मन में नहीं आते।

१०. एकेनापि हि शूरेण, पदाक्रान्तं महीतलम्।
क्रियते भास्करेणेव, परिस्फुरिततेजसा।

—भर्तृहरि-नीतिशतक १०८

जैसे—सूर्य अपनी किरणों से सारे जगत को प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार अकेला ही शूरपुरुष सारी पृथ्वी को पाँव तले दबाकर वश में कर लेता है।

११. कायर मृत्यु से पहले ही मृत्यु का कई बार अनुभव कर लेते हैं। जबकि वीरपुरुष एक बार से अधिक नहीं मरते।

—शेक्शपियर

१२. यह संसार कापुरुषों के लिए नहीं है, अतः पलायन करने का विचार मत करो !

—विवेकानन्द

३५ कायर

१. कायर तभी धमकी देता है, जब सुरक्षित होता है।

—गेटे

२. कायर लोग जीभ का दुरुपयोग करते हैं, वीरपुरुष नहीं। कुत्ते भौंकते हैं, सिंह नहीं।

३. एक कायर कुत्ता इतनी तीव्रता से नहीं काटता, जितनी तीव्रता से भौंकता है।

४. कातरा एव जल्पन्ति, यद्भाव्यं तद् भविष्यति।

—पञ्चतन्त्र २।१३६

कायरमनुष्य ही यह कहा करते हैं कि जो होना है, वही होगा।

५. कायर होने के कारण ही हम दूसरों का खून करने का विचार करते हैं।

—महात्मा गांधी

६. घर चा बाघ व बाहेर ची शेली।

—मराठी कहावत

घर में शूर और बाहर कायर।

● म्यांऊ रै मूंढै कुण चढ़ै।

—राजस्थानी कहावत

८. घर शूरा मूढ़ पंडिया, गाँव गवाँरां गोठ।
सभा माहिं बतलावतां, थर-थर धूजै होठ॥

—गणधरवाद से

● दोरी पियारी मोरी माय ! भारी विपति पड़ी है आय ।
अबके फेरे छूटूँगो, तो पड्यो डोबरा कूटूंगो ॥

एक कुम्हार फौज में भर्ती हुआ । थोड़े ही दिनों बाद लड़ाई में जाना पड़ा । ज्यों ही तलवारें चमकने लगीं, उपरोक्त दोहा कहता हुआ भाग कर अपने घर आ गया ।

१०. कायर राजपूत युद्ध में गया । पीछे उसकी माता पुत्र की चिन्ता करने लगी, तब बहू ने कहा—

बहुवर पूछे सासूजी नें, क्यूं छो आज उदासी ?
म्हारा कंतरो मनैं भरोसो, कुशल-खेम घर आसी ॥
राड़ करंतां लारै रहसी, बातां घणी बणासी ।
वागां-खगां नणदरो वीरो, वेगो भाग्यो आसी ॥
बात करंतां बेला लागी, अपजश तणैं पवाड़ै ।
डीलांरा कपड़ा खोसावी, आया मूंड उघाड़ै ॥

इस तरह अपने पुत्र को आया देखकर सास ने कहा—

दाद देई नै सासू बोली (तैं) बात आगमरी जांची ।
कहती जिसो थारो कंत निवड़ियो, साची हे बहू ! साची ॥

—प्राचीनसंग्रह से

३६ शूरता और कायरता

१. नयेनाङ्कुरितं शौर्यं, जयाय न तु केवलम्।
अन्ययुक्तं विषंयुक्तं, पथ्यं स्यादन्यथा मृतिः।

—**सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १५७**

न्याय से युक्त शूरता जय करनेवाली है, केवल शूरता नहीं। जैसे–अन्य द्रव्य से मिश्रित विष पथ्य बन जाता है अन्यथा उससे मृत्यु हो जाती है।

२. कातर्यं केवला नीतिः, शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।

—**कालिदास**

केवल नीति की बात करना कायरता है और केवल (नीतिशून्य) शूरता दिखलाना श्वापद–हिंसकपशु की-सी चेष्टा है।

३. वीर और कायर में एक कदम का अन्तर है—वीर का कदम आगे और कायर का कदम पीछे रहता है।

—**अमरमुनि**

४. शूर-सिंह-सपूत के नयनन में लखजात।
कायर-चौर-कपूत का, चेहरा चुगली खात।

५. अत्याचार और भय–कायरता के दो पहलू हैं।

बलवान-व्यक्ति

१. बार पुरुष बलवान, सबल इक वृषभ कहीजै ।
दस वृषभ इक महिष, महिष दस तुरी गिणीजै ॥
दस तुरी एक गयंद, गयंद शतपंचहि केहर ।
केहर मिल दस सहस्र, एक अष्टापद सुन्दर ॥
अष्टापद दसलक्ष, एक बलदेव बखाणो ।
दो बलदेव सुबोध, सबल नारायण जाणो ॥
दो नारायण सबल, मिली चक्रीश थुणीजै ।
चक्री मिल दस सहस्र, एक सुरइंद गुणीजै ॥
एहवा इन्द्र अनन्त, एकठो बल सहु कीजै ।
एहवो बल जिनराज, अंगुली चिट्टी न लीजै ॥

—भाषाश्लोकसागर

२. हस्ती स्थूलतरः सचाङ्कुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो,
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ।
वज्रेणाभिहताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरि—
स्तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः ।

—पंचतन्त्र १।३५८

बहुत बड़ा हाथी अंकुश के अधीन है, क्या अंकुश हाथी के बराबर है ? छोटा सा दीपक जलने पर अंधेरा नष्ट हो जाता है, क्या अन्धेरा दीपक के बराबर है ? वज्र का प्रहार लगने पर पर्वत गिर जाते हैं, क्या पर्वत वज्र के बराबर हैं ? नहीं–नहीं, वास्तव में जिसका तेज–प्रताप अधिक है, वही बलवान है । स्थूल–मोटा होने से क्या है ?

३. बलवानपि निस्तेजाः, कस्य नाभिभवास्पदम् ?
निःशङ्कं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम् ॥

—**सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १७०**

बलवान होने पर भी निस्तेज व्यक्ति का हर एक पराभव कर देता है। देखो ! राख के ढेर होने पर लोग निःसंकोच पैर धरकर चलते हैं, क्योंकि वह निस्तेज है।

४. यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्स तितिक्खति।
तमाहु परमं खन्ति, निच्चं खमति दुब्बलो।
अबलं तं बलं आहु, यस्स बालबलं बलं ॥

—**संयुत्तनिकाय १।११।४**

जो स्वयं बलवान होकर भी दुर्बल की बातें सहन करता है, उसी को सर्वश्रेष्ठ क्षमा कहते हैं। वह बली निर्बल कहा जाता है, जिसका बल मूर्खों का बल है।

५. अत्थेगइयाणं जीवाणं बलियत्तं साहु,
अत्थेगइयाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहु।

—**भगवती १२।२**

धर्मनिष्ठ आत्माओं का बलवान होना अच्छा है और धर्महीन आत्माओं का दुर्बल रहना अच्छा है।

३८ अद्भुत बलिष्ठ-व्यक्ति

१. लाक्षागृह से बच निकलने के बाद जब पाण्डव वन में चलते-चलते थक गये, तब भीम ने सवारी बनकर भाइयों एवं माता को जंगल से पार किया था।

—महाभारत, आदिपर्व

२. की-वेस्टनगर (अमेरिका) का पीटर एल० जेकौक्स नामक व्यक्ति अपनी हथेलियों पर दो व्यक्तियों को बैठाकर ८० फीट तक चला जाता था।

- भारी वजन उठानेवाले **वेट लिफ्टर, मैक्स-सिक** नामक जर्मन खिलाड़ी के अपने शरीर का वजन १४७ पौंड था, लेकिन वह अपने वजन से ४० पौंड भारी व्यक्ति को १६ बार अपने एक हाथ से सिर से ऊपर तक उठा लेता था। उसके दूसरे हाथ में शराब से लबालब एक गिलास रहता था, लेकिन क्या मजाल कि शराब की एक बूँद भी छलक जाय!
- बिगोरेस नगर (फ्रांस) के **बैरन क्रिस्टोफे** के घोड़े की एक टाँग शिकार खेलते समय टूट गई। बैरन साहब ४२० पौंड भारी अपने घोड़े को पीठ पर लादे सवा मील रास्ता तय करके जानवरों के एक डाक्टर के पास जा पहुँचे।
- काउन्ट गेस्टन द-फायेक्स (फ्रांस) के एक दरबारी, **एरनौल्टन-द-एस्पेगने** को एक दिन भोजन के लिए लकड़ियों की व्यवस्था करने का आदेश मिला एवं वह लकड़ियाँ लादे खच्चर को अपनी पीठ पर उठाए, ८० सीढ़ियाँ पार कर एरनौल्टन महल में पहुंच गया।

- **कर्नल फ्रेडरिक बरनेबी** (१८४२-१८८५ ई०) छः फुट ४ इंच ऊँचे और काफी ताकतवर थे। कहते हैं, एक बार जब वे विंडसर (इंग्लैंड) में थे, तब उनके दोस्तों ने उनके साथ मजाक किया। उन्होंने दो टट्टुओं को सीढ़ी पर हांककर उनके कमरे में पहुँचा दिया। सीढ़ी चढ़कर टट्टू ऊपर तो चले गए। लेकिन उतरना एक समस्या हो गई। अन्त में बरनेवी ने उन्हें उठाकर अपनी बगल में दबाया और नीचे उतर गये।
- स्टटगार्टनगर (जर्मनी) में रहनेवाली सर्कस की खिलाड़िन **कुमारी हेलियट** इतनी बलवान थी कि जब वह बाजार में घूमने निकलती तो कंधों पर ८ मन भारी एक सिंह को बैठाये रहती थी।
- लौंस शहर (फ्रांस) में रहनेवाले ठगों के एक गिरोह के सरदार, **गुस्ताब रेहर्ड** में गजब की ताकत थी। एक दिन उसके गिरोह के दो सदस्य आपस में झगड़ पड़े। एक विलियर्ड-टेबिल पर खड़े वे दोनों छुरा हाथ में लेकर एक-दूसरे पर वार कर रहे थे। सरदार ने यह देखा तो झगड़ा शान्त करने के लिए टेबल के नीचे घुसकर उसने दोनों व्यक्तियों सहित टेबल को अपनी पीठ पर उठा लिया और उन्हें लिए लिए २० फीट बाहर चला गया।

—विचित्रा, वर्ष ३, अंक ४, सन् १९७१

३. **पर्वत** नामक कोली-युवक गाय लेने गया था। गाँव बाहर जाते ही अचानक बाघ-बाघणी मिले। दोनों हाथों से दोनों के कान पकड़ कर रोक लिए। फिर गाँव के मनुष्य आ गए। (२५ मार्च सन् १९५० में छोटे उदयपुर से पाँच माइल दूर सूरखेड़ा गाँव में यह घटना घटी थी)।

४. चुरू में पाँच ब्राह्मण भाई थे। सुथार के पास कार्यवश गाड़ी मांगी। उसने नहीं दी। रात को दो भाई गाड़ी को उठा ले गए और अपना काम करके उसे वृक्ष पर टांग गए। कोलाहल हुआ, मालिक गाड़ी को नहीं उतार सका। माफी माँगने पर जिन्होंने टांगी थी, आकर उतार दी।

३६ निर्बल

१. सबे सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय॥

२. वनानि दहतो वह्नेः, सखा भवति मारुतः।
स एव दीपनाशाय, कृशे कस्यास्ति सौहृदम्॥

—पञ्चतन्त्र ३।५७

जो वायु वन को जलाते समय अग्नि का सहायक होता है, वही दीपक को बुझा देता है, क्योंकि कमजोर के साथ किसी की मित्रता नहीं होती।

३. अश्वं नैव गजं नैव, व्याघ्रं नैव च नैव च।
अजापुत्रं बलिं दद्याद्, देवो दुर्बलघातकः॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १६२

न घोड़ा, न हाथी, न बाघ, बेचारे अजापुत्र—बकरे की बलि दी जाती है। देखो! देव भी दुर्बल का घातक है।

४. सुने रे, मैंने निर्बल के बल राम।
जब लग गजबल अपनो राख्यो, नेक सर्यो नहिं काम।
निर्बल हो, बलराम पुकारे! आए आधे नाम॥

—वैष्णवीमान्यता

५. कीड़ी नें मूत रो रेलो ही भारी।

—राजस्थानी कहावत

६. मुंगीला मूता चा पूर।

—मराठी कहावत

चींटी को पेशाब ही नदी।

७. क्रोधादिवश जहर खा लेना, कुएं में गिरकर, अग्नि में जलकर, पेट में छुरा भोंक कर और ट्रेन आदि के आगे लेटकर आत्महत्या कर लेना निर्बलता है, किन्तु स्कन्दक, गजसुकुमाल, आदिवत् धर्म के लिए मर मिटना सच्ची सबलता है।

८. बैल वैरागी बाकरो, चथी विधवा नार।
इतरा तो थाका भला, माता करे बिगाड़॥

९. जिण रस्ते केहर गया, रज लागी चरणांह।
ते तृण ऊभा सूकसी, नहिं चरसी हिरणांह॥

४० बल-पराक्रम

१. निवसन्ति पराक्रमाश्रया, न विषादेन समं समृद्धयः ।

—किरातार्जुनीय

जहां पराक्रम है, वहां समृद्धियां रहती हैं, विषाद-सत्त्वहीनता के साथ वे नहीं रहतीं ।

२. बलं त्रिविधमिति–सहजं, कालजं, युक्तिकृतं च ।

—चरकसंहिता-सूत्रस्थान ११।३६

तीन प्रकार का बल होता है—

(१) सहजबल—जो स्वभाव से ही होता है ।

(२) कालजबल—जो बाल्यादि अवस्थाओं के या शीत-हेमन्तादि ऋतुओं के अनुसार होता है ।

(३) युक्तिकृतबल—व्यायाम व पौष्टिक आहार आदि से होता है ।

३. दसविहे बले पण्णत्ते, तं जहा—
सोइंदियबले जाव फासिंदियबले,
णाणबले, दंसणबले, चरित्तबले, तवबले, वीरियबले ।

—स्थानांग १०।७४०

बल दस प्रकार का कहा है—(१) श्रोत्रेन्द्रियबल, (२) चक्षुरिन्द्रियबल, (३) घ्राणेन्द्रियबल, (४) रसनेन्द्रियबल, (५) स्पर्शनेन्द्रियबल, (६) ज्ञानबल (७) दर्शनबल, (८) चारित्रबल, (९) तपोबल, (१०) वीर्यबल ।

४. नो निन्हवेज्ज वीरियं ।

—आचारांग १।५।३

अपनी योग्यशक्ति को कभी छिपाना नहीं चाहिए।

५. बलवृद्धिकरास्त्विमे भावा भवन्ति ।
तद् यथा—बलवत्पुरुषे देशेजन्म, बलवत्पुरुषे काले च, सुखश्च कालयोगः, बीज-क्षेत्र-गुणसंपच्च, आहारसंपच्च, शरीर-संपच्च, सात्म्यसंपच्च, सत्त्वसंपच्च, स्वभावसंसिद्धश्च यौवनं, कर्म च, संहर्षश्चेति ।

—चरकसंहिता-शारीरस्थान ६।१३

(१) बलवानपुरुषों के देश (सिंध-पंजाब) में जन्म, (२) बलिष्ठों के कुल में जन्म, (३) बलिष्ठों के काल में जन्म, (४) सुखकारी काल का संयोग, (५) अच्छे बीज, अच्छे क्षेत्र एवं अच्छे गुणों का संयोग, (६) उत्तम आहार का सेवन, (७) शरीर का उत्तम संगठन, (८) उत्तम आहार-विहार का अभ्यास (९) उत्तम गुणों में रमण, (१०) स्वभाव-संसिद्धि, (११) जवानी, (१२) व्यायाम आदि क्रियाएं, (१३) मन की प्रसन्नता। ये १३ बातें भाव बल को बढ़ाने वाले हैं।

४१ कुलीन-पुरुष

१. छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं,
बद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ।
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः,
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान् कुलीनः ॥

—**चाणक्यनीति १५।१८**

चन्दन का वृक्ष छेदा जाने पर भी अपनी सुगन्धि नहीं छोड़ता, बाँधा जाने पर भी हाथी अपनी मस्ती नहीं छोड़ता, कोल्हू में पीले जाने पर भी ईख अपनी मधुरता नहीं छोड़ती। ऐसे ही कुलीन व्यक्ति क्षीण होने पर भी अपने शीलादि-गुणों को नहीं छोड़ते।

२. वनेऽपि सिंहा गजमांसभक्षिणो, बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति ।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता, न नीचकर्माणि समाश्रयन्ति ॥

—**सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ५१**

हाथी का माँस खानेवाले सिंह वन में भूखे रह जाते हैं, किन्तु तृण नहीं खाते। ऐसे ही कुलीन-मनुष्य दुःख से पराभूत होने पर भी नीच काम नहीं करते।

३. असली री औलाद, खून पड्यां न करे खता।
वाहै बद-बद लात, रोड़ दुलत्ता राजिया !

—**सोरठा-संग्रह**

४. सच्चे कुलीन में चार गुण होते हैं—

(१) हंसमुख चेहरा,
(२) उदार हाथ,
(३) मृदुभाषण,
(४) निरभिमानता ।

—तिरुवल्लुवर

५. अकुलीनेषु नास्त्यपवादाद् भयम् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।१५

अकुलीनों को अपवाद का भय नहीं होता ।

दूसरा कोष्ठक

१ गुण

१. व्यसनों के प्रति विरोध का ही नाम 'सद्गुण' नहीं है, अपितु व्यसनों की ओर प्रवृत्ति का न जाना सद्गुण है।

—बर्नार्डशा

२. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा, न वस्तुषु।

गुण प्रेम में रहते हैं. वस्तुओं में नहीं रहते।

३. यदि सन्ति गुणाः पुंसां, विकसन्त्येव ते स्वयम्।
नहि कस्तूरिकामोदः, शपथेन विभाव्यते॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८५

मनुष्यों में यदि गुण हों तो वे अपने-आप प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि कस्तूरी की सुगन्धि को शपथ से सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती।

4. Cream will rise to the top.
क्रीम विल राइज टू दी टोप।

—अंग्रेजी कहावत

दूध का मक्खन स्वयं ऊपर आ जायेगा।

५. एकस्मिन् दुर्लभो गुणविभवः।

एक व्यक्ति में अनेक गुणों का होना कठिन है।

६. कस्यापि कोप्यतिशयोस्ति स तेन लोके,
ख्यातिं प्रयाति नहि सर्वविदस्तु सर्वे।

किं केतकी फलति किं पनसः सुपुष्पः,
किं नागवल्ल्यपि सुपुष्प-फलैरुपेता ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ १८३

किसी में कोई एक विशेषता होती है, उसी से वह जगत में प्रसिद्ध हो जाता है। सर्वज्ञ तथा सर्वगुणसम्पन्न कोई नहीं हुआ करता। क्या केवड़े पर फल, पनस (कटहल) पर फूल एवं नागवल्ली-पान की बेल पर फल--फूल आते हैं? नहीं आते। फिर भी ये एक-एक विशेषगुण से प्रसिद्धि पा रहे हैं।

७. गुणाः सर्वत्र पूज्यते, पितृवंशो निरर्थकः।
वसुदेवं परित्यज्य, वासुदेवं नमेज्जनः॥

—प्रसंगरत्नावली

सब जगह गुणों की पूजा होती है, पिता के वंश की नहीं। देखो लोग वसुदेव को छोड़कर वासुदेव को नमस्कार करते हैं।

८. धन से सद्‌गुण नहीं मिलते, अपितु सद्‌गुणों से ही धन व अन्यान्य वस्तुएँ मिलती हैं। —कन्फ्यूसियस

९. हमारे सद्‌गुण प्रायः वेष बदले हुए दुर्व्यसन होते हैं।

—लार्ड रोशफूको

१०. बहुत से व्यक्ति सद्‌गुणों की प्रशंसा करते हैं, किन्तु पालन नहीं करते। —मिल्टन

११. सम्मान ही सद्‌गुण का पुरस्कार है। —सिसरो

१२. आकृतिर्गुणान् कथयति।
मनुष्य की आकृति गुणों को प्रकट कर देती है।

१३. जे नर रूपे रूवड़ा, तें नर निगुण न होय।
कनक तणो कर पींजरो, काग न घत्तहिं कोय॥

—राजस्थानी-दोहा

२ गुणों का महत्त्व

१. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ।

—रघुवंश ३।६२

गुण सर्वत्र अपना प्रभाव जमा लेते हैं ।

२. गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ।

—किरातार्जुनीय

गुणों से आकृष्ट संपदायें, गुणी के पास अपने-आप आ जाती हैं ।

३. गुणः खल्वनुरागस्य कारणं, न बलात्कारः ।

—मृच्छकटिक

अनुराग का कारण गुण ही होता है, बलात्कार नहीं होता ।

४. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः ।

—किरातार्जुनीय

गुण ही मनुष्य को गुरुता देते हैं, समूह नहीं ।

५. गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं, दूरेऽपि वसतां सताम् ।
केतकी गन्धमाघ्राय, स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः ॥

प्रसंगरत्नावली

सज्जनों के दूर बसने पर भी उनके गुण जीवननिर्माण में दूत का काम करते हैं । केतकी की सुगन्धि पाकर भ्रमर उसके पास स्वयं चले जाते हैं ।

६. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

—कुमारसंभव ५।५४

रत्न किसी की तलाश नहीं किया करता, उसी की तलाश की जाती है।

७. गुणो भूषयते रूपम् ।

—चाणक्यनीति ५।१५

गुण से ही रूप शोभा पाता है।

८. गुणेन ज्ञायते त्वार्यः ।

—चाणक्यनीति ५।८

गुण से आर्य जाना जाता है।

९. एको गुणः खलुः निहन्ति समस्तदोषम् ।
एक ही गुण सब दोषों को नाश कर देता है।

१०. छोटा-सा अंकुश हाथी पर नियन्त्रण कर लेता है, छोटा-सा दीपक अन्धकार को दूर कर देता है, छोटा-सा वज्र पर्वत को चूर-चूर कर डालता हैं। छोटा-सा रत्न लाखोंपति बना देता है। छोटा-सा मन्त्र देवता को खींच लाता है। छोटा-सा यन्त्र (घड़ी) समय बतला देता है, छोटी-सी सुई दो को एक बना देती है, छोटी-सी अमृत की बूँद बेहोशी दूर कर देती है, छोटी-सी कविता सभा में रंग ला देती है, इसी प्रकार छोटा-सा एक सद्गुण बेड़ापार कर देता है।

—संकलित

११. सद्गुण स्वास्थ्य है और दुर्व्यसन रोग।

—पेट्रार्च

१२. सद्गुण चिथड़ों में भी उतना ही चमकता है, जितना भव्य-वेशभूषा में।

—डिकेन्स

३ विभिन्न प्रकार के गुण

१. आठ प्रकार के गुण—

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च,
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

—विदुरनीति १।१०४

(१) बुद्धि, (२) कुलीनता, (३) इन्द्रियसंयम, (४) ज्ञान, (५) शूरता, (६) मितभाषण, (७) यथाशक्ति दान (८) कृतज्ञता—ये आठ गुण मनुष्य की शोभा को बढ़ानेवाले हैं।

२. चार सहजगुण—

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं, धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते, चत्वारः सहजा गुणाः ॥

—चाणक्यनीति ११।१

उदारता, मिष्टवादिता, धीरता और उचित की जानकारी—ये चार गुण स्वभाविक होते हैं, किन्तु अभ्यास से नहीं मिल सकते।

३. तेरह मानसिकगुण—

१. **उदारता**—इस गुण से मनुष्य दूसरे मनुष्य की भूल होने पर सहनशील बना रहता है।

२. **अनुकरणप्रियता**—इससे मनुष्य महापुरुषों के सद्गुणों को ग्रहण कर सकता है।

३. **प्रसादगुण**—इससे मनुष्य दूसरे को सुगमता से सुधार सकता है।

४. **आकृतिज्ञान**—इससे मनुष्य चाहे जिसको पहचान सकता है।

५. **व्यवस्थाज्ञान**—इससे मनुष्य अपनी या दूसरों की सुव्यवस्था कर सकता है।

६. **अवलोकनगुण**—इससे मनुष्य नई-नई चीजों का ज्ञान प्राप्त करता है।

७. **गणितज्ञान**—इससे एकाग्रता बढ़ती है।

८. **इतिहासज्ञान**—इससे प्राचीन वस्तुएँ ध्यान में रहती हैं।

९. **समयज्ञान**—इससे समय का उपयोग कैसे करना, यह जाना जाता है।

१०. **वक्तृत्वज्ञान**—इससे आकर्षणशक्ति मिलती है।

११. **स्वरज्ञान**—इससे निकट-भविष्य की बहुत-कुछ बातें जानी जा सकती हैं।

१२. **तुलनाशक्ति**—इससे विवेचना, वर्गीकरण एवं समालोचना करने की योग्यता प्राप्त की जा सकती है।

१३. **सौजन्यगुण**—इससे विनय, विवेक, सभ्यता एवं समझाने की योग्यता मिलती है।

४. कन्फ्यूशियस के कहे हुए पांच सद्गुण—

(१) जेन, (२) चुन जू, (३) ली, (४) ते, (५) बेन।

(१) **जेन**—सदाचारी होना।

(२) **चुन जू**—अच्छा व्यवहार, दिल में दया, करुणा एवं प्रेम होना।

(३) **ली**—सद्ज्ञान और विवेक होना, आत्मविश्वास से जो ठीक जचे वह कार्य करना।

(४) **ते**—नैतिक साहस–ईमानदारी, सच्चाई एवं उदारता होना।

(५) **बेन**—गुणों पर डटे रहना।

५. तीन गुण एवं उसके कार्य आदि—

(क) सत्त्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो ! देहे देहिनमव्ययम् ॥

—गीता १४।५

हे अर्जुन ! प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण अविनाशी-आत्मा को देह में बाँध लेते हैं।

(ख) सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं, राग-द्वेषो रजःस्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां, सर्वभूताश्रितं वपुः ॥

—मनुस्मृति १२।२६

यथार्थज्ञान होना सत्त्वगुण का लक्षण है, ज्ञान का न होना तमोगुण का लक्षण है और राग-द्वेष का होना रजोगुण का लक्षण है। सबके शरीरों में इन सब गुणों का स्वरूप व्याप्त रहता है।

(ग) सत्त्वं सुखे संजयति, रजः कर्मणि भारत !
ज्ञानमावृत्य तु तमः, प्रमादे संजयत्युत ॥

—गीता १४।६

अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख में एवं रजोगुण कर्म में लगाता है, किन्तु तमोगुण ज्ञान को ढँक कर प्रमाद में लगाता है।

(घ) देवत्वं सात्त्विका यान्ति, मानुषत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्य-मित्येषां त्रिविधा गतिः ॥

—मनुस्मृति १२।४०

सात्त्विक-वृत्तिवाले देवयोनी में, रजोगुणी मनुष्यगति में और तमोगुणी तिर्यञ्चगति में जाते हैं।

(ङ) गुणानेतानतीत्य त्रीन्, देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखै - विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥

—गीता १४।२०

शरीर के कारणभूत इन तीनों गुणों को लांघकर (निर्गुण होकर) आत्मा जन्म-जरा-मृत्यु के दुःखों से छूट जाता है एवं अमृतपद-मुक्ति को प्राप्त होता है।

(च) त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन !
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योग-क्षेम आत्मवान् ॥

—गीता २।४५

हे अर्जुन ! सब वेद तीनों गुणों के कार्यरूप संसार को विषय करनेवाले हैं। इसलिए तू असंसारी अर्थात् निष्कामी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से रहित, नित्यवस्तु में स्थित तथा योग-क्षेम को न चाहनेवाला और आत्मपरायण बन।

६. **गुणातीत—**

समदुःखसुखः स्वस्थः, समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीर-स्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्य-स्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः स उच्यते ॥

—गीता १४।२४-२५

जो दुःख-सुख में समान है, आत्मभाव में स्थित है, जिसकी मिट्टी, पत्थर और सोने में समान बुद्धि है, जो प्रिय-अप्रिय को तुल्य समझता है, धैर्यवान है, निन्दा-स्तुति में समान भाववाला है। मान-अपमान में तुल्य है, मित्र-शत्रु में समान पक्षवाला है और सब प्रकार के आरम्भ का परित्याग करनेवाला है, वह पुरुष गुणातीत कहलाता है।

४ गुणों का नाश एवं प्रकाश

१. चउहिं ठाणेहिं संते गुणे नासेज्जा, तं जहा—कोहेणं, पडिनिवेसेणं, अकयन्नुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेणं।

—स्थानांग ४।४।२८४

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों का नाश कर देता है (१) क्रोध से, (२) गुण सहन न होने से, (३) अकृतज्ञता से, (४) मिथ्याधारणा के कारण।

२. चउहिं ठाणेहिं संते गुणे दीवेज्जा तं जहा—अब्भासवत्तियं, परछंदाणुवत्तियं, कज्जहेउं, कयपडिकइएइ वा।

—स्थानांग ४।४।२८४

चार कारणों से जीव विद्यमान गुणों को प्रकाशित करता है—
(१) विद्याभ्यास के लिए, (२) दूसरे को अनुकूल बनाने के लिए, (३) अपना काम सिद्ध करने के लिए, (४) कृतज्ञता प्रकट करने के लिए।

३. इक्षु दण्डास्तिलाः शूराः, कान्ता हेमं च मेदिनी,
चन्दनं दधि-ताम्बूले, मर्दनं गुणवर्धनम्।

—चाणक्यनीति ६।१३

इक्षुदण्ड, तिल, शूर, स्त्री, हेम, पृथ्वी, चन्दन, दही और तांबूल, मर्दन होने से, इन ६ चीजों के गुणों में वृद्धि होती है।

५ गुणज्ञ

१. विरला जानन्ति गुणान्।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १७७

गुणों को जाननेवाले विरले हैं।

२. गुणी सैकड़ों में कहीं, मिल जाते दो एक।
लाखों में मिलना कठिन, गुणद्रष्टा सुविवेक।

—तात्त्विकत्रिशती १९५

३. गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः।
गुण को गुणी ही जानता है।

४. गुणिनि गुणज्ञो रमते, नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः।
अलिरेति वनात् पद्मं, न दर्दुरस्त्वेकवासोऽपि।

—शाकुंतल

गुणज्ञ ही गुणीजनों से प्रेम करता है। गुणहीन गुणियों में सन्तुष्ट नहीं होता। भौंरा वन से चलकर कमल के पास जाता है, किन्तु मेढ़क पानी में रहता हुआ भी कमल के निकट नहीं जाता।

५. जितनी चेष्टा दूसरों के दोषों को जानने की करते हो, उससे आधी भी यदि उनके गुणों को जानने की करो तो तुम अजातशत्रु बन सकते हो।

६. न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं, स तं सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भलब्धां,मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम्॥

—चाणक्यनीति ११।८

जो व्यक्ति जिसके गुणों को नहीं जानता, वह सदा ही उसकी निन्दा किया करता है। जैसे—भीलनी हाथी के मस्तक से प्राप्त मोती को छोड़कर गुञ्जा को ही पहनती है।

गुणी

१. गुणी च गुणरागी च, विरलः सरलोजनः।
गुणी एवं गुण के प्रेमी विरले ही सरलपुरुष हैं।

२. गुणवन्तः क्लिश्यन्ते, प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः सुखिनः।
बन्धनमायान्ति शुका, यथेष्टसंचारिणः काकाः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ८५

गुणीजन प्रायः दुःख पाते हैं और निर्गुण सुखी होते हैं। शुक बन्धन को प्राप्त होते हैं और काक इच्छानुसार घूमते हैं।

३. कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपलादिन्दीवरं गोमयात्,
पङ्कात्तामरसं शशाङ्कमुदधे-र्गोपित्ततो रोचना।
काष्ठादग्नि रहेः फणादपि मणिर्दूर्वापि गोरोमतः,
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनोयास्यन्ति किं जन्मना॥

—पञ्चतन्त्र १।७६

रेशमी वस्त्र कीड़ों से, सोना पत्थर से, नील-कमल गोबर से, कमल कर्दम से, चन्द्रमा समुद्र से, गोरोचन गाय के पित्त से, अग्नि काष्ठ से, मणि साँप के फण से और दोब गाय के रोमों से उत्पन्न होती है। उत्पत्ति स्थान निम्नकोटि के होने पर भी पूर्वोक्त वस्तुएं जगत्प्रसिद्ध हो रही हैं, क्यों न हों! गुणी व्यक्ति अपने गुणों के उदय से ही जगत में प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं, जन्म से नहीं।

४. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।

—उत्तररामचरित ४।११

गुणिजनों का सम्मान गुणों से ही होता है, स्त्री-पुरुष के भेद से या आयु के कारण से नहीं होता।

५. हंसां नैं सरवर घणां, देश-विदेश गयांह।
सुगुणां नैं सज्जन घणां, कुसुम घणा भंवरांह॥

६. गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि, सीदत्येको निराश्रयः।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं, हेमाश्रयमपेक्षते॥

—चाणक्यनीति १६।१०

गुणों से युक्त ईश्वर के समान पुरुष भी निराश्रय एवं अकेला दुःख ही पाता है। जैसे—अनमोल माणिक्य भी सोने में जड़े जाने की अपेक्षा रखता है।

७. गुणिजनसंगति—

(क) जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तम संगमः?

—सिंदूरप्रकरण ६६

गुणिजनों का सम्पर्क क्या इच्छित काम नहीं करता?

(ख) स्तोकोऽपि गुणिसंसर्गः, श्रेयसे भूयसे भवेत्।

—सूक्तरत्नावली

गुणिजनों का थोड़ा-सा संसर्ग भी महान् कल्याणकारी हो जाता है।

७ गुणग्राहक बनो !

१. कंखे गुणे जाव शरीरभेउ ।

—उत्तराध्ययन ४।१३

अन्त समय तक गुणों की आकांक्षा करते रहो ।

२. गुणेषु क्रियतां यत्नः, किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभि - र्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥

—प्रसङ्गरत्नावली

गुणों के लिए प्रयत्न करो। आडम्बर में क्या है ? दूध न देनेवाली गायें केवल घंटियाँ बांधने से नहीं बिका करतीं ।

३. गुणेष्वनादरं भ्रातः, पूर्णश्रीरपि मा कृथाः ।
संपूर्णोऽपि घटः कूपे, गुणच्छेदात् पतत्यधः ॥

अरे भाई ! पूर्ण श्रीमान् होकर भी गुणों का अनादर मत कर। देख ! भरा हुआ घड़ा भी गुण (डोरी) के कट जाने से कुंए में गिर जाता है ।

४. सन्धयेत् सरला सूचि-र्वक्रा छेदाय कर्तरी ।
अतो विमुच्य वक्रत्वं, गुणानेव समाश्रय ॥

सीधी-सरल सूई फटे-टूटे को जोड़ती है और वक्र-कैंची अखण्ड को काटती है। अतः वक्रता को छोड़कर गुणों को धारण कर ! (सूई गुण अर्थात् धागे) को धारण करके ही वस्त्र आदि को सीती है) ।

५. ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम वचन निरदोष ।
तुलसी कबहुं न छाँड़िये, शील सत्य सन्तोष ॥

६. गुण जब मिले, जहां से मिले, जिस कदर मिले, ले लो !

७. अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च, शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः।
सर्वतः सारमादद्यात्, पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥

—भागवत ११।८।१०

जैसे—भौंरा छोटे-बड़े सभी फूलों से रस लेता है, उसी प्रकार कुशल (गुणी) मनुष्य को चाहिए कि वह छोटे-बड़े सभी शास्त्रों से सार ग्रहण करे।

८. अनन्तशास्त्रं बहुला च विद्याः, अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

—चाणक्यनीति १५।१०

शास्त्रों का ज्ञान अनन्त है, विद्यायें अनेक हैं, समय अल्प है एवं विघ्न-बाधायें बहुत हैं। अतः जैसे हंस जलमिश्रित दूध में से दूध-दूध पी लेता है, वैसे ही जो पदार्थ सारभूत लगे, उसे तत्काल ग्रहण करलो !

९. Art is long and time is short.

आर्ट इज लोंग एन्ड टाइम इज शोर्ट।

—अंग्रेजी कहावत

● स्वल्पश्च कालो बहुला च विद्या।

—संस्कृत कहावत

समय थोड़ा है और विद्याएँ बहुत हैं।

१०. दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्, न निर्दोषं न निर्गुणम्।
आवृणुध्वमतो दोषान्, विवृणुध्वं गुणान्बुधाः ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ३९४

इस संसार में ऐसी कोई भी चीज नहीं देखी गयी, जिसमें कोई न कोई दोष अथवा गुण न हो। अतः बुधजनों को चाहिए कि वे दोषों को छोड़ कर गुणों को ले लें।

११. क्षारभावमपहाय वारिधेः, गृह्णन्ते सलिलमेव वारिदाः।

—उपदेशप्रासाद

मेघ समुद्र के खारेपन को छोड़कर केवल जल को ही ग्रहण करते हैं।

१२. म्लेच्छानामापि सुवृत्तं ग्राह्यम्।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

म्लेच्छों के भी सदाचरण ले लेने चाहिए।

१३. शत्रोरपि गुणा ग्राह्या।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

शत्रु से भी गुण ले लेना चाहिए।

१४. विषादप्यमृतं ग्राह्य-ममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमां विद्यां, स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

—चाणक्यनीति १।१६

मिल सकता हो तो विष से अमृत, गन्दगी से सोना, नीच से उत्तम विद्या और दुष्कुल से भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिए।

१५. स्त्रियो रत्नान्यथोविद्या, धर्मः शोचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि, समादेयानि सर्वतः॥

—मनुस्मृति २।२४०

गुणवती स्त्रियाँ, रत्न, विद्या, धर्म, पवित्रता, सुभाषित और नाना प्रकार की कलायें—ये चीजें हर एक से ले लेनी चाहिए।

१६. युक्तियुक्तं उपादेयं, वचनं बालकादपि।
अन्यत् तृणमिव त्याज्य-मप्युक्तं पद्मजन्मना॥

—योगवाशिष्ठ २।१८।३

युक्तियुक्त वचन को बालक से भी ले लेना चाहिए और युक्तिहीन वचन चाहे ब्रह्मा का भी क्यों न हो, वह तृणवत् त्याज्य है।

१७. ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा, गुणगृह्या वचने विपश्चितः।

—किरातार्जुनीय २।५

विद्वान् लोग किसी वचन के विषय में यह नहीं देखते कि उसका कहने-वाला कौन है। वे तो केवल गुण के पक्षपाती होते हैं।

१८. गुणी बन गुण को लेना है, हमें दुर्गुण से क्या मतलब ?[1]
कुएँ से नीर पीना है, हमें कचरे से क्या मतलब ? ॥ध्रुव॥

हम तो ग्राहक हैं चन्दन के, भले ही साँप लिपटे हों !
मुग्ध है पुष्प-सुरभी पर, हमें कांटों से क्या मतलब ? गुणी॥१॥

छाछ खट्टी भले ही हो, हम तो मक्खन के भूखे हैं।
इक्षु-रस के पिपासु हैं, हमें छिलकों से क्या मतलब ? गुणी॥२॥

न खल से काम है बिल्कुल, हमें तो तेल लेना है।
आम खाने के इच्छुक हैं, हमें गुठली से क्या मतलब ? गुणी॥३॥

मणी के हम तो ग्राहक हैं, सांप जहरी भले ही हों।
गोल मोती के गर्जी हैं, सीप बांकी से क्या मतलब ? गुणी॥४॥

रूप कोयल का काला है, तो भी मिठास ले लेंगे।
काम तकिये की रू से है, हमें खोली से क्या मतलब ? गुणी॥५॥

मिले गुण जिस कदर जिससे, हम तो तैयार हैं लेने।
चाहे किसही मजब का हो, हमें मजहब से क्या मतलब ? गुणी॥६॥

ऐब बिन आज दुनियाँ में, नजर कोई नहीं आता।
सभी अन्दर से नंगे हैं, कहे **'धन'** हमको क्या मतलब ?गुणी॥७॥

—उपदेश-सुमनमाला

१९. गुणिगणगणनारम्भे, नापतति कठिनी सुसंभ्रमाद् यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद ! वन्ध्या कीदृशी नाम॥

—हितोपदेश-प्रास्ताविका १६

---

१. **तर्ज-कव्वाली**

गुणीजनों की गणना करते समय जिसकी लेखनी शीघ्रता से नहीं चलती, उस पुत्र से यदि माता पुत्रवती कही जाय तो कहो ! फिर वन्ध्यास्त्री कैसी होगी ?

२०. आरोप्यते शिला शैले, यत्नेन महता यथा ।
निपात्यते क्षणेनाध-स्तथात्मा गुण-दोषयोः ।

—हितोपदेश २।४७

जैसे—किसी ऊँचे स्थान पर शिला बड़े यत्न से चढ़ाई जाती है और नीचे क्षणभर में गिरा दी जाती है, गुण और दोष के विषय में आत्मा की भी ऐसी ही स्थिति है, यानी गुणों का ग्रहण कठिन है एवं दोषों का ग्रहण सरल है ।

८ गुणग्राही के अभाव में

१. गुणिनोऽपि हि सीदन्ति, गुणग्राही न चेदिह ।
सगुणः पूर्णकुम्भोऽपि, कूपएव निमज्जति ॥

—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ ८५

यदि गुणग्राही न हो तो गुणीजन भी खिन्नता को प्राप्त हो जाते हैं । देखो ! भरा घड़ा कुएँ में गिर जाता है, यदि उसकी रस्सी (गुण) को कोई पकड़नेवाला न हो ।

२. जब गुन के गाहक मिलें, तब गुण लाख बिकाय ।
जब गुन का गाहक नहीं, कौड़ी बदले जाय ॥

—कबीर

३. सुयोग्य व्यक्ति के अभाव में योग्यता का मूल्य बहुत कम रह जाता है ।

——नेपोलियन

९ गुणहीन

१. निर्गुणस्य हतं रूपम्।

—चाणक्यनीति ८।१६

गुणहीन के रूप-सौन्दर्य को धिक्कार है।

२. सीरत नहीं जो अच्छी, सूरत फिजूल है।
जिस गुल में बू नहीं, वह कागज का फूल है।।
सीरत के हम गुलाम हैं, सूरत हुई तो क्या?
सुर्खो-सफेद मिट्टी की, मूरत हुई तो क्या?

—उर्दू शेर

३. स्वयमगुणं वस्तु न खलु पक्षपाताद् गुणवद् भवति।
न गोपालस्नेहाद् उक्षा क्षरति क्षीरम्।।

नीतिवाक्यामृत १९।५-६

निर्गुणवस्तु किसी के पक्षपात से गुणयुक्त नहीं होती, ग्वाले के स्नेह से बैल दूध नहीं दे सकता।

४. पुरुषा अपि बाणा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय?

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

गुण से च्युत-पतितपुरुष और बाण किसको भय उत्पन्न नहीं करता? (यहाँ गुण शब्द के दो अर्थ हैं—सद्गुण और धनुष की डोरी)।

५. गुणैर्विहीना बहुजल्पयन्ति।

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

गुणहीन व्यक्ति अधिक बोला करते हैं।

६. नहीं चम्पा नहीं केतकी, भंवर ! देख मत भूल।
रूपरूड़ो गुणबाहिरो, रोहीड़ा रो फूल।

७. डूंगर दूरासूं रलियामणा, दीसै **ईसरदास**।
नेड़ां जाकर देखिए, (तो) पत्थर पाणी घास॥

८. पाषाणैः परिपूरिता वसुमती वज्रो मणिर्दुर्लभः।
पत्थरों से पृथ्वी भरी पड़ी है, किन्तु वज्रमणि मिलना कठिन है। ऐसे ही निर्गुण-व्यक्ति बहुत हैं, किन्तु गुणी दुर्लभ हैं।

९. गुणहीन मृतकतुल्य।
शालिवाहन राजा एवं कालिकाचार्य का संवाद—

राजा—कौन जीवित है ?

आचार्य—जो गुणी एवं चारित्रशील है, वही जीवित है।

राजा—क्यों ?

आचार्य—मैंने एक दिन शिष्यों से कहा—निर्गुण एवं चारित्रहीन पुरुष पशु-मृग आदि के समान है। तब मृग आदि सभी ने इस मंतव्य का विरोध करते हुए इस प्रकार कहा—

मृगादि पशु—हम मरने के बाद भी चर्म आदि के रूप में लोगों के काम आते हैं।

गउएँ—हम घास खाकर दूध देती हैं।

कुत्ते—हम नमकहलाल हैं।

वृक्ष—हम छाया फल-फूल आदि देते हैं।

घास—मैं पशुओं का जीवन टिकाता हूँ।

राख—मैं बर्तन साफ करती हूँ।

राजन् ! उसी दिन से यह निर्णय किया गया कि निर्गुण-चारित्रहीन-व्यक्ति मृतक के तुल्य है।

१० गुणशून्य नाम

१. आख्यां रो आंधो, नाम नैणसुख।
जन्म रो मंगतो, नाम दाताराम।
जन्म रो दुखियारी, नाम सदासुख।
बांधै लंगोटी, नाम पीताम्बरदास।
मांगै भीख, नाम लखपतराय।
कनैं कोड़ी कौनी र नाम किरोड़ीमल।
पढ्यो न लिख्यो नाम विद्याधर।
झाँटमान झूँपड़ी र नाम तारागढ़।

—राजस्थानी कहावतें

२. नाम दियो सूरो रणधीर, भाग्यो जावै दीठां तीर।
नाम दियो छे धर्मोशाह, पाप करण री नहीं परवाह॥
नाम दियो बाई रो लाछ, मांगी न मिले कुल्हड़ी छाछ।
नाम दियो बाई रो चंपकली, गोबर बीणे गली-गली॥

—राजस्थानी-पद्य

३. **हीरालाल** नाम सो तो कंकर को करै कार,
वृद्धिचंद नाम पूंजी गाँठ की गमावे है।
नाम तो संतोषदास पल में झलक उठै,
गंभीरमल नाम सो तो लोकानै लड़ावे हैं॥
शोभाचंद नाम सो तो कुशोभा करत नित,
प्यारचंद नाम खार जग में बसावे है।

कहै कवि **नाथूलाल** नाम के हवाल सुनो,
गुण और नाम साथ विरला ही में पावै है ॥
कस्तूरी है नाम जामें बास नाहीं हींगहूँ की,
रूपीबाई नाम रूप काग से सवायो है ।
नाम है जड़ाव ताके सोनो नहीं तार पास,
राजीबाई नाम राखै थोबड़ो चढ़ायो है ॥
चाँदबाई नाम सो तो काजल सूं काली दीसै,
स्याणीबाई नाम जन्म राड़ में गमायो है ।
कहै कवि **नाथूलाल** गुण बिना नाम सो तो,
श्वान हू के अंग पै सुगन्ध ही लगायो है ॥

४. सेठ के पुत्र का नाम ठंठनपाल था । बहू का आग्रह था कि इस नाम को बदल लें । ठंठन नहीं माना । बहू गुस्से होकर पीहर की तरफ रवाना हुई । रास्ते में एक मुर्दा मिला, जिसका नाम अमरचन्द था । एक भिखमंगा मिला, जिसका नाम धनपाल था । आगे छान चुगती हुई एक बहन मिली, जिसका नाम लक्ष्मी था । इन सब के नामों को सुनकर बहू को ज्ञान हो गया और निम्नलिखित दोहा कहती हुई वह वापिस अपने घर आ गई ।

अमर मरन्तो मैं सुण्यो, भीख माँगे धनपाल ।
लिछमी छाणा बीणती, आछो म्हारो ठनठनपाल ॥

—**कथा का दोहा**

दोष

१. **दुष् वैकृत्ये**, दुष्यन्ति-विकृतिं भजन्ति तेन तस्मिन् वा,
प्राणिन इति दोषः। दूषणं वा दोषः।

—अभिधानराजेन्द्रकोष, भाग ४ पृष्ठ २६३६

दुष् धातु विकार के अर्थ में है। जिससे अथवा जिसमें प्राणी विकृत—दूषित होते हैं, उसको दोष कहते हैं अथवा दूषण का नाम दोष है।

२. बहूनपि गुणानेको दोषो ग्रसति।

—कौटिलीयअर्थशास्त्र

एक ही दोष अनेक गुणों को खा जाता है।

३. लाख गुनों को दोष इक, कर देता बदनाम।
खाने का खोती मजा, कड़ुवी एक बदाम॥

—दोहा-संदोह

४. परस्वानां च हरणं, परदाराभिदर्शनम्।
सुहृदामतिशङ्का च, त्रयो दोषा क्षयावहा॥

—वाल्मीकि रामायण ६।८७।१६

दूसरों के धनों का हरण, दूसरों की स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध और मित्रों के प्रति अतिशङ्का—ये तीन दोष मनुष्य का नाश करने वाले हैं।

५. उस्सूरसेया परदारसेवा,
वेरप्पसवो च अनत्थता च।
पापा च मित्ता सुकदरियता च,
एते छ ठाना पुरिसं धंसयन्ति॥

—दीर्घनिकाय ३।८।२

अति निद्रा, परस्त्रीगमन, लड़ना-झगड़ना, अनर्थ करना, बुरे लोगों की मित्रता और अतिकृपणता—ये छः दोष मनुष्य को बर्बाद करनेवाले हैं।

६. दो बड़े दोष हैं :—

(१) धन के साथ घमण्ड, (२) सत्ता के साथ जुल्म।

७. षड् दोषाः पुरुषेणेह, हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध, आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

—विदुरनीति १।८३

जो अपना कल्याण चाहता है, उसे (१) निद्रा, (२) तन्द्रा (नींद की पूर्व अवस्था), (३) भय, (४) क्रोध, (५) आलस्य, (६) देर से काम करने का स्वभाव—ये छः दुर्गुण छोड़ देने चाहिएँ।

८. दोष को छोटा मत समझो !

छोटा-सा कांटा पैर को नहीं टिकने देता, छोटा-सा रजकण आंख को नहीं खुलने देता, छोटी-सी फुन्सी व भाले की अणी चैन नहीं पड़ने देती, छोटी-सी आग की चिनगारी लाखों मन घास को जला डालती है, छोटी-सी कांजी की बूंद मनों बन्ध दूध को फाड़ डालती है, छोटा-सा छिद्र जहाज को डुबो देता है, छोटी-सी मर्म की बात भीषण कलह जगा देती है, छोटा सा मच्छर नींद उड़ा देता है तथा छोटी-सी दरार बड़े-बड़े बाँधों एवं भवनों को नष्ट कर देती हैं, ऐसे ही छोटा-सा दोष बड़ा-भारी नुकसान कर देता है।

● रिपु रुज पावक पाप अहि, इनहिं न गनिए छोट करि।

—रामचरितमानस अरण्यकाण्ड २१

९. **दोष आते ही गुणों का पलायन**—मनुष्य जंगल में जा रहा था, चार स्त्रियां मिलीं। उनके नाम थे—बुद्धि, लज्जा, हिम्मत और तन्दुरुस्ती। मनुष्य ने उनके निवासस्थान पूछे, तब उन्होंने क्रमशः दिमाग, आँख, हृदय और पेट बतलाए। आगे चार पुरुष मिले, उनके नाम थे—क्रोध,

लोभ, भय एवं रोग। पूछने पर उन्होंने भी अपने निवासस्थान क्रमशः दिमाग, आंख, हृदय और पेट बतलाए। मनुष्य ने विस्मित होकर कहा--वहां तो बुद्धि आदि रहती हैं? तब क्रोध आदि बोले--हमारे आने पर वे (क्रोध से बुद्धि, लोभ से लज्जा, भय से हिम्मत और रोग से तंदुरुस्ती) घर छोड़ कर भाग जाती हैं।

१० पित्तेन दूनरसने, सितापि तिक्तायते।

--नैषधीय-चरित्र ३।९४

पित्त के कारण जिह्वा के दूषित हो जाने पर मिश्री भी कड़वी लगती है। (आंखों में पीलिया हो जाने पर श्वेतवस्तु भी पीली दीखने लगती है।) इसी प्रकार दोषों के प्रविष्ट होने पर गुण भी दूषित हो जाते हैं।

१२ स्वदोष

१. सब देखे पर आपनो, दोष न देखे कोय।
करे उजेरो दीप पे, तले अंधेरो होय॥

—वृन्दकवि

२. आप अपनी ऐब से, वाकिफ नहीं होता कोई।
जैसे बू अपने दहन (मुंह) की, आती है कम नाक में॥
उतनी ही दुश्वार अपने, ऐब की पहचान है।
जिस तरह करनी मलामत, और की आसान है॥

—उर्दू शेर

३. जब कभी मुझे दोष देखने की इच्छा होती है, मैं स्वयं से प्रारम्भ करता हूं और उससे आगे नहीं बढ़ पाता।

—डेविस ग्रेसन

४. अपना दोष ढूँढ़ निकालना, ज्ञानी वीरों का काम है।

—विवेकानन्द

५. वंशी छिद्र न ढांकती, पाती चुंबन प्यार।
छिद्र छिपाता ढोल निज, इससे खाता मार॥

६. बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन खोजूं आपना, मुझसा बुरा न कोय॥

—कबीर

७. झूठ, कंजूसी, उज्जडपन, जिद्दीपन, लूटपाट और अच्छाई का विरोध —इन दुर्गुणों से अपने को कड़ाई से बचाओ!

—पहेलवी टेक्स्ट्स

८. जैसे—बाप के खाता-बही संभालनेवाले को लेना-देना दोनों स्वीकार करना पड़ता है, उसी प्रकार यदि तू अपने गुणों को शास्त्रों से मिलाता है तो अपने दोषों को भी उनसे मिलाकर देख !

९. धंसेइ जो अभूएणं, अकम्मं अत्त-कम्मुणा ।
अदुवा तुमं कासित्ति, महामोहं पकुव्वइ ॥

—दशाश्रुतस्कंध ९।८

जो अपने किए हुए दुष्कर्म को दूसरे निर्दोष व्यक्ति पर डालकर उसे लांछित करता है कि यह **पाप तूने किया है**, वह महामोहकर्म का बंध करता है ।

१३ पर-दोष

१. यः संसदि परदोषं शंसति, स स्वदोष-बहुत्वं प्रख्यापयति ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

जो सभा में दूसरों का दोष कहता है, वह अपने दोषों की बहुलता प्रकट करता है ।

२. दूषणं मतिरुपैति नोत्तमी, माध्यमी स्पृशति भाषते न च ।
वीक्ष्य पार्श्वमथ भाषतेऽधमो, रारटीति सहसा धमाधमः ॥

उत्तमबुद्धि परदोष का स्पर्श ही नहीं करती, मध्यमबुद्धि स्पर्श तो कर लेती है, लेकिन कहती नहीं, अधमबुद्धिवाला कह देता है, किन्तु अधमाधम तो हल्ला ही मचाने लगता है ।

३. आँख की कीकी काली है अतः काली चीज (दोष) जल्दी देखती है ।

४. यदा पश्यामि स्वदोषान्, दृष्टिः संकुचिता भवेत् ।
विशाला जायते सैव, परेषां दोषदर्शने ॥

जब अपने दोषों को देखता हूं तब दृष्टि छोटी हो जाती है और दूसरों के दोष देखते समय वही बड़ी हो जाती है ।

५. तवो हांडी नै काली बतावै ।

● छाज न बोलै, छाबड़ी न बोलै, तूं क्या बोलै चालनी, थारै अठोत्तर सौ बेभ ।

—राजस्थानी कहावतें

६. छज्ज तां बोले छालनी की बोले।

—**पंजाबी कहावत**

७. चित्रकार ने घर की दीवार पर एक चित्र रखा एवं उसमें गलती बताने की लोगों से प्रार्थना की। लोग आते गये और चित्र को काला करते गये। दूसरे दिन एक चित्र रखकर उसे सुधारने की प्रार्थना की; लेकिन किसी ने भी सुधारने का सुझाव न दिया।

८. न सिया तोत्तगवेसए।

—**उत्तराध्ययन १।४०**

दूसरों के छलछिद्र नहीं देखना चाहिए।

१४ गुणों में दोष

१. गुण पूरी रूरी सुरभि, कस्तूरी कमनीय।
एकहि अवगुण मलिनता, हरै जनक को जीय ॥

२. फूल हुवै जठै कांटा भी हुवै।

- गाम हुवै जठै (ढेढ़वाड़ो) अकूरड़ी भी हुवै।
- हवेली हुवै जठै तारतखानो भी हुवै।
- लंका में दलदरी भी हुवै।

—राजस्थानी कहावतें

३. No garden without weeds.
नो गार्डन विदाउट वीड्स।

—अंग्रेजी कहावत

कोई उद्यान ऐसा नहीं है, जिसमें घास-फूस बिल्कुल न हो।

१५ दृष्टिदोष एवं उसके आश्चर्य

१. किसी वस्तु को देखकर सहर्ष आश्चर्य प्रकट करने से जो विकार होता है, उसे **दृष्टिदोष** या **नजर** कहते हैं। थुथकारा डालने से इसका विकार शान्त हो जाता है। ऐसी भी दन्तकथा है कि जिसकी अनामिका और कनिष्ठा—ये दो उंगलियाँ सहजरूप में मिलती हों, उसका थुथकारा पलता है।

२. ग्वाले की माता खीर बनाकर पानी भरने गयी। पीछे से मासोपवासी मुनि पधारे। ग्वालबाल ने सारी खीर बहरा दी। मुनि चले गये, बालक थाली चाट रहा था। माता पानी भरके आयी और देखकर मन में कहने लगी—अहो! पुत्र सारी खीर खा गया। बस, नजर लगी एवं बालक बीमार होकर थोड़ी ही देर में मर गया। भावना पवित्र थी अतः वह मरकर सेठ शालिभद्र बना। (अचानक मरना नजर के दोष से माना जाता है।)

३. वि० सं० १९८४ छापर में मुनि जशकरणजी आदि की दीक्षा हुई। सेठ गोविन्दरामजी नाहटा नवदीक्षितमुनि का सुन्दर चेहरा और गौरवर्ण देखकर मन में कहने लगे—**साधु तो बहुत फूटरो बण्यो है।** बस, कहने की ही देरी थी। दीक्षा लेकर स्थान पर आते ही मुनिजी के भयंकर उदरपीड़ा होने लगी। दिनभर अनेक उपचार किये पर कोई लाभ नहीं हुआ। रात पड़ गयी, क्रमशः जीने की आशा कम होने लगी। सेठजी को पता लगा, दौड़कर आये एवं थुथकारा डाला। थुथकारा क्या डाला, बुझते दीपक में तेल ही डाल दिया। नवदीक्षितमुनि तत्काल स्वस्थ हो गये। देखनेवाले सभी आश्चर्यमुग्ध थे।

सुना जाता है कि एक बार उन्हें किसी ने नई हवेली देखने को बुलाया। देखकर उन्होंने कहा—हवेली तो चोखी बणी हैं। बस, रात-रात में सारी हवेली फट गयी।

४. मोमासर में एक बार छापर की बरात आयी। बरातियों में छापर के नाहटा सरदार भी काफी थे। एक चूना पीसने का घरहट पड़ा था। बरातियों ने कहा—अहा! कितना गोल है। कहते हैं कि कुछ ही क्षणों के बाद उसके दो टुकड़े हो गये।

५. वि० सं० २००४ की बात है—आचार्य श्रीतुलसी लोच करवाकर व्याख्यान में पधारे। मुखमुद्रा से प्रभावित होकर मोतीलाल नाहटा ने कुछ विशेष गुणग्राम किये। आचार्यश्री को नजर लगी और १०४ डिग्री बुखार हो गया। पता लगते ही मोतीलालजी ने आकर थुथकारा डाला, आचार्य श्री ठीक हो गये।

इनके कथनानुसार इनकी नजर इतनी लगती है कि यदि ये टोकरी में से एक आम खाकर प्रशंसा कर देते हैं तो शेष आम फौरन बिगड़ जाते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्य यह है कि ये टेलीफोन पर भी थुथकारा डालकर दृष्टि-दोष का इलाज किया करते हैं।

६. अपनी नजर अपने-आप को भी लग जाती है। जैसे—मेरा शरीर अब बिल्कुल ठीक है, ऐसे सोचते ही कोई न कोई बीमारी आ जाती है। इस साल हमारी खेती बहुत बढ़िया है, ऐसा विचार करने से टीड़ी, सर्दी-आँधी-तूफान आदि के उपद्रव होकर नुकसान हो जाता है। मोटर कितनी तेज चल रही है, ऐसा कहते ही उसमें खराबी हो जाती है। मेरी यात्रा कितने अच्छे ढंग से सम्पन्न हो गयी, ऐसा चिन्तन करते ही यात्रा में कुछ न कुछ विघ्न आ जाता है। लिखना कितना अच्छा हो रहा है—ऐसा दिल में आते ही स्याही ढुलकर या कलम टूट कर उसमें बाधा आ जाती है। वास्तव में नजर लगाने से नहीं लगती। मन में खुश होकर आश्चर्य प्रकट करने से लगती है।

१६ उपकार (अहसान)

१. सहयोगदानमुपकारः, लौकिको लोकोत्तरश्च ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१६-२०

किसी को सहयोग देने का नाम उपकार है, वह दो प्रकार का है—लौकिक और लोकोत्तर। भौतिकसहायता देना लौकिकउपकार है और आत्मिकसहायता अर्थात् धर्मोपदेश एवं निर्वद्यदानादि द्वारा सहायता देना लोकोत्तरउपकार है।

२. नीचेषूपकृतं उदके विशीर्णं लवणमिव ।

—नीतिवाक्यामृत ११।४३

नीचों का उपकार करना जल में लवण डालने के तुल्य है।

३. उपकृत्योद्घाटनं वैरकरणमिव ।

—नीतिवाक्यामृत ११।४७

उपकार करके कहना, वैर करने के बराबर है।

४. जिसने कुछ अहसां किया, एक बोझ हम पर रख दिया।
सिर से तिनका क्या उतारा, सर पे छप्पर रख दिया ॥

—चकबस्त

५. तलवार मारे एक बार, अहसान मारे बार-बार।

—हिन्दी कहावत

६. अगर किसी को मारना, अहसान करके छोड़ दो।
खुद-बखुद मर जाएगा, वह अगर्चे इन्सान है ॥

—उर्दू शेर

७. दल्यानुं दलामण आपे तेमां पाड़ शानो! माग्युं आपे तेमां शानो पाड़। नातनूं नोतरुं ने परवनुं पाणी तेमां पाड़शण शुं!

—गुजराती कहावत

परोपकार

१. अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥

अठारहपुराणों में व्यासजी के दो ही वचन मुख्य हैं—दूसरों का उपकार करना पुण्य है और दूसरों को दुःख देना पाप है ।

२. परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई ।
—रामचरितमानस

३. संसारे न परोपकार सदृशं, पश्यामि पुण्यं सताम् ।
—क्षेमेन्द्रकवि

मेरी दृष्टि में सत्पुरुषों के लिए परोपकार जैसा पुण्य संसार में दूसरा कोई नहीं है ।

४. परोपकृति-कैवल्ये, तोलयित्वा जनार्दनः ।
गुर्वीमुपकृतिं मत्वा, ह्यवतारान् दशाऽग्रहीत् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७८

परोपकार और मोक्ष—इन दोनों को तोलने पर उपकार भारी निकला, अतएव विष्णु भगवान ने परोपकार करने के लिए दस अवतार लिए ।

५. नोपकारं विना प्रीतिः, कथंचित् कस्यचिद् भवेत् ।
उपयाचित-दानेन, यतो देवाः फलप्रदाः ॥
—पंचतंत्र २।५२

उपकार किए बिना किसी को किसी के साथ प्रेम नहीं होता । मनौती करने पर ही देवता मनोरथ पूरा करते हैं ।

६. घड़ी-घड़ी घड़ियाल, प्रकट सद एम पुकारे !
अवर भवे ऊंघतां, जागले मिनख-जमारे !
दुनियां रै सिर दंड, घड़ी-घड़ी आयु घटंतां।
काठ सिरे करवत्त, बार कितियेक कटंतां।
तिण हेत चेत चेतन चतुर ! धर्मसीख दिलमांहि धर !
सहु बात सार संसार में, क्यूंहिक पर-उपकार कर !

—**भाषाश्लोकसागर**

७. **लोकोपकारी जीवन के तीन सूत्र—**
सत्य, संयम और सेवा।

—**विनोबा**

८. परोपकार का अर्थ है—दूसरों का भला चाहना, दूसरों का भला करना और सेवा करना।

—**गांधी**

९. श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां, परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥

—**भर्तृहरिनीतिशतक ७२**

दयालु सत्पुरुषों के कान शास्त्रश्रवण से, हाथ दान से, और शरीर परोपकार से शोभित होते हैं, लेकिन कुण्डल, कङ्कण और चन्दन से नहीं।

१८ प्रत्युपकार [उपकार का बदला]

१. उपकार करना मनुष्यता का उच्चगुण है और उपकार चाहना पामरता है।

२. महान्, मेघराज की तरह उपकार का बदला नहीं चाहते।

—तिरुवल्लुवर

३. ईसा ने दस कोढ़ियों के घाव साफ किए। एक ने आभार प्रकट किया, शेष यों ही गए।

४. मय्येव जीर्णतां यातु, यत् त्वयोपकृतं हरे !
जनः प्रत्युपकारार्थी, विपदामभिकाङ्क्षते।

—वाल्मीकि रामायण

लंकाविजय के बाद हनूमान विदा होने लगे, तब राम ने कहा—हनूमान ! तुमने जो हमारा उपकार किया है, उसे हम हजम करना चाहते हैं अर्थात् उसका बदला देना नहीं चाहते, क्योंकि प्रत्युपकार करने का इच्छुक व्यक्ति उपकारी के लिए वास्तव में विपत्ति की इच्छा करनेवाला होता है।

५. प्रत्युपकुरुते बह्वपि, न भवति पूर्वोपकारिणस्तुल्यः।

—श्राद्धविधि

प्रत्युपकारी—उपकार का बदला चुकानेवाला पूर्वोपकारी के बराबर कभी नहीं होता।

६. तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो ! तं जहा—
अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स ।

—स्थानांग ३।१।१३५

हे आयुष्मन् श्रमण ! तीनों के उपकार का बदला चुकाना कठिन है—माता-पिता का, स्वामी का और धर्माचार्य का ।

७. स पुमान् वन्द्यचरितो यः प्रत्युपकारमनपेक्ष्य परोपकारं करोति।

—नीतिवाक्यामृत २७।३१

प्रत्युपकार की आशा न करके दूसरों का उपकार करनेवाले का चरित्र स्तुति करने योग्य है ।

१९ कृतज्ञता और कृतघ्न

१. उपकारी का अपराध हो जाने पर उसे क्षमा कर देना कृतज्ञता है।

२. कृतज्ञता शाब्दिक धन्यवाद से कहीं बढ़कर है और कार्य, शब्दों से अधिक प्रकट करता है।

—लाबेल

३. कृतघ्नता के बाद सहने में सबसे ज्यादा कष्टप्रद कृतज्ञता है।

—एच. डब्ल्यू. बीचर

४. किसी दार्शनिक को शब्दों की इतनी कमी महसूस नहीं हुई, जितनी कृतज्ञ को।

—कोल्टन

५. प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः,
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।
उदकममृततुल्यं दद्यु - राजीवनान्तं,
नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥

—शाकुन्तल

बचपन में पिये हुए थोड़े-से पानी का स्मरण करते हुए नारियल के वृक्ष जीवनभर अपने सिर पर फलों का बोझा धारण करते हैं एवं मनुष्यों को अमृततुल्य जल देते रहते हैं, क्योंकि सत्पुरुष किए हुए उपकार को कभी नहीं भूला करते।

६. **कृतज्ञ शेर**—अपराधी गुलाम निकल भागा। उसने गुफा में कराहते हुए शेर का काँटा निकाला। सिपाहियों ने गुलाम और शेर दोनों को पकड़कर हाजिर किया। बादशाह ने गुलाम को मारने के लिए शेर के पिंजरे में डाला। कृतज्ञ शेर ने अपने उपकारी को नहीं मारा।

२० परोपकारी

१. परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये।

—सुभाषितरत्न-खण्डमञ्जूषा

परोपकार में लगे हुए पुरुषों को अपने काम का ध्यान नहीं रहता।

२. पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥
रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नै-र्विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्डखण्डैर्मलयाचलः किं, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

—उद्भटसागर

नदियाँ स्वयं पानी नहीं पीतीं, वृक्ष फल नहीं खाते और मेघ धान्य का भक्षण नहीं करते, क्योंकि सत्पुरुषों की विभूतियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं।

रत्नाकर (समुद्र) को रत्नों से क्या लाभ ? विन्ध्याचल को हाथियों से क्या लाभ ? और मलयाचल को चन्दन के खण्डों से क्या लाभ ? लाभ कुछ भी नहीं है, केवल परोपकार के लिए ही ये सब रत्नादि द्रव्यों को धारण करते हैं।

३. यद्यपि चन्दनविटपी, फल-पुष्पविवर्जितः कृतो विधिना।
निजवपुषैव तथापि हि, संहरति संतापमपरेषाम्॥

—गोवर्धनाचार्य

विधाता ने चन्दन के वृक्ष को फल-फूल से हीन बना दिया, तो

तो क्या हुआ ? वह अपने शरीर से भी दुनियाँ के संताप का नाश कर रहा है।

४. पत्र-पुष्प-फल-च्छाया, मूल-वल्कल-दारुभिः।
गन्ध-निर्यास-भस्मास्थि-तोक्मैः कामान् वितन्वते ॥
—सुभाषितरत्न-भाण्डागार, पृष्ठ २४७

वृक्ष अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, मूल, वल्कल, काष्ठ, गन्ध, दूध, रस, भस्म, गुठली और कोमलअंकुर से प्राणियों को सुख पहुंचाते हैं।
[हरा-भरा वृक्ष फल, फूल एवं छाया देता है, सूखने पर टेबल-कुर्सी, पट्टे, किवाड़ आदि बनकर जगत की सेवा करता है, ईंधन बनकर रसोई आदि बनाता है तथा मनुष्यों के मुर्दे को जलाता है। आखिर राख बनकर भी बर्तन आदि को साफ करता है।]

५. दीपक जलकर भी प्रकाश देता है, पंखा स्वयं घूमकर भी लोगों को हवा देता है तथा केश काले होकर भी मनुष्यों की शोभा बढ़ाते हैं। मनुष्यों ! तुम भी इनसे कुछ सीखो एवं परोपकारी बनो !

२१ निरुपकारी

१. परोपकारशून्यस्य, धिग् मनुष्यस्य जीवितम् ।
धन्यास्ते पशवो येषां, चर्माप्युपकरोति हि ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७८

परोपकारहीन मनुष्य का जीना धिक्कार है। वे पशु धन्य हैं, जिनके चाम भी लोगों का उपकार करते हैं।

२. स लोहकारभस्त्रेव, श्वसन्नपि न जीवति ।

—योगशास्त्र

उपकारहीन व्यक्ति लोहार की धोंकणी की तरह श्वास लेता हुआ भी मुर्दा है।

३. तृणं चाहं वर मन्ये, नरादनुपकारिणः ।
घासो भूत्वा पशून् पाति, भीरुन् पाति रणाङ्गणे ॥

—शाकुन्तल

उपकारहीन व्यक्ति से तो मैं तृण को भी अच्छा मानता हूं, क्योंकि वह घासरूप से पशुओं की रक्षा करता है और संग्राम में कायरपुरुषों की रक्षा करता है।

४. जो नृप से अधिकार ले, करै न परउपकार ।
पुनि ताके अधिकार में, आदि न रहत अकार ॥

५. बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥

—कबीर

२२ कृतघ्न

१. कृतमुपकारं हन्तीति कृतघ्नः ।
किए हुए उपकार की जो घात करता है वह **कृतघ्न** है ।

२. कृतमपि महोपकारं, पयइव पीत्वा निरातङ्कः ।
प्रत्युत हंतुं यतते काकोदरसोदरः खलो जयति ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ५९

दुष्ट कृतघ्न किए हुए महान् उपकार को दूध की तरह पीकर सर्पवत् उल्टा दूध पिलानेवाले को ही काटने की चेष्टा करता है ।

३. खावे जिकी ही थाली में हंगै ।

● खावे जिकी ही थाली नैं फोड़ै ।

● खावै खसम रो र गीत गावै वीरै रा ।

—राजस्थानी कहावतें

४. मेरी बिल्ली और मेरे से ही म्याउँ !

—हिन्दी कहावत

५. कृतघ्ना धनलोभान्धा नोपकारेक्षणक्षमाः ।

—कथासरित्सागर

धन के लोभ में अन्धे कृतघ्न व्यक्ति उपकार की दृष्टि से देखने योग्य नहीं होते ।

६. कृतघ्नानां शिवं कुतः !

कथासरित्सागर

कृतघ्नों का कल्याण कहां !

७. गोघ्ने चैव सुरापे च, चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः, कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥
—वाल्मीकिरामायण ४।३४।१२

गोघाती, शराबी, चोर और व्रतभ्रष्ट—इन सबके लिए तो सत्पुरुषों ने प्रायश्चित्त का विधान किया है, किन्तु कृतघ्न के विषय में कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

८. ऋषि और चाण्डालिनी का संवाद—

ऋषि—

कर खप्पर शिर श्वान है, लोहु जु खरड़े हत्थ।
छटकत मग चंडालिनी, ऋषि पूछत है बत्त?

चाण्डालिनी—

तुम तो ऋषि भोरे भए, नहिं जानत हो भेव।
कृतघ्नी की चरणरज, छटकत हूँ गुरुदेव!

२३ उदार और उदारता

१. अयं निजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

—पञ्चतन्त्र ५।३८

यह अपना है और यह पराया है—ऐसा विचार छोटी समझवाले ही करते हैं, उदारचरितों के लिए तो सारी पृथ्वी ही उनका कुटुम्ब है ।

२. उदारमनवाले विभिन्नधर्मों में अनुदार फर्क देखते हैं ।

—चीनी कहावत

३. उदार आदमी का वैभव गाँव के बीचोंबीच उगे हुए फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है ।

—तिरुवल्लुवर

४. परगृहे सर्वोऽपि विक्रमादित्यायते ।।

—नीतिवाक्यामृत ११।३१

सभी मनुष्य दूसरों के घर में जाकर उसके धनादि को व्यय कराने के लिए राजा विक्रमादित्य की तरह उदार हो जाते हैं ।

५. उदारता अधिक देने में नहीं, किन्तु समझदारी से देने में है ।

—फ्रैंकलिन

६. उदारता के बिना मीठी-वाणी पीतल की झनझनाहट एवं करताल की खनखनाहट है ।

—इसाईसंत पाल

१. पात्र-कुपात्र हर कोई नैं देवे, तिणनैं कहीजे दातार ।

—व्रताव्रत की चौपाई १६।५०

२. याचितारं निराकर्तुं, सतां जिह्वा जड़ायते ।

—सुभाषितसंचय

माँगनेवाले को नहीं कहने के लिए सत्पुरुषों की जीभ जड़वत् हो जाती है ।

३. कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं, जीवं जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि, नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७३

कर्ण ने त्वचा, शिबि ने माँस, मेघ ने जीव (पानी) और दधीचिऋषि ने अपनी हड्डियाँ दान में दीं, क्योंकि महापुरुषों के लिये न देने योग्य कुछ होता ही नहीं ।

४. शतेषु जायते शूरः, सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता दशसहस्रेषु, दाता भवति वा नवा ॥

—व्यासस्मृति ४।५८

शूर-वीर सौ में एक होता है, पण्डित हजार में एक होता है और वक्ता दशहजार में एक होता है, लेकिन दाता तो क्वचित् होता है, क्वचित् नहीं भी होता ।

५. दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा, दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते, दक्षिणावन्त प्रतिरन्त आयुः॥

—ऋग्वेद, १।१२५।६

दानियों के पास अनेक प्रकार का ऐश्वर्य होता है, दानी के लिए ही आकाश में सूर्य प्रकाशमान है। दानी अपने दान से अमृत पाता है, वह अतिदीर्घ आयु प्राप्त करता है।

६. दाता नीचोऽपि सेव्यः स्याद्, निष्फलो न महानपि।
जलार्थी वारिधिं त्यक्त्वा, पश्य कूपं निषेवते॥

—प्रसंगरत्नावली

छोटा होने पर भी दाता की सेवा की जाती है, लेकिन फल न देनेवाले महान व्यक्ति की नहीं की जाती। देखो, जल पीने का इच्छुक समुद्र को छोड़कर इसीलिए कुएँ की सेवा करता है।

७. दाता और याचक का भेद--

एकेन तिष्ठताऽधस्ता-देकेनोपरितिष्ठता।
दातृ-याचकयोर्भेदः, कराभ्यामेव सूचितम्॥

—शाकुन्तल

एक [दाता का] हाथ ऊंचा रहता है और एक [याचक का] हाथ नीचा रहता है। ऊंचा-नीचा रहकर हाथों ने दाता और याचक का भेद दिखला दिया कि दाता ऊंचा और याचक नीचा है।

८. न रणे विजयाच्छूरो-ऽध्ययनान्न च पण्डितः।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन, न दाता चार्थदानतः॥
इन्द्रियाणां जये शूरो, धर्मे चरति पण्डितः।
हितप्रियोक्तिभिर्वक्ता, दाता सम्मानदानतः॥

—व्याससमृति ४।५९-६०

लड़ाई में जीतने से शूर नहीं होता, पढ़ने से पण्डित नहीं होता, बोलने

में निपुण होने से वक्ता नहीं होता और धन देने से दाता नहीं होता ॥५९॥

इन्द्रियों के जीतने से शूर होता है, धर्माचरण से पण्डित होता है, हित-कारी प्रियवचन बोलने से वक्ता होता है और दूसरों को सम्मान देने से दाता होता है ॥६०॥

९. स दाता महान्, यस्य नास्ति प्रत्याशोपहतं चेतः ।

—**नीतिवाक्यामृत १७।६**

वह दाता महान् है—जिसका मन प्रत्याशा से उपहत नहीं है ।

१०. उत्तमोऽप्रार्थितो दत्ते, मध्यमः प्रार्थितः पुनः ।
याचकैर्याच्यमानोऽपि, दत्ते न त्वधमाधमः ॥

—**चन्दचरित्र, पृष्ठ, ६**

उत्तम बिना माँगे देता है; मध्यम मांगने पर देता है; किन्तु वह अधमाधम है, जो मांगने पर भी नहीं देता ।

११. अदाता-पुरुषस्त्यागी, धनं संत्यज्य गच्छति ।
दातारं कृपणं मन्ये, न मृतोऽप्यथ मुञ्चति ॥

—**व्यासस्मृति ४।२४.**

अदाता-कृपण पुरुष ही वास्तव में त्यागी है, क्योंकि वह धन को यहीं छोड़कर चला जाता है । दाता को तो मैं कृपण मानता हूँ, वह मरने पर भी धन को नहीं छोड़ता अर्थात् पुण्यरूप धन उसके साथ ही जाता है ।

१२. अनवसरे याचितमिति सत्पात्रमपि कुप्यते दाता ।

—**सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा**

अवसर के बिना माँगने पर सत्पात्र के प्रति भी दाता कुपित हो जाता है ।

२५ दाता के उदाहरण

१. (क) **राजा कर्ण** ने महल को तुड़वाकर चन्दन का दान दिया एवं मरते समय अपने दाँतों को तोड़कर सोने का दान दिया। श्री कृष्ण ने उसकी प्रशंसा की।

(ख) एक बार **इन्द्र** ब्राह्मणरूप से कर्ण के पास पहुंचे एवं उससे कवच एवं कुण्डल माँगे, जो उसे सूर्य से प्राप्त हुए थे तथा उसके प्राण थे। दाता कर्ण ने प्रसन्नतापूर्वक दे दिये। —**महाभारत वनपर्व**

२. **भामाशाह** ने अपने देश के लिए **महाराणा प्रताप** को इतना धन दिया, जिससे १२ वर्ष तक पच्चीस हजार मनुष्य भोजन कर सकते थे।

३. **जगड़ूशाह** पर्दे के पीछे बैठ कर दान देता था। राजा **वीसलदेव** वेष बदल कर आया, हस्तरेखा से रईस समझ कर रत्नों की दो अँगूठियाँ दान में दीं।

४. पण्डित ने चन्दन के बदले भक्त के मिट्टी का तिलक लगाते हुए कहा—**गंगाजी की मृत्तिका चन्दन करके मान।**

तब भक्त ने दक्षिणा में मेढ़की देते हुए कहा—**गंगाजी की मेढ़की, गैया करके जान।**

तात्पर्य यह कि पण्डित जैसा तिलक लगायेंगे, यजमान वैसी ही तो दक्षिणा देंगे।

५. जयपुरपति **महाराजा मानसिंह** काबुल को जीत कर लंका पर चढ़ाई करने लगे, तब एक कवि ने कहा—

रघुपति दीन्हो दान, विप्र बिभीषण जाणनैं।
मान महीपति मान! दियो दान किम लीजिए ?

यह दोहा सुनकर महाराज ने लंका जाना स्थगित कर दिया।

२६ दान

१. **दान की व्याख्या—**

(क) स्वपरोपकारार्थं वितरणं दानम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१७

अपने एवं पराये उपकार के लिए देने का नाम **दान** है ।

(ख) अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो·दानम् ।

—तत्त्वार्थसूत्र ७।३३

अनुग्रहार्थ वस्तु का त्याग करना **दान** है ।

२. **दान के भूषण—**

आनन्दाश्रूणि रोमाञ्चं, बहुमानं प्रियं वचः ।
किंचानुमोदनापात्रे, दानभूषणपञ्चकम् ।।

दान के पाँच भूषण हैं—(१) देते समय हर्ष के आँसू बहाना, (२) रोमांच होना, (३) पात्र का बहुमान करना, (४) मीठी वाणी बोलना, (५) सत्पात्र की अनुमोदना करना ।

३. **दान के दोष—**

अनादरो विलम्बश्च, वैमुख्यं विप्रियं वचः ।
पश्चात्तापं च पञ्चापि, सद्दानं दूषयन्त्यमी ।।

दान के पाँच दोष हैं—(१) अनादर, (२) विलम्ब, (३) विमुखता, (४) अप्रियवचन, (५) दान देकर पश्चात्ताप करना ।

४. दान के अधिकारी सच्चे सन्यासी हैं ।

—विनोबा

२७ दान की महिमा

१. पृथिव्यां प्रवरं दानम् ।

—उपदेशतरंगिणी

इस पृथ्वी में दान सर्वोत्तम कार्य है ।

२. **तीन सद्‌गुण हैं**—आशा, विश्वास और दान—इन तीनों में दान सबसे बढ़कर है ।

—बाइबिल

३. तपः परं कृतयुगे, त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहु-र्दानमेकं कलौ युगे ॥

—मनुस्मृति १।८६

सत्ययुग में तप, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापरयुग में यज्ञ और कलियुग में दान उत्कृष्ट माना गया है।

४. नास्ति दानात् परं मित्र-मिहलोके परत्र च ।

—अत्रिसंहिता

इस लोक और परलोक में दान के समान कोई मित्र नहीं है ।

५. दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७२

दान से वैर-विरोधों का नाश हो जाता है ।

६. दारिद्र्यनाशनं दानं, शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा, भावना भयनाशिनी ॥

—चाणक्यनीति ५।११

दान दरिद्रता का, शील दुर्गति का, बुद्धि अज्ञान का और भावना भय का नाश करनेवाली है।

७. पात्रे धर्मनिबन्धनं तदितरे श्रेष्ठं दयाख्यापकं,
मित्रे प्रीतिविवर्धनं तदितरे वैरापहारक्षमम्।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सम्मानसंपादकं,
भट्टादौ सुयशस्करं वितरणं न क्वाप्यहो निष्फलम्॥

—सिन्दूरप्रकरण ८१

आश्चर्य है कि दान कहीं भी निष्फल नहीं होता। देखो ! सुपात्र को देने से धर्म होता है, अन्यों को (गरीबों को) देने से व्यावहारिक दया को जाहिर करता है। मित्र को देने से प्रेम बढ़ाता है, शत्रु को देने से वैर का नाश करता है, नौकरों को देने से भक्ति पैदा करता है, राजा को देने से सम्मान दिलाता है और चारण-भाटों को देने से यश-कीर्ति फैलाता है।

८. ददं मित्तानि गन्थति।

—सुत्तनिपात १।१०।७

दान से मित्र अपनाये जाते हैं।

९. अदन्तदमनं दानं दानं सव्वत्थसाधकं।

—विसुद्धिमग्गो ९।३९

दान अदान्त (दमन नहीं किये व्यक्ति) का दमन करनेवाला तथा सर्वार्थसाधक है।

१०. को न याति वशं लोके, मुखे पिण्डेन पूरितः।
मृदङ्गो मुखलेपेन, करोति मधुरध्वनिम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६२

मुख में पिण्ड देने से कौन वश में नहीं आता ? मृदंग भी मुख पर चमड़ा मढ़ने से मीठा बोलने लगता है।

२८ दान की प्रेरणा

१. दशहस्तः समाहर ! सहस्रहस्तः संकिर !

—ऋग्वेद ३।२४।५

सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से बांटो !

२. तुलसी कर पर कर करो, करतल कर न करो ।
जा दिन करतल कर करो, ता दिन मरण करो !

३. श्रद्धया देयं, अश्रद्धया देयं, श्रिया देयं,
ह्रिया देयं, भिया देयं, संविदा देयम् ।

—तैत्तिरीय-उपनिषद् १।११

श्रद्धा से दान दो, अश्रद्धा से भी दो, अपनी बढ़ती हुई श्री (धनसम्पत्ति) में से दो, श्रीवृद्धि न हो तो भी लोकलाज से दो, भय (समाज तथा अपयश के डर) से दो और संविद् (प्रेम अथवा विवेक बुद्धि) से दो ।

४. कलजुग नहीं कर–जुग है ।
एक हाथ से ले और दूसरे हाथ से दे ।

—हिन्दी कहावत

५. हाथे ते साथे ।

—गुजराती कहावत

६. देयं भो ! ह्यधने-धनं सुकृतिभिर्नो संचयस्तस्य वै,
श्री कर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
अस्माकं मधुदान-भोगरहितं नष्टं चिरात्संचितं,
निर्वेदादिति नैजपादयुगलं घर्षन्त्यहो ! मक्षिकाः ॥

—चाणक्यनीति ११।१८

मधुमक्खियों का कहना है कि पुण्यात्माओं को धन का केवल संग्रह न करके अकिंचनों को देते रहना चाहिए। क्योंकि उसीके कारण कर्ण, बलि और विक्रम आदि राजाओं का यश आज तक विद्यमान है। दान-भोग बिना का हमारा मधु, जो चिरकाल से संचित था, नष्ट हो गया ! इसी दुःख से हम (मधु-मक्खियाँ) अपने दोनों पैरों को घिस रही हैं।

७. किं वा धनं नार्थिजनाय यत् स्यात् !
वह धन किस काम का, जो याचकजनों को प्राप्त न हो सके !

८. जो तुम प्राप्त करना चाहते हो तो अर्पित करना सीखो।

—**सुभाषचन्द्र बोस**

९. उपार्जितानामर्थानां, त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदर-संस्थानां, परीवाह इवाम्भसाम् ॥

—**पञ्चतन्त्र २।१५५**

संचय किए हुए धन का दान करते रहना ही उसकी रक्षा है। जैसे—तालाब के पानी का बहते रहना ही उसे गंदा न होने देने का कारण है।

१०. गौरवं प्राप्यते दाना-न्नतु वित्तस्य संचयात्।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां, पयोधीनामधःस्थितिः ॥

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७२**

दान देने से गौरव मिलता है, धन का संग्रह करने से नहीं। देखो ! मेघ ऊंचे रहते हैं और समुद्र नीचे रहते हैं।

११. प्रदत्तस्य प्रभुक्तस्य, दृश्यते महदन्तरम्।
दत्तं श्रेयांसि संसूते, विष्ठा भवति भक्षितम् ॥

—**चन्दचरित्र, पृष्ठ ७१**

दिए हुए एवं खाए हुए द्रव्य का बड़ा-भारी अन्तर है। दिया हुआ द्रव्य सुकृत उत्पन्न करता है और खाए हुए की विष्ठा बनती है।

१२. सक्कच्चं दानं देथ, सहत्था दानं देथ।
चित्तीकतं दानं देथ, अनपविद्धं दानं देथ ।।

—दीर्घनिकाय २।१०।५

सत्कारपूर्वक दान दो, अपने हाथ से दान दो, मन से दान दो और ठीक तरह से दोषरहित दान दो।

१३, दिन्नं होति सुनीहितं।

—अंगुत्तरनिकाय ३।६।२

दिया हुआ चिरकाल तक सुरक्षित रहता है।

१४. मच्छेरा च पमादा च, एवं दानं न दीयति।

—अंगुत्तरनिकाय १।१।३२

मात्सर्य और प्रमाद से दान नही देना चाहिए।

१५. अप्पस्मा दक्खिणादिन्ना, सहस्सेन समं मता।

—अंगुत्तरनिकाय १।१।३२

थोड़े में से जो दान दिया जाता है, वह हजारों लाखों के दान की बराबरी करता है।

२६ दान में विवेक

१. नदद्याद् यशसे दानं, न भयान्नापकारिणे ।
न नृत्यगतिशीलेषु, हासकेषु न धार्मिकः ॥

—महाभारत, शांतिपर्व ३६।३६

यश के लिए, भयभीत होकर, अपकार करनेवालों को, नाचने-गानेवालों को एवं लोगों को हंसानेवाले भांडों को—इतनी जगह धार्मिक पुरुषों को दान नहीं देना चाहिए ।

२. जो दान अपनी कीर्ति-गाथा गाने को उतावला हो उठता है, वह दान नहीं, अहंकार एवं आडम्बर मात्र है ।

—हुट्टन

३. यज्ञोऽनृतेन क्षरति, तपः क्षरति विस्मयात् ।
आयुर्विप्रापवादेन, दानं च परिकीर्तनात् ।

—मनुस्मृति ४।२३७

झूठ से यज्ञ, विस्मय से तप, ब्राह्मण-साधु की निन्दा से आयु और प्रशंसा से दान नष्ट (निष्फल) हो जाता है ।

४. एक किसान बांस की नली में से धान्यकण खेत में डालता है, दूसरा मुठ्ठी भर-भर के उछालता है । पहले के सैकड़ों-हजारों मन अनाज होता है और दूसरे का फैंका योंही उड़ जाता है या बह जाता है । दान के विषय में "गुप्तदानं महापुण्यं" इसी लिए कहा गया है ; अतः देकर उसका प्रदर्शन मत करो ।

—संकलित

५. अपना कर्ज न चुकाकर या अपने नौकरों को पूरी नौकरी न देकर दान देना गलत है।

—यालकत शिमेओनी, PRO. ६४७ (यहूदी धर्मग्रंथ)

६. अनुचित काम करने के लिए एवं अपने स्वार्थ या सुख-सुविधा के लिये दान देना गलत है।

—मिदराश निर्गमन, रब्बा ३१।१८ (यहूदी०)

७. ऐ ईमानवालों! अपने दान को अहसान जताकर या तकलीफ पहुँचाकर बर्बाद मत करो।

—कुरान २।२६४

८. तत् किं दानं यत्र नास्ति सत्कारः?

—नीतिवाक्यामृत १८।८

वह क्या दान है, जिसमें सत्कार नहीं?

९. दान वही, जहां पुष्ट अहिंसा।

—आचार्यतुलसी

१०. वृथा दानं धनाढ्येषु।

—चा वयनीति ५।१६

धनाढ्यपुरुषों को दान देना वृथा है।

११. अतिदानाद् बलिर्बद्धः।

—चाणक्यनीत ३।१२

अतिदान से बलि राजा बाँधा गया।

१२. दानं हि विधिना देयं, काले पात्रे गुणान्विते।

—दक्षस्मृति ३।२५

गुणवान पात्र को उचित समय में शास्त्रोक्तविधि से दान देना चाहिए।

१३. काले दत्तं वरं ह्यल्प-मकाले बहुनापि किम्?

—कथासरित्सागर

समय पर दिया हुआ थोड़ा दान भी श्रेष्ठ है। बिना समय बहुत देने से भी क्या है ?

१४. दान में विवेक अत्यन्त आवश्यक हैं—घी से साधु का पात्र भर गया, घी ढुलने लगा, फिर भी दाता डालता ही रहा—ऐसे करना भी एक प्रकार से दौष है।

१५. हाथ जोड़कर (इन्कमटैक्स आदि में) देना सहज है, किन्तु हाथ जुड़वाकर (भिखारी आदि को) देना कठिन है।

● पच्चीस हजार की मोटर में बैठकर एक सेठानी साध्वी के दर्शनार्थ आई। उससे कहा गया कि आपके पास बहुत धन हैं "इस गरीब बहन को कुछ दें" उसने कहा—'ऊँट की लम्बी गर्दन काटने के लिए थोड़ी ही है।' कुछ दिन बाद उसका पुत्र ब्लेक (कालाबाजार) करता पकड़ा गया और दशहजार देने पड़े।

१६. यतिने काञ्चनं दत्त्वे, ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे।
चौरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वे, स दाता नरकं व्रजेत्॥

—पराशरस्मृति

यति को सोना, ब्रह्मचारी को ताँबूल और चोरों को अभय देनेवाला दाता नरक में जाता है।

१७. तगड़े और तन्दुरुस्त आदमी को भीख देना (दान करना) अन्याय है।

—विनोबा

३० दान के भेद

१. दसदान—

दसविहे दाणे पण्णत्ते, तं जहा—
अनुकंपा संगहे चेव, भये कालुणिएइ य।
लज्जाए गारवेणं च, अहम्मे पुण सत्तमे॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काहाइ य कयंति य।

—स्थानांग १०।७४५

भगवान ने दस प्रकार के दान कहे हैं, यथा—(१) अनुकम्पादान, (२) संग्रहदान, (३) भयदान, (४) कारुणिकदान, (५) लज्जादान, (६) गौरवदान, (७) अधर्मदान, (८) धर्मदान, (९) काहीदान, (१०) कतंतीदान।

२. तीनदान—

दातव्यमिति यद्दानं, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥२०॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं, फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं, तद्दानं राजसं स्मृतम्॥२१॥

अदेशकाले यद्दान-मपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं, तत्तामसमुदाहृतम्॥२२॥

—गीता, अ० १७

हे अर्जुन! दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर, प्रत्युपकार न करनेवाले के लिए दिया जाता है, वह दान 'सात्त्विक' कहा है। २०।

जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अर्थात् बदले में अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करने की आशा से अथवा फल को उद्देश्य रखकर दिया जाता है, वह दान 'राजस' कहा गया है। २१।

जो दान विना सत्कार किये अथवा तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य देश, काल में कुपात्रों के लिए अर्थात् मद्य-मांसादि अभक्ष्यवस्तुओं के खानेवालों एवं चोरी-जारी आदि नीचकर्म करनेवालों के लिए दिया जाता है, वह दान 'तामस' कहा गया है। २२।

३. भिक्षुओ ! दो दान हैं—भौतिकदान और धर्मदान। (आमिसदानं च धम्मदानं च) इन दोनों में धर्मदान श्रेष्ठ है।

—**अंगुत्तरनिकाय २।१३।१**

४. सव्वं दानं धम्मदानं जिनाति,
सव्वं रसं धम्मरसो जिनाति।

—**धम्मपद २५।२१**

धर्म का दान, सब दानों से बढ़कर है। धर्म का रस, सब रसों से श्रेष्ठ है।

५. धर्मदान के तीनरूप हैं—(१) अभयदान, (२) संयतिदान, (सुपात्रदान) (३) ज्ञानदान।

३१ अभयदान

१. दाणाणसेठ्ठं अभयप्पयाणं ।

—सूत्रकृतांग ६।२३

सब दोनों में अभयदान श्रेष्ठ है ।

२. दानं भूताभयस्याहुः, सर्वदानेभ्य उत्तमम् ।

—महाभारत, शान्तिपर्व २६२।३३

प्राणियों को अभयदान देना, सब दानों से उत्तम बताया गया है ।

३. न भूप्रदानं न सुवर्णदानं, न गोप्रदानं न तथान्नदानम् ।
यथा वदन्तीह महाप्रदानं, सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥

—हितोपदेश ४।६१

महापुरुष अभयदान को सर्वोत्तम दान कहते हैं । उसके सामने पृथ्वी, सोना, गौ एवं अन्न का दान नगण्य है ।

४. यो ददाति सहस्राणि, गवामश्वशतानि च ।
अभयं सर्वभूतेभ्यः, सदा तमभिवर्तते ॥

—महाभारत, शान्तिपर्व २९८।५

जो एक हजार गौ तथा एक सौ अश्व का दान करता है तथा दूसरा जो समस्त भूतों को अभयदान देता है, वह सदा गौ और अश्वदान करने-वाले से बढ़ा-चढ़ा रहता है ।

५. तपोभिर्यज्ञदानैश्च, वाक्यैः प्रज्ञाश्रितैस्तथा ।
प्राप्नोत्यभयदानस्य, यद् यत् फलमिहाश्नुते ॥
लोके यः सर्वभूतेभ्यो, ददात्यभयदक्षिणाम् ।
स सर्वयज्ञैरीजानः, प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम् ॥

—महाभारत, शान्तिपर्व २६२।२८-२९

तप, यज्ञ, दान और ज्ञान-सम्बन्धी उपदेश के द्वारा मनुष्य यहाँ जो-जो फल प्राप्त करता है, वह सब उसे केवल अभयदान से मिल जाता है। जो जगत् में सम्पूर्ण प्राणियों को अभय की दक्षिणा देता है, वह मानो ! समस्त यज्ञों का अनुष्ठान कर लेता है तथा उसे सब ओर से अभयदान प्राप्त हो जाता है।

सुपात्रदान

१. सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं, सुपात्रे दापयेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च, क्षिप्रं नैव हि दुष्यति ॥

—व्याससमृति ४६

सुक्षेत्र एवं सुपात्र में डाला हुआ द्रव्य नष्ट नहीं होता, अतः सुक्षेत्र में बीज बोओ और सुपात्र को दान दो !

२. व्याजे स्याद् द्विगुणं वित्तं, व्यवसाये चतुर्गुणम् ।
क्षेत्रे शतगुणं प्रोक्तं, पात्रेऽनन्तगुणं भवेत् ॥

—उपदेशतरंगिणी

धन व्याज में दुगुना, व्यापार में चौगुना, खेत में सौगुना और सुपात्र में दिया हुआ अनन्तगुणा होता है ।

३. निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रं धनम् !

—सिन्दूरप्रकरण ७७

सुपात्र को दिया हुआ पवित्रधन (द्रव्य) मुक्ति लक्ष्मी को देनेवाला होता है ।

४. समणोवासगस्सणं भंते ! तहारूवं समणं वा, माहणं वा, फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?
गोयमा ! एगंतसो निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ ।

—भगवती ८।६

भगवन् ! श्रमणोपासक यदि तथारूप श्रमण-माहन को प्रासुक-एषणीय आहार देता है तो क्या लाभ होता है ?

गोतम ! वह एकान्त कर्मनिर्जरा करता है, लेकिन किंचिन्मात्र भी पाप नहीं करता ।

५. देई सुपातर दान, न करै मन अभिमान ।
संसार परत्ति करै ए, शिवनगरी वरै ए ।।

—व्रताव्रत की चौपाई ५।२४

६. **भावना फली—**

कोटे में (झालरा पाटण की) एक बहन ने १२ वर्ष तक धोवण की भावना भाई। अचानक भारमलजी स्वामी पधारे, धोवण का व्रत निपजा एवं भावना फली ।

(सुपात्रदान के साथ कुपात्रदान भी समझना चाहिए) ।

३३ कुपात्रदान

१. समणोवासगस्सण भंते ! तहारूवं असंजय-अविरय-अपडिहय-पच्चक्खायपावकम्मं फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असण-पाण जाव किं कज्जइ ?
गोयमा ! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से कावि निज्जरा कज्जइ।

—भगवती ८।६

भगवन ! तथारूप असंयत, अविरत एवं पापकर्म से अनिवृत्त व्यक्ति को प्रासुक, अप्रासुक, एषणीय अथवा अनेषणीय अशन–पान–खादिम–स्वादिम देने से श्रावक को क्या फल होता है ?

हे गौतम ! उसे एकान्त पाप होता है, किसी भी प्रकार की निर्जरा नहीं होती।

२. वितीर्य दानं तु असंयतात्मने, जनः फलं काङ्क्षति पुण्यलक्षणम्।
वितीर्य बीजं ज्वलिते स पावके, समीहते सस्यमपास्तलक्षणम्॥

—अमितगति–श्रावकाचार, परिच्छेद ११

असंयतआत्मा को दान देकर जो पुण्यफल की इच्छा करता है, वह जलती हुई अग्नि में बीज डालकर धान्य उत्पन्न करने की आशा करने-वाला है।

३. भस्मनि हुतमिवापात्रे स्वार्थव्यय यः।

—नीतिवाक्यामृत १।११

अपात्र में धन खर्च करना राख में हवन करने के समान है।

४. कुपात्रदानाच्च भवेद्दरिद्रो, दारिद्र्यदोषेण करोति पापम् ।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति, पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी ॥

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १५७**

कुपात्रदान से प्राणी दरिद्र होता है। दरिद्र होकर पाप करता है और पाप करके नरक जाता है। इस प्रकार बार-बार दरिद्र एवं पापी बनता रहता है।

५. नवार्यपि प्रयच्छेत्तु, बैडालव्रतिके द्विजे ।
न बकवृत्तिके विप्रे, नावेदविदि धर्मविद् ॥

—**मनुस्मृति ४।१९२**

धर्मज्ञपुरुष को बिड़ालवृत्तिवाले, बकवृत्तिवाले, और वेदों को नहीं जानने-वाले ब्राह्मण को पानी भी नहीं पिलाना चाहिए।

६. जो देगा शरीरों को तू माल-दौलत ।
गुनहगार होंगे वे तेरी बदौलत ॥

—**उर्दू शेर**

७. सुपात्र दान मुगति रो मारग, कुपात्र सूं रुले संसार ।

—**व्रताव्रत की चौपाई १६।५०**

८. अव्रत में दै दातार, ते किम उतरे भवपार ।
छांदो इण लोक रो ए, मारग नहीं मोख रो ए ॥

—**व्रताव्रत की चौपाई ५।१६**

पात्र-कुपात्र

१. पाकारेणोच्यते पापं, त्रकारस्त्राणवाचकः।
अक्षरद्वयसंयोगे, पात्रमाहुर्मनीषिणः।।१९९।।
न विद्यया केवलया, तपसावापि पात्रता।
यत्र वृत्ती इमे चोभे, तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ।।२००।।

—याज्ञवल्क्यस्मृति १

'पा' पाप का और 'त्र' रक्षण का वाचक है। इन दोनों अक्षरों के संयोग से पात्र को विद्वान् लोग **पात्र** कहते हैं, अर्थात् जो आत्मा को पाप से बचाता है, वह **पात्र** है ।।१९९।।

केवल विद्या से या केवल तपस्या से **पात्रता** नहीं आती। जिसमें—ये दोनों (विद्या-ज्ञान और तपस्या-चारित्र) होते हैं, वही **पात्र** कहा गया है ।।२००।।

२. उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं,
मध्यं व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम्।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं,
युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं नु विद्धि ।।

महाव्रती-अनगार उत्कृष्टपात्र है, अणुव्रती मध्यमपात्र है, सम्यक्त्वी जघन्यपात्र है, सम्यक्त्वहीन-व्रतधारी "कुपात्र" है और सम्यक्त्व-व्रत दोनों से हीन व्यक्ति अपात्र है।

३. सैव भूमिस्तदेवाम्भः, पश्य पात्रविशेषता।

—याज्ञवल्क्यस्मृति

एक ही भूमि और एक ही पानी होने पर भी नीम और आम में जो अन्तर है, वह बीजरूप पात्र की ही विशेषता है।

४. पात्रापात्रविवेकोऽस्ति, धेनु-पन्नगयोरिव।
तृणात्संजायते क्षीरं, क्षीरात्संजायते विषम्॥

—व्यास

पात्र-अपात्र में गाय और सांप जितना अन्तर है। गाय को खिलाये हुए तृणों से दूध बनता है और सांप को पिलाये हुए दूध से जहर बनता है।

३५ ज्ञानदान

१. सर्वेषामपि दानानां, ब्रह्मदानं विशिष्यते ।

—मनुस्मृति ४।२३३

सभी दानों में विद्यादान विशिष्ट माना गया है ।

२. दक्षिणा ज्ञानसन्देशः ।

—श्रीमद्भागवत ११।१६।३६

ज्ञान का उपदेश देना ही दक्षिणा-दान है ।

३. जं तेहिं दायव्वं, तं दिन्नं जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
दंसण-नाण-चरित्तस्स, एस तिविहस्स उवएसो ॥

—आवश्यकनिर्युक्ति ११०३

तीर्थंकरों ने जो कुछ देने योग्य था, वह दे दिया है, वह समग्रदान यही है—दर्शन-ज्ञान और चारित्र का उपदेश ।

३६ कृपण

१. कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति ,
अस्पृशन्नेव वित्तानि, यः परेभ्यः प्रयच्छति ।

—प्रसङ्गरत्नावलि

कृपण के समान दानी न तो हुआ और न कभी होगा । जो अपने सारे धन को स्वयं न छूता हुआ दूसरों को दे देता है अर्थात् छोड़कर मर जाता है ।

२. यदधोऽधः क्षितौ वित्तं, निचखान मितंपचः ।
तदधोनिलयं गंतुं, चक्रे पन्थानमग्रतः ॥

—शाकुन्तल

कृपण ने जमीन में जो धन को दाटा है, वह मानो ! अधोलोक में जाने का रास्ता बनाया है ।

३. दृढतरनिबद्धमुष्टेः, कोशनिषन्नस्य सहजमलिनस्य ।
कृपणस्य कृपाणस्य, केवलमाकारतो भेदः ॥

—शाकुन्तल

कृपण और कृपाण-तलवार में केवल एक आकार की मात्रा का अन्तर है, शेष बातों में दोनों तुल्य हैं—जैसे दोनों की मुष्टि दृढ़ है । दोनों कोष (खजाना एवं खड्ग का घर) में रहनेवाले हैं एवं दोनों ही स्वभाव से मलिन (काले एवं मैले) हैं ।

४. कृपणो धनलोभेन, स्वां भार्यां नाभिगच्छति ।
अस्यां यो जायते पुत्रः, स मे वित्तं हरेदिति ॥

—सभातरङ्ग

कृपण धनलोभ के वश अपनी स्त्री के पास भी नहीं जाता। उसको भय रहता है कि इसके पुत्र होगा, वह मेरा धन ले लेगा।

५. यो न ददाति न भुङ्क्ते, सति विभवे नैव तस्य तद् द्रव्यम्।
तृणमय-कृत्रिमपुरुषो, रक्षति शस्यं परस्यार्थे ॥

—शाकुन्तल

धन होने पर भी जो दान एवं भोग नहीं करता, वास्तव में धन उसका है ही नहीं। वह तो क्षेत्रस्थित तृणमय पुरुष के समान दूसरों के लिए ही धन-धान्य आदि की रक्षा करता है।

६. यद्ददाति यदश्नाति, तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति, दारैरपि धनैरपि ॥

—व्यासस्मृति ४।१७

जो किसी को दान में दे देता है या जो खा लेता है, वास्तव में धनिकों का वही धन है। मरने के बाद तो उसकी स्त्री एवं धन से दूसरे व्यक्ति ही क्रीड़ा करते हैं।

७. नवे कदरिया देवलोकं वजन्ति।

—धम्मपद १३।११

कृपण व्यक्ति स्वर्ग में नहीं जाते।

८. न देयं नोपभोग्यं च, लुब्धैर्यद् दुःख-सञ्चितम्।
भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो, मधुहेवार्थविन् मधु ॥

—भागवत ११।८।१५

लोभी-कृपण पुरुषों द्वारा दुःखपूर्वक संचित (एकत्रित) हुआ धन न तो किसी को दिया जाता है और न उनसे स्वयं खाया जाता है। वह तो जैसे मधु-मक्खियों का संचित-मधु मधुहर्त्ता के काम आता है, उसी प्रकार दूसरों के भोग में आता है।

९. जोड़-जोड़ राखी कदे कर तें न चाखी,
ताकी साखी मधुमाखी जैसी दई जमा जानी में।

रावन रजाई रति मरतां न पाई,
लंक कंचन लुटाई धन मिल्यो धूलधानी में ।
हाथ से न हाली गांठ बाँधे से न चाली,
नर केते गए खाली बात सुनी वेदवानी में ।
अरे अभिमानी ! कहा कहिये कहानी,
देख ! वीसल की बीस कोड़ डूब गई पानी में ॥

—भाषाश्लोकसागर

१०. द्वावम्भसि प्रवेष्टव्यौ, गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् ।
विद्वांसं चाप्रवक्तारं, धनवन्तमदायिनम् ॥

—विदुरनीति १।६६

नहीं बोलनेवाला विद्वान् और दान नहीं देनेवाला धनी—इन दोनों को गले में शिला बांधकर पानी में डुबो देना चाहिए ।

११. दिन ऊग्यां दातार, याद करे सारी इला,
सूमां रो संसार, नाम न लेवै नाथिया !

—सोरठा संग्रह

१२. मांगण गया सो मर गया, मरे सो मांगण जाय ।
सगलां पहली वो मरै, जो होतां नट जाय ॥

१३. **कृपण के विषय में पत्नी-पति सम्वाद—**

पत्नी—वसती वस्यो न जाणियो, न जाण्यो मांगण महंत ।
जम्मां किणविध जाणियो, हूँ तनैं पूछूं कंत ?

पति—हाथां दियो न हर भज्यो, कियो न सुकृत कांय ।
बोझां मरती बापड़ी, वसुधा दियो बताय ॥

१४. **उदासीन कृपण और उसकी पत्नी—**

पत्नी—कहा गांठ से गिर पड्यो, कहा कछु किसको दीन्ह !
पत्नी पूछै सूम से, क्यों पिया ! वदन मलीन ?

पति—ना कछु गांठ से गिर पड्यो, ना कछु किसको दीन्ह ।
देतां देख्यो औरनै, तातैं बदन मलीन ॥

—कबीर

१५. कृपण का चिन्तन—

(क) जामें दो अठन्नी चार पावली दुअन्नी आठ,
आने पुनि तामें सदा सोलह समात हैं।
बत्तीस अधन्नी और चौंसठ तो पैसे होत,
एक शत आठ बीस अधेले सुहात हैं।
दोय शत छप्पन छदाम जामें देखी जात,
पांच शत बारह सु दमड़ी कहात हैं!
घोर कलिकाल के कराल या समां के बीच,
ऐसो यो रुपइयो भइया! कैसे दियो जात हैं?

—भाषाश्लोकसागर

(ख) छाछ घालतां छाती फाटै, दूध घालणो दोहरो।
दही घालताँ माथो दूखै, उत्तर देणो सोहरो॥

—राजस्थानी दोहा

१६. कृपण को 'दकार' से घृणा—

(क) देवता को सुर औ असुर कहे दानव को,
दाई को सुधाय तिया दार को लहत है।
दर्पण को आरसी त्यों दाख को मुनक्का कहे,
दास को खबास आमखास विचरत है।
देवी को भवानी और देहरा को मठ कहै,
याही विधि घासीराम रीति आचरत है।
दाना को चबीना दीपमाला को चिरागजाल।
दैवे के डर कभी दद्दो ना कहत है।

(ख) देहल दूर करो घर की अरु, आवण-जाण करो इकनाले!
चावल-दाल कदे मत रांध तू, शाक सदा हित राँध उबाले!
सूम को पूत कहै सुन कामिनी, सोय रहूं बिन ही उजियाले।
जो जग जीवनो चाहे कई दिन, तो दद्दे के नाम दियो मत बाले!

—भाषाश्लोकसागर

(ग) जल डूबूं अगनी जलूं, अहि-मुख आँगली द्यूं।
इतरा मैं कारज करूँ, दद्दो नाँव न ल्यूं॥

● बावन अक्खर में बड़ो, नन्नो सहुनों सार।
दद्दो तो जाणूं नहीं, लल्ले अक्सर प्यार॥

—राजस्थानी दोहे

(घ) चारण कवि ने एक कृपण सेठ को खूब विरुदाया। खुश होकर कृपण ने कह दिया कि तुम्हें पगड़ी दूंगा। दूसरे दिन कवि ने ज्योंही पगड़ी मांगी, सेठ ने निम्नलिखित पद्य कहा एवं सारा पांसा ही पलट दिया—

पाघ देनी कही सो तो माँगत हो आज ही पै,
आवेगो आषाढ़ तब बन हु बुवावेंगे।
होवेगो कपास तब लोढ़-पींज कात बुन,
धोबी कोऊ चतुर तापे ऊजरी धुलावेंगे।
बुगचा में बाँध घर रखेंगे कितेक दिन,
आवेगो कसुंबो तब गुलाबी रंगावेंगे।
हम बाँध, पूत बाँध पोते-पड़पोते बाँध,
पीछे हम वाही पाघ तुमको दिलावेंगे॥

—भाषाश्लोकसागर

३७ याचक

१. तृणं लघु तृणात्तूलं, तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतोऽसौ, मामयं याचयिष्यति ॥

—चाणक्यनीति ६।१५

तृण हलका है, उससे हलका तूल (रुई) है, तूल से भी हलका याचक—मांगने-वाला है । मेरे से कुछ मांग लेगा इस भय से पवन ने भी इसे नहीं उड़ाया ।

२. काक आह्वयते काकान्, याचको न तु याचकान् ।
काक-याचकयोर्मध्ये, वरं काको न याचकः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७६

एक काक (कौवा) दूसरे काक को प्रेम से आह्वान करता है, किन्तु याचक–याचक को नहीं, अतः याचक की अपेक्षा काक उत्तम है ।

३. भिक्षुको-भिक्षुकं दृष्ट्वा, श्वानवद् गुर्गुरायते ।

—सुभाषितरत्नमंजूषा

भिखारी–भिखारी को देखकर कुत्ते की तरह गुरगुराने लगता है ।

४. कोऽर्थी गतो गौरवम् ?

—पंचतन्त्र १।१५७

कोई भी याचक गौरव को प्राप्त नहीं हुआ ?

५. तावद्गुणा गुरुत्वं च, यावन्नार्थयते परम् ।
अर्थी चेत् पुरुषो जातः, क्व गुणः क्व च गौरवम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७४

वहीं तक गुणियों के गुण हैं और वहीं तक गुरुओं का गौरव है, जहाँ तक वे दूसरों के पास नहीं मांगते। मांगने पर गुण और गौरव दोनों नष्ट हो जाते हैं।

६. स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्णतो य—
दास्यं भजेद् मलिनतां किमिदं, विचित्रम्।
गृह्णन् परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि,
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ७७

धनिकों से अपने लिए धन लेते समय लेनेवाले के मुख पर कालिमा छा जाती है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। दूसरों के लिए समुद्र का जल लेने पर भी देखो! यह मेघ काला हो जाता है।

७. एहि गच्छ! पतोत्तिष्ठ! वद! मौनं समाचर!
एवमाशाग्रहग्रस्तैः, क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः॥

—हितोपदेश २।२४

इधर आजा, चला जा, बैठ जा, खड़ा हो जा, बोल, चुप हो जा! आशारूप ग्रह से ग्रसित याचकों के साथ धनिक लोग—ऐसे खेलते रहते हैं।

८. **याचक की प्रभु से प्रार्थना—**
हे करतार करूँ अरजी अब, भूल लिखी मत काहू के टोटो।
ऐसी ललाट लिखे मत काहु के, मांगन जाय महीपति मोटो॥
तू अपनो वृध जानत है प्रभु! मांगन से कछु और न खोटो।
तू बलि के जब द्वार गयो तब, बावन आंगल हो गयो छोटो॥

—भाषाश्लोकसागर

६. मंगते सूं कोई गली छानी कोनी।
● हूँ लायो मांग-तांग, तूं लै गधै री टांग।

—राजस्थानी कहावतें

१०. **अद्भुत भिखारी**—वि. सं. २००४ की बात है, बिलेपारला (बम्बई में हम एक दिन बाहर जा रहे थे। रेंड़ी में बैठा हुआ एक अपाहिज मिला। जिसके हाथ-पैर नाक-कान कटे हुए थे। लँगोटी पहनी हुई थी एवं मुंह में सिगरेट थी। रेंड़ी खींचनेवाला व्यक्ति कह रहा था, **अपाहिज को कुछ दो, बड़ा पुण्य होगा।** देखकर आश्चर्य हुआ और स्थानीय भाइयों से पूछा तो पता लगा कि गुंडों-बदमाशों की एक टोली है। उसका काम यही है कि बच्चों को उड़ाकर विक्षतांग बना लेना और उनके सहारे दुनिया को ठग खाना। सुबह से शाम तक पचासों रुपये इकट्ठे कर लेते हैं। अपाहिज को केवल रोटी-सिगरेट आदि मिलते हैं। शेष रुपये बदमाशों की टोली हजम कर जाती है।

— **धनमुनि**

याचना

१. सेवेव मानमखिलं, ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम् ।
हरि-हरकथे व दुरितं, गुणशतमऽप्यऽर्थिता हरति ॥

—हितोपदेश १।१३९

जैसे—सेवा स्वाभिमान को, चान्दनी अन्धकार को, बुढ़ापा खूबसूरती को और हरि-हर की कथा सब पापों को हरती है, वैसे ही याचना सैकड़ों गुणों को हर लेती है ।

२. विशाखान्ता गता मेघाः, प्रसवान्तं हि यौवनम् ।
प्रणामान्तः सतां कोपो, याचनान्तं हि गौरवम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६३

जैसे विशाखा नक्षत्र के बाद मेघ, प्रसव के बाद स्त्रियों का यौवन और प्रणाम के बाद सत्पुरुषों का क्रोध नष्ट हो जाता है, वैसे ही किसी से कुछ मांगने के बाद गौरव नष्ट हो जाता है ।

३. लघुत्वमूलं हि किमर्थितैव, गुरुत्वमूलं यदयाचनं च ।

—शङ्कर-प्रश्नोत्तरी १८

लघुता का मूल क्या है ? मांगना ।
गुरुता का मूल क्या है ? नहीं मांगना ।

४. बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को वासो ।
बुरो नार को नेह, बुरो मूरख सों हांसो ।
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनीघर भाई ।
बुरी कुलच्छनि नार, सास घर बुरो जमाई ।

बुरो पेट पंपाल है, बुरो युद्ध से भागनो।
गंग कहे अकबर सुनो! सबसे बुरो है मांगनो ॥

५. वेपथुर्मलिनं वक्त्रं, दीना वाग् गद्गदस्वरः।
मरणे यानि चिह्नानि, तानि चिह्नानि याचने ॥

—व्यास

कंपन, वदन का मलिन होना, दीनतायुक्त वाणी एवं गद्गदस्वर आदि, जो मरण के चिन्ह हैं, याचना करते समय याचक के शरीर में भी वे ही चिन्ह हो जाते हैं।

६. वदनाच्च बहिर्यान्ति, प्राणा याञ्चाक्षरैः सह।
ददामीत्यक्षरैर्दातुः, पुनः कर्णाद् विशन्ति हि ॥

—कल्पतरु

याचना के अक्षरों के साथ याचक के प्राण मुंह से बाहर निकल जाते हैं। फिर **देता हूँ** दाता के इन अक्षरों के साथ कानों द्वारा पुनः अन्दर प्रवेश करते हैं।

७. देहीति वचनं श्रुत्वा, हृदिस्थाः पञ्च देवताः।
मुखान्निर्गत्य गच्छन्ति, श्री-ह्री-धी-शान्ति-कीर्तयः ॥

—शाकुंतल

मुझे कुछ दो—ऐसे बोलते ही हृदय में विराजमान श्री–लक्ष्मी, ह्री–लज्जा, धी–बुद्धि; शान्ति-कीर्ति—ये पाँचों देवता याचक के मुख से निकल जाते हैं।

८. आव गया आदर गया, नैनन गया सनेहु।
ये तीनों तब ही गए, जबहि कहा कछु देहु ॥

—कबीर

९. धनमस्तीति वाणिज्यं, किंचिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा न किंचिदस्तीति, भिक्षा नैव च नैव च ॥

—व्यास

पर्याप्त धन हो तो वाणिज्य, थोड़ा धन हो तो खेती एवं धन बिल्कुल ही न हो तो सेवा-नौकरी करनी चाहिए, लेकिन भीख तो कभी नहीं मांगनी चाहिए।

१०. मांगन-मरन समान है, मत कोई मांगो भीख।
मांगन से मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१॥

मर जाऊं मांगूं नहीं, अपने तन के काज।
पर कारज के कारणे, मांगत मोहि न लाज ॥२॥

बिन मांगे सो दूध बराबर, मांगे मिले सो पानी।
कहे **कबीर** सो रक्त बराबर, जामें खींचातानी ॥३॥

—कबीर

११. अणमांग्या मोती मिले, मांगी मिले न भीख।

—राजस्थानी कहावत

१२. **हर एक के पास मत मांग—**

(क) याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

—मेघदूत

गुणिजनों के समीप निष्फल मांगना भी अच्छा है, एवं अधमजनों से सफल मांगना भी बुरा है।

(ख) आप तो अतीतदास बाप तो फकीरदास,
दादो है दिगम्बरदास भिखारीदास भाई है।
काको है कंगालदास मामो है मंगतदास,
नानो है निरंजनदास जोगीदास जमाई है।
पुत्र तो लफंदरदास, मित्र है कलंदरदास,
सालो है जलंदरदास ऐसी ही बड़ाई है।
ताके पास जावे कुछ मांगिबे की आस करी,
आस तो गई पैं लाज गांठ की गमाई है।

—भाषाश्लोकसागर

(ग) रे रे चातक! सावधानमनसा मित्र! क्षणं श्रूयता—
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि: नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य-तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।
—भर्तृहरि-नीतिशतक ५१

अरे मित्र चातक! आकाश में अनेक मेघ निवास करते हैं, वे सभी बरसनेवाले नहीं हैं। कई तो वृष्टि से पृथ्वी को गीली करते हैं एवं कई व्यर्थ ही गर्जना करते हैं, अतः मेरी बात सुन और हर एक के सामने दीनवचन मत बोल!

१३. किसने क्या मांगा?

सासू माँग्यो बोलणों, बहुवर माँगी चुप।
करसणी माँग्यो वरषणों, धोबी माँगी धुप।
—राजस्थानी दोहा

तीसरा कोष्ठक

१ धन

१. यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोऽर्थः ।

—नीतिवाक्यामृत २।१

जिससे सब प्रयोजनों की सिद्धि हो, वह अर्थ (धन) है ।

२. अलब्धकामो, लब्धपरिरक्षणं,
रक्षित परिवर्धनं चार्थानुबन्धः ।

—नीतिवाक्यामृत २।३

अर्थ के तीन अनुबन्ध अर्थात् किये जानेवाले काम हैं—(१) अप्राप्त की कामना, (२) प्राप्त की रक्षा, (३) रक्षित को बढ़ाना ।

३. अर्थस्य पुरुषो दासो, दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।

—महाभारत-भीष्मपर्व

मनुष्य धन का दास है. किन्तु धन किसी का दास नहीं ।

४. अर्थैषणा व्यसनेषु न गण्यते ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

धन की गवेषणा व्यसनों में नहीं गिनी जाती ।

५. को न तृप्यति वित्तेन ?

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

धन से कौन तृप्त नहीं होता ?

६. दुन्दुभिस्तु सुतरामचेतन–स्तन्मुखादपि धनं-धनं-धनम् ।
इत्थमेव निनदः प्रवर्तते, किं पुनर्यदि जनः सचेतनः ।।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

अचेतन दुन्दुभि के मुख से भी धन-धन-धन ऐसा शब्द निकलता है, तो फिर सचेतन मनुष्य धन-धन की रटना लगाये—इसमें क्या आश्चर्य है ?

धन की भूख

१. जातिर्यातु रसातलं गुणगणास्तस्याप्यधोगच्छता—
च्छीलं शैलतटात् पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणी वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं,
येनैकेन बिना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक-३९

चाहे जाति पाताल को चली जाय, सारे गुण पाताल से नीचे चले जायँ, शील पर्वत से गिर कर नष्ट हो जाय, स्वजन अग्नि में जलकर भस्म हो जायँ और वैरी-शौर्य पर शीघ्र ही वज्रपात हो जाय—तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन हमारा धन नष्ट न हो, हमें तो केवल धन चाहिए; क्योंकि धन के बिना मनुष्य के सारे ही गुण तिनके की तरह निकम्मे हैं।

२. बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं,
हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणाः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ६७

भूखे व्याकरण नहीं खाया करते, प्यासे काव्यरस नहीं पिया करते तथा वेद से किसी ने कुल का उद्धार नहीं किया, अतः धन का ही अर्जन करो! दूसरे सारे गुण निष्फल हैं।

३. न दुनियाँके हों काम धन के बगैर,
न मुर्दा भी उठता कफन के बगैर।
मिले जर से कुव्वत ओ जर से तमीज,
खजाने हैं जिसके वही है अजीज॥

—उर्दू शेर

४. वसु बिना नो पशु, लक्ष्मी बिना नो लपोड़ अनें गरथ बिना नो गाँगलो।

—गुजराती कहावत

५. धन जाय तिणरो ईमान जाय।

—राजस्थानी कहावत

६. काका मामा गावानां, पासे होय ते खावानां।

—गुजराती कहावत

३ धन का प्रभाव

१. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

—भर्तृहरिनीतिशतक ४१

जिसके पास धन है—वस्तुतः वही कुलवान है, वही पण्डित है, वही ज्ञानी है, वही गुणज्ञ है, वही वक्ता है और वही दर्शनीय है। सारे गुण धन के आश्रित रहा करते हैं।

२. पूज्यते यदपूज्योऽपि, यदगम्योऽपि गम्यते।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि, स प्रभावो धनस्य च ॥

—पञ्चतंत्र १।७

जो अपूज्य पूजा जाता है, अगम्य में गमन किया जाता है और अवन्दनीय को वन्दना की जाती है—वह सारा धन का ही प्रभाव है।

३. धनैर्निष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति, धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके, धनान्यर्जयध्वं-धनान्यर्जयध्वम्॥

—नीतिसार

धन से अकुलीन, कुलीन बन जाते हैं। धन से मनुष्य आपत्ति को पार कर देते हैं। संसार में धन के समान दूसरा कोई भी स्वजन नहीं है, अतः धन का उपार्जन करो ! धन का उपार्जन करो !!

४. धन से बड़े-बड़े पापों पर पर्दा पड़ जाता है।

—प्रेमचन्द

५. धन भाग्य की गड्डी है।

—हिन्दी कहावत

६. हुवै पाताल-तपै लिलाड़।

● ढेढणी काँई बोले है, जमीं मायँलो बोले है।

—राजस्थानी कहावतें

७. जिहृदी कोठी दाने; ओहदे कमले वि सियाने।

—पंजाबी कहावत

८. खिस्सा तर तो चाहे सो कर।

● गाँठे होय धन, सौ हाजर जन।

● सकर्मी नाँ साला घणा, लीला वन नाँ सूडा घणा।

—गुजराती कहावतें

९. माया थाँरा तीन नाम, फरसो, फरसू, फरसराम।

—राजस्थानी कहावत

१०. **अच्छा भक्त**—यह एक दिन मैले कपड़ों से मन्दिर में दर्शनार्थ गया किन्तु उसे अन्दर नहीं जाने दिया। दूसरे दिन बन-ठन कर गया। लोगों ने कहा—आइये! अन्दर आकर दर्शन कर लीजिए। भक्त ने अन्दर जाकर अपने आभूषण आदि मूर्ति के सामने रख दिये और कहने लगा—करो भाई भगवान के दर्शन, तुम्हारी ही पूछ है।

११. **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर**—इनको लार्ड हेस्टिंग की तरफ से चार घोड़ों की बग्घी बक्सी हुई थी। ये राज्य-सभा के मेम्बर थे। एक बार "दीगापतिया नरेश" के निमंत्रण पर ये सादी पोशाक में पैदल ही चले गये। अन्दर नहीं घुसने दिये, फिर बग्घी चढ़कर ठाठ-बाट से गये, सब खड़े होकर उनके पैरो पड़ने लगे तब उन्होंने कहा—"मेरे नहीं घोड़ों के पैर पकड़ो।"

१२. **चूल्हा फूंकनियाँ**—निधन भाई को माँ-जाई बहन ने 'चूल्हा फूकनियाँ" कहा। फूटी हांडी में ठंडी रोटी और खट्टी छाछ खाने को दी। फिर धनी बनकर आया तो पाँचों पकवान परोसे। भाई ने रुपयों-मोहरों-हीरों-पन्नों के थाल भरकर रखते हुए कहा—लो भाई! बहिन के पकवान खाओ। बहिन लज्जित हुई।

४

धन का उत्पादन

१. न क्लेशेन विना द्रव्यम् ।

—दक्षस्मृति

कष्ट सहे विना धन नहीं मिलता ।

२. विद्या उद्यम बुद्धि बल, रूप तथा संयोग ।
षट्कारण धन लाभ के, जानत है सब लोग ॥

—पं. श्रद्धारामजी

३ सप्त बित्तागमा धर्म्या, दायो लाभः क्रयो जयः ।
प्रयोगः कर्मयोगश्च, सत्प्रतिग्रह एव च ॥

—मनुस्मृति १०।११५

धन की प्राप्ति के सातमार्ग धर्मयुक्त हैं—(१) दाय—पिता आदि का धन, (२) लाभ, (३) क्रय—व्यापार से प्राप्त, (४) जय—युद्ध मेंप्राप्त, (५) प्रयोग—ब्याज से प्राप्त, (६) कर्मयोग—खेती आदि से प्राप्त, (७) सत्प्रतिग्रह—अच्छे दाता से दान में प्राप्त ।

४. यथा मधु समादत्तो, रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य, आदद्यादविहिंसया ॥

—विदुरनीति २।१७

जैसे-भौंरा पुष्पों को नष्ट किये विना उनमें से मधुग्रहण कर लेता है, वैसे धन के मूलसाधन को नष्ट किए विना उसमें से धन ग्रहण करना चाहिए ।

५ धन का उपयोग

१. धन उसका नहीं, जिसके पास है, बल्कि उसका है, जो उसका उपयोग करता है।

—फ्रैंकलिन

२. धन और विद्या का उपयोग नहीं करनेवालों ने व्यर्थ कष्ट उठाया।

३. जिसने धन से यश कमाया और भोगा वह भाग्यवान और जिसने धन कमाया और छोड़कर मर गया वह भाग्यहीन।

४. उत्तमं स्वार्जितं भुक्तं, मध्यमं पितुर्रजितम्।
कनिष्ठं भ्रातृवित्तं च, स्त्रीवित्तमधमाधमम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६६

अपना कमाया धन खाना उत्तम है, पिता का कमाया हुआ खाना मध्यम है, भाई का धन खाना अधम है और स्त्री का धन खाना अधमाधम है।

५. दानं भोगो नाश-स्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

—पञ्चतन्त्र २।१५७

धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। जो व्यक्ति न तो किसी को देता एवं न स्वयं खाता-पीता, उसके धन की तीसरी गति अर्थात् नाश होता है।

६. दातव्यं भोक्तव्यं, धनविषये संचयो न कर्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणां, संचितमर्थं हरन्त्यन्ये॥

—पञ्चतन्त्र २।१४४

धन का दान एवं उपभोग करना चाहिए, किन्तु संग्रह नहीं। देखो ! मधुमक्खियों का संचितधन (मधु) दूसरे लोग हर लेते हैं।

७. त्यागाय श्रेयसे वित्त-मवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलम्पति ॥

—इष्टोपदेश-१६०

जो दान और पुण्य के लिए धन का संचय करता है, वह फिर नहा लूंगा—ऐसे सोचता हुआ अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता है।

८. मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—माया के मालिक और माया के गुलाम। मालिक माया में आसक्त नहीं होते एवं उसके लिए अन्याय नहीं करते। गुलाम माया में फँस जाते हैं एवं उसके लिए अन्याय करते नहीं डरते।

९. महाजन को धन रोड़ां में, ठाकर को धन घोड़ा में।

—राजस्थानी कहावत

६ धन का खजाना (अमेरिका में)

समुद्र की सतह से ४० फुट नीचे एवं न्यूयार्क व्यापारी बस्ती से ७० फुट नीचे स्वतन्त्र संसार का सबसे बड़ा स्वर्ण-भण्डार है, जिसमें १२.५३ अरब डालर मूल्य का सोना मकान बनाने की ईंटों के आकार में सुरक्षित है। प्रत्येक ईंट २७-२८ पौंड वजन एवं १४ हजार अमरीकी डालर मूल्य की है। इसके सिवा ६.५ अरब डालर सोना फोर्ट नोक्स (कैण्टकी) में एवं ११.८ अरब डालर सोना टकसालों व धातुविश्लेषक कार्यालयों में है। यह सारा सोना विदेशी सरकारों, बैंकों व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का है। इसे कोई खरीद नहीं सकता।

—हिन्दुस्तान, १८ मार्च १९६८

७ धन के विविधरूप

(क) रुपया—

१. **संतदास** संसार में, रुपियो बड़ी रसारा।
अराजाण्या जाण्या बरा, पड़दै पड़ै पिछारा ॥
संतदास संसार में, कै रुपियो के राम।
वो दाता है मुगतरो, वो सारै सब काम ॥

२. कर मैं ह्वै कलदार, मन चाह्या लूंटो मजा।
दुनियां में दिलदार, चेहराशाही चकरिया !

—**सोरठा-संग्रह**

३. दाम करै काम, दुनियां करै सलाम।

- रुपिया हुवै जद टट्टू चालै—
- रूपली पल्लै, जद रोही में चल्लै।
- रूपली हुवै जद, शोभली आपे ही आय जावै।
- रूपलालजी गुरु और सब चेला।

—**राजस्थानी कहावतें**

४. जेब में हो नगदुल्ला, नाचे बेटा अब्दुल्ला।

—**हिन्दी कहावत**

५. नगद नाणौ, बींद परणीजै काणो।

- हुआ सौ, भागा भौ। हुआ हजार, फिरो बजार।

—**राजस्थानी कहावतें**

६. पांचे मित्र, पच्चीसे पड़ोसी नें सोए सगो।

—गुजराती कहावत

७. भज कलदारं-भज कलदारं-भज कलदारं मूढ़मते !

—संस्कृत कहावत

८. रुपियँ कनें रुपियो आवैं।

—राजस्थानी कहावत

जाट के पास एक रुपया था, इधर टकसाल में रुपयों के ढेर लग रहे थे। इसने सुन रक्खा था कि रुपयों के पास रुपया आता है। जाट ने अपना रुपया उन्हें दिखाया। वह अकस्मात् हाथ से छूट कर टकसाल के रुपयों के पास चला गया। जाट देखता ही रह गया।

९. भरे ही को भरती है दुनियाँ मदाम।
समंदर को जाते हैं दरिया तमाम॥

—उर्दू शेर

१०. रुपियो हाथ रो मैल है।

—राजस्थानी कहावत

११. **खरी कमाई का रुपया**—मारवाड़ के एक राजपूत ने दिल्ली के बादशाह के यहाँ नौकरी की। बारह वर्ष बाद उसे एक रुपया मिला। उसने उससे चार अनारें खरीदीं और उन्हें बच्चों के लिए घर भेज दिया। वे चार लाख में बिकीं। एक वर्ष बाद स्वदेश जाते समय नौकरी माँगने पर उसे खजाने से एक रुपया मिला और वह रास्ते में ही खर्च हो गया। विस्मित राजपूत ने बादशाह से भेद पूछा। उत्तर मिला कि पहला रुपया पसीने की कमाई का था (मैंने बत्तीस दिन लोहा कूट कर कमाया था) और दूसरा रुपया प्रजा से छीनकर लिया हुआ था।

(ख) पैसा—

१. पैसा पाप का मूल हैं, फिर भी विनिमय का साधन है, आवश्यकता का पूरक है, बेइज्जती व अकस्मात् घात का नाशक है, मान-प्रतिष्ठा का दायक है, आश्रमादि—लोकोपकारी प्रवृत्तियों का संचालक है, महान् युद्धों का उपशामक है, भोग-विलास की इसके बिना अशक्यता है तथा हाथ का मैल होने पर भी करोड़ों हाथ इसके लिए दौड़ रहे हैं।

—पैसे के प्रशंसक

२. पैसा बना मनुज के कर से, आज वही भगवान हो गया।
क्रय करता मानव का पैसा, उस ही का सम्मान हो गया।
गई मनुजता दूर विश्व से, पशुता का साम्राज्य हो गया।
कहाँ गया वह रामराज्य, यह देखो रावणराज्य हो गया।

—हिन्दी कविता

३. "तुलसी" इस संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग लाखों यार॥

४. पैसा जग में प्राण, पैसो ही जग में प्रभु।
पैसो रो सम्मान, चिहुं दिशि होवै 'चकरिया'!

—सोरठा-संग्रह

5. Money my God, woman my guide.

मनी माई गॉड वुमन माई गाइड —अंग्रेजी कहावत

पैसा मेरा परमेश्वर और स्त्री मेरी अगुआ।

६. कठैई जावो पइसै री खीर है।

● ताँबै की मेख, तमासा देख॥ —राजस्थानी कहावतें

७. पैसे बिन तात कहे, पूत है कपूत मेरो,
पैसे बिन मात कहे मोहि दुखदायी है।
पैसे बिन काका कहे, कौन को भतीज तीज,
पैसे बिन सासू कहे कौन को जमाई है॥

पैसे बिन नारी घरवारी घुर्राट करे
पैसे बिन यार-दोस्त आँख ही छिपाई है।
कहे कवि "देवीदास", याही जग साची भाष,
कलियुग के वर्तमान पैसे की बड़ाई है ॥

८. जिसके पास नहीं है पैसा।
जग में उसका जीवन कैसा ? —हिन्दी पद्य

६. पैसादार नी बकरी मरी ते बधा गामे जाणी।
गरीबनी छोकरी मरी ते कोई ए न जाणी।

—गुजराती कहावत

१०. पैसे की कीमत भिखारी बनकर मांगने से जानी जाती है।

११. पैसा मां कोई पूरो नहीं, अक्कलमां कोई अधूरो नहिं।

—गुजराती कहावत

१२. किसी भी कार्य का ध्येय पैसा नहीं होता, लेकिन अज्ञानवश लोग मान बैठे हैं। ज्ञान से देखें तो सरकार का ध्येय प्रजा का रक्षण करना है, माता-पिता का ध्येय संतान-पालन है, न्यायाधीश का ध्येय न्याय करना है, वकील का ध्येय न्यायी को बचाना है, डाक्टर-वैद्य-हकीमों का ध्येय रोगियों को स्वस्थ बनाना है, शिक्षकों का ध्येय अशिक्षितों को शिक्षित बनाना है, लोकमान्यतिलक तथा महात्मागांधी जैसे महापुरुषों का ध्येय देश को सुखी और स्वतंत्र करना था, किन्तु पैसे से घर भरना नहीं।

—संकलित

१३. **न्याय-अन्याय का पैसा—**

अब्बु अब्बासा एक टोपी सींकर एक पैसा पैदा करता था। दूसरा मित्र अन्याय से धन कमाता था। एक दिन उसने अन्धे को एक मोहर दी, अन्धे ने शराब पीकर रंडीबाजी की। प्रथम ने मरा-पक्षी खानेवाले गरीब को एक पैसा दिया। उसने मांस खाना छोड़ा, चनों से निर्वाह किया, बुद्धि सुधरी। कारण न्याय का पैसा था।

(ग) चौदह रत्न—

१. एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंत चक्कवट्टिस्स चउदस्स रयणा पन्नत्ता, तं जहा—

इत्थीरयणे, सेणावइरयणे, गाहावइरयणे, पुरोहियरयणे, वड्ढइरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे, असिरयणे, दण्डरयणे, चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, मणिरयणे, कागिणिरयणे।

—समवायांग १४

जैन सिद्धान्तानुसार प्रत्येक चक्रवर्ती के पास चौदह रत्न होते हैं। उनके नाम—(१) स्त्रीरत्न (२) सेनापतिरत्न (३) गाथापतिरत्न (४ पुरोहित-रत्न (५) वर्द्धकिरत्न (६) अश्वरत्न (७) हस्तिरत्न (८) असिरत्न (९) दण्डरत्न (१०) चक्ररत्न (११) छत्ररत्न (१२) चर्मरत्न (१३) मणि-रत्न (१४) काकिणीरत्न।

उपरोक्त चौदह रत्न अपनी-अपनी जाति में सर्वोत्कृष्ट होते हैं। इसी-लिए ये रत्न कहलाते हैं। इन चौदह रत्नों में से पहले के सात रत्न पञ्चेन्द्रिय हैं। शेष सात रत्न एकेन्द्रिय पृथ्वीकायमय हैं।

२. लक्ष्मीः कौस्तुभ-पारिजातक-सुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा,
गावः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनः शङ्खो विषं चाम्बुधे,
रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्युः सदा मङ्गलम्॥

(१) लक्ष्मी (२) कौस्तुभमणि (३) कल्पवृक्ष (४) मदिरा (५) धन्वन्तरि वैद्य (६) चन्द्रमा (७) कामधेनु गाय (८) ऐरावतहाथी (९) रम्भाआदि अप्सराएँ (१०) सात मुंहवाला उच्चैश्रवा घोड़ा (११) अमृत (१२) विष्णु-धनुष (१३) शंख (१४) विष—ये चौदह रत्न सदा मंगल करें। (भागवतादि पुराणों के अनुसार जब देवों और दानवों ने मिलकर समुद्र-मंथन किया था तब उसमें से उपरोक्त १४ रत्न निकले थे।)

(घ) विभिन्न देशों की मुद्राएँ :—

देश	मुद्रा
१. अर्जेन्टाइना	पेसो
२. आस्ट्रेलिया	पौंड
३. अल्जीरिया	फ्रांक
४. आस्ट्रिया	शिलिंग
५. बेल्जियम	फ्रांक
६. ब्रिटेन	पौंड (स्टर्लिंग)
७. बर्मा	कियाट
८. बल्गेरिया	लेवा
९. सीलोन	रुपया
१०. कनाडा	डालर
११. कोलम्बिया	पेसो
१२. कोस्टारिका	कोलोन
१३. क्यूबा	पेसो
१४. मलयेशिया	डालर
१५. चिली	पेसो
१६. कम्युनिस्ट चीन	यूआन
१७. चेकोस्लोवाकिया	क्राउन
१८. डेन्मार्क	क्रोनर
१९. डोमीनिकन	
२०. एलसालवेडर	कोलोन
२१. रिपब्लिक	पेसो
२२. फिनलैण्ड	मारक्का
२३. इथोपिया	डालर
२४. जमनी	मार्क
२५. फ्रांस	न्यूफ्रांक
२६. ग्वातेमाला	क्वेतजल
२७. ग्रीस	ड्राशम
२८. घाना	पौंड
२९. हैती	कुरडे
३०. हांगकांग	हांगकांग
३१. होंडूरास	लेम्पीरा
३२. भारत	रुपया
३३. आइसलैंड	क्रोना
३४. ईरान	रियल
३५. इराक	दीनार
३६. हिन्देशिया	रुपया
३७. इटली	लीरा
३८. जापान	येन
३९. आयरिश रिपब्लिक	पौंड
४०. कोरिया	ह्वान
४१. जोर्डन	दीनार
४२. सूडान	पौंड
४३. सिएरालिओन	फ्रीटाउन
४४. लेबनान	पौंड
४५. लक्सेमबर्ग	फ्रांक
४६. मेक्सिको	पेसो
४७. लीबिया	पौंड
४८. नीदरलैण्ड	गिल्डर
४९. मोरक्को	डरहम
५०. नार्वे	क्रोन

देश	मुद्रा	देश	मुद्रा
५१. न्यूजीलैण्ड	पौंड	६४. स्वीडन	क्रोनर
५२. पाकिस्तान	रुपया	६५. सीरिया	पौंड
५३. नीकारगुआ	कोरडोवा	६६. तुर्की	लीरा
५४. पेरु	सोल	६७. स्विट्जरलैंड	फ्राक
५५. पनामा	बालबोआ	६८. मिस्र	पौंड
५६. पोलैण्ड	ज्लेरी	६९. थाईलैण्ड	बहूर
५७. फिलीपंन	पेसो	७०. यूरुग्वे	पेरो
५८. रुमानिया	लेव	७१. अमेरिका	डालर
५९. पुर्तगाल	एसँडो	७२. युगोस्लाविया	दीनार
६०. सऊदी अरब	रियाल	७३. सोवियत संघ	रूबल
६१. स्पेन	पेसेटा	७४. नेपाल	रुपया
६२. सूडान	पौंड	७५. वेनेजुएला	बोलिवर
६३. दक्षिणी अफ्रीका	रैंड		

८ धन की निन्दनीयता

१. अविश्वासनिधानाय, महापातकहेतवे,
पिता-पुत्र विरोधाय, हिरण्याय नमोऽस्तुते।

हे धन ! तू अविश्वास का निधान है, महापाप का हेतु है और पिता-पुत्र को लड़ानेवाला है अतः तुझे दूर से ही नमस्कार है।

२. अर्थानामर्जने दुःख-मर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः॥

—पञ्चतन्त्र १।७४

धन का संग्रह करने में दुःख है और संग्रहीतधन की रक्षा करने में भी दुःख है। धन की आय में दुःख है एवं उसके व्यय में भी दुःख है। अतः दुःख के संश्रयरूप धन को धिक्कार है।

३. अर्थस्य साधने सिद्धे, उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयास-स्त्रासश्चिन्ता भयं नृणाम्॥

—भागवत ११।२३।१७

धन कमाने में, कमाकर उसे बढ़ाने में, रखने में, खर्च करने में, उसके नाश में या उपभोग में, जहाँ भी देखो, वहाँ परिश्रम है, त्रास है, चिन्ता है और भय है।

४. माया नैं भय है, काया नैं भय कोनी।

—राजस्थानी कहावत

५. दौलत की दो लात है, "तुलसी" निश्चय कीन्ह।
आवत अन्धा करत है, जावत करे अधीन॥

६. कोर्थान् प्राप्य न गर्वितः ?

—पञ्चतंत्र

धन पाकर कौन गर्वित नहीं हुआ ?

७. स्तेयं हिंसानृतं दम्भः, कामः क्रोधः स्मयो मदः,
भेदो वैरमविश्वासः, संस्पर्द्धा व्यसनानि च।
एते पञ्चदशानर्था, ह्यर्थमूला मता नृणाम्,
तस्मादनर्थमर्थाख्यं, श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

—श्रीमद्भागवत ११।२३।१८-१९

१. चोरी, २. हिंसा, ३. झूठ, ४. दम्भ, ५. काम; ६. क्रोध, ७. चित्तोन्नति, ८. अहंकार, ९. भेदबुद्धि, १०. वैर, ११. अविश्वास, १२. संस्पर्द्धा, १३. व्यसन अर्थात् व्यभिचार, १४. जूआ, १५. शराब—ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के कारण से ही माने गये हैं। अतः कल्याणकामी पुरुष को अर्थ-नामधारी इस अनर्थ का दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए।

८. धन से नर्म बिछौना मिल सकता है, नींद नहीं; मन्दिर-मस्जिद बन सकते हैं, भगवान नहीं; भौतिकसुख मिल सकते हैं, आत्मिकसुख नहीं; प्रशंसक मिल सकते हैं, हितचिन्तक नहीं; दिखावे का मान मिल सकता है, हार्दिक सम्मान नहीं; पुस्तक खरीद सकते हैं. विद्या नहीं; नौकर रखा जा सकता है, सच्चा सेवक नहीं।

—महेन्द्रकुमार वशिष्ठ

९. धन के लिए लाखों-करोड़ों व्यक्ति मुर्दे-से होकर घूम रहे हैं, मशीनों की तरह दिन-रात खाट रहे हैं, जेलों में (चोर-डाकू आदि) सड़ रहे हैं, सधवा, विधवा, कुमारी स्त्रियाँ वेश्यायें बन रही हैं, तीर्थों में पंडे-पुजारी लोग लोगों को ठग रहे हैं, भाई-भाई लड़-झगड़ रहे हैं तथा सरकार प्रजा को लूट रही है और प्रजा सरकार को धोखा दे रही है।

—संकलित

१०. दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो,
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग् भस्मीकरोति क्षणात्।
अम्भः प्लावयति क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठाद्,
दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग् बह्वधीनं धनम्॥

—सिन्दूरप्रकरण ७४

ज्ञातिजन स्पृहा करते हैं, चोर चुरा लेते हैं, छल द्वारा राजा ले लेते हैं, अग्नि भस्म कर डालती है, पानी बहा देता है, जमीन में छिपा कर रखे हुए को यक्ष हर लेते हैं तथा दुराचारी पुत्र इसको नष्ट कर देते हैं। अतः धिक्कार है बहुतों के अधीन रहनेवाले इस धन को!

११. एक सौतेली माँ ने अपने सौतेले पुत्र को विष देकर इसलिए मार डाला कि यह बड़ा होने पर मेरे पुत्रों के हक में हिस्सा लेगा।

—उत्तरप्रदेश की घटना

१२. ईरान के एक जमींदार को खेत में दो सिक्के मिले। वह उन्हें लेकर बाजार में आया। पुलिस-अधिकारी के पूछने पर उसने स्थान बताया। रात को साथियों सहित पुलिस-अधिकारी ने वह स्थान खोदा। नीचे एक मकान निकला। अँधेरे में उतरे। सोने की रेत से घड़े भरे थे। ६५ करोड़ का धन था। बात फूटी! सारे के सारे गिरफ्तार एवं धन जब्त!

—अध्ययन के आधार पर

९

अन्याय का धन

१. पिपीलिकार्जितं धान्यं, मक्षिकासंचितं मधु।
अन्यायोपार्जितं द्रव्यं, चिरकालं न तिष्ठति॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६१

चींटियों का इकट्ठा किया हुआ धान्य, मक्खियों का संचित मधु और अन्याय से उपार्जित धन—ये तीनों चीजें अधिक समय तक नहीं ठहरतीं।

२. अन्यायोपार्जितं द्रव्यं, दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशेवर्षे, समूलं च विनश्यति॥

—चाणक्यनीति १५।६

अन्याय से पैदा किया हुआ धन दश वर्ष रहता है। ग्यारहवें वर्ष समूल नष्ट हो जाता है।

३. दुर्जनस्यार्जितं वित्तं, भुज्यते राजतस्करैः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

दुर्जनों का संचित धन प्रायः राज्य-कर्मचारी ही खाया करते हैं।

४. कीड़ी सचै, तीतर खाय (आंधी पीसै, कुत्ता खाय)।
पापी रो धन पर लै जाय।

—राजस्थानी कहावत

५. दूध ना दूध मां जाय नें पाणी ना पाणी मां जाय।
● चोर नें पोटले धूल नीं धूल।

—गुजराती कहावतें

६. चोरी रो धन मोरी में।

—राजस्थानी कहावत

न्यायार्जित धन

१. शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते, सतामपि न सम्पदः।
न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णा, कदाचिदपि सिन्धवः॥

—**आत्मानुशासन ४५**

सज्जनों के भी शुद्ध धन से सम्पदाएँ नहीं बढ़तीं। जैसे–स्वच्छजलों से नदियाँ कभी पूर्ण नहीं होतीं।

२. रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः, पापीस्ता अनीनशन्।

—**अथर्ववेद ७।११५।४**

पुण्यकारिणी लक्ष्मी मेरे घर की शोभा बढ़ाए तथा पापकारिणी लक्ष्मी नष्ट हो जाए।

३. न्यायागतस्य द्रव्यस्य, बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च, पात्रे चाप्रतिपादनम्॥

—**विदुरनीति १।६४**

न्याय से अर्जित धन के व्ययसम्बन्धी दो अतिक्रम हैं अर्थात् दुरुपयोग हैं—अपात्र को देना और पात्र को न देना।

११ वास्तविक धन

१. यत्कर्मकरणेनान्तः संतोषं लभते नरः।
वस्तुतस्तद्धनं मन्ये, न धनं धनमुच्यते ॥

—रश्मिमाला २६।१

जिस काम के करने से मनुष्य की अन्तरात्मा को सन्तोष होता है, मैं वास्तव में उसीको धन मानता हूं, लौकिक वस्तु को धन नहीं कहा जाता।

२. पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषुः रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

—चाणक्यनीति १४।१

पृथ्वी में तीन रत्न हैं—जल, अन्न और सुभाषित। मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों—हीरा-पन्ना-माणिक आदि को रत्न के नाम से व्यर्थ ही पुकार रहे हैं।

१२ लक्ष्मी

१. न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, वह जैसे चाहती है, नचाती है।

—प्रेमचन्द

२. जीवन में बुद्धि का नहीं, लक्ष्मी का साम्राज्य है।

—सिसेरो

३. मातुर्लक्ष्मि ! तव प्रशादवशतो दोषा अपि स्युर्गुणा:।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

हे लक्ष्मी माता ! तेरी कृपा से दोष भी गुण बन जाते हैं।

४. सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्।

सच्ची लक्ष्मी वही है, जिससे परोपकार किया जा सके।

५. किं तया क्रियते लक्ष्म्या, या वधूरिव केवला।
या न वेश्येव सामान्यै:, पथिकैरुपभुज्यते।

—पञ्चतन्त्र ४।३७

जो कुलवधूवत् केवल पति के ही उपभोग में आए और वेश्यावत् सामान्य पथिकों के उपभोग में न आए, उस लक्ष्मी से क्या लाभ ?

६. लक्ष्मी अकनकुंवारियाँ, नर हुआ जोध-जवान।
मेरी-मेरी कर मुआ, हिन्दू-मुसलमान ।।

१३ लक्ष्मी का मूल आदि

१. अनुद्वेगः श्रियो मूलम् ।

—योगवाशिष्ठ-३।२२।२२

उद्विग्न न होना समृद्धि का मूल है ।

२. जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ।

—सुभाषितरत्नखंडमंजूषा

लोकप्रियता से ही सम्पदाएँ मिलती हैं ।

३. लक्ष्मी उन्हीं की सहायता करती है, जिनका निर्णय विवेकशील होता है ।

—यूरोपीडीज

४. श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति, प्रागल्भ्यात् संप्रवर्धते ।
दाक्षिण्यात् कुरुते मूलं, संयमात् प्रतितिष्ठति ।

—विदुरनीति-३।५१

लक्ष्मी शुभकर्मों से उत्पन्न होती है, चतुरता से बढ़ती है, निपुणता से जड़ जमाती है और संयम से स्थिर होती है ।

५. धृतिःक्षमा दया शौचं, कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणामनभिद्रोहः, सप्तैताः समिधः श्रियः ।

—विदुरनीति-६।३८

धृति, क्षमा, दया, पवित्रता, करुणा, अकठोरता एवं मित्रों के साथ अद्रोहभाव—ये सात गुण लक्ष्मी की समिधाएँ अर्थात् शोभा बढ़ानेवाले हैं ।

६. सत्यैकभूषणा वाणी, विद्या विरतिभूषणा ।
धर्मैकभूषणा मूर्त्ति-र्लक्ष्मीः सद्दानभूषणा ।

—चंदचरित्र, पृष्ठ ७१

वाणी का भूषण सत्य है, विद्या का भूषण विरति है, शरीर का भूषण धर्म है और लक्ष्मी का भूषण दान है ।

१४ लक्ष्मी की नश्वरता एवं अस्थिरता

१. संपदः स्वप्नसंकाशाः, संपदो जलदोपमाः।
सम्पदाएँ स्वप्न के समान हैं एवं मेघवत् क्षणभंगुर हैं।

2. Riches have wings.
रिचेज हैव विंग्स।

—अंग्रेजी कहावत

धन के पंख होते हैं।

३. कमला थिर न 'रहीम'! कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय?

४. ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राऽन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः।

—ऋग्वेद १०।११७।५

रथ के पहिये की तरह धन भी इधर-उधर (अनेक लोगों के पास) घूमता ही रहता है।

५. सम्पदा बुरे सेवकों के समान नये-नये स्वामी करती ही रहती है।

—बर्क

६. **कोहिनूर हीरे का पर्यटन**—कोहिनूर हीरा गोलकुंडा की खान से निकला था। महाभारत के समय भागलपुर-पति कामसेन के पास था। फिर क्रमशः हस्तिनापुरपति, उज्जैनपति, अलाउद्दीन खिलजी, हुमायूँ, ईरानपति, शाहजहाँ, औरंगजेब, नादिरशाह एवं लाहोरपति रणजीत सिंह के पास रहा। वहाँ से महारानी विक्टोरिया के पास पहुंचा। इसका वजन ३१६॥ रत्ती, लम्बाई डेढ़ इञ्च और कीमत सैंतालीस

लाख, बानवे हजार, दो सौ पैंतालीस पौंड आंकी गई थी। नादिरशाह ने इसे "कोहेनूर" नाम से पुकारा था।

७. अभ्रच्छाया खलप्रीतिः, सिद्धमन्नं च योषितः।
किंचित्कालोपभोग्यानि, यौवनानि धनानि च ॥

— पंचतन्त्र-२।१२०

बादल की छाया, दुष्टों की प्रीति, पका हुआ अन्न, स्त्री, यौवन और धन—ये छः चीजें किंचित्काल तक ही उपयोग में आने योग्य हैं—अस्थिर हैं।

८. ऐश्वर्यं च विनाशान्तम्।

—शुभचन्द्राचार्य

ऐश्वर्य निश्चय ही अन्त में नष्ट होनेवाला है।

९. जलबुद्बुद्समाना विराजमाना संपत् तडिल्लतेव सहसैवोदेति नश्यति च।

—दशकुमारचरित

सम्पत्ति जल के बुलबुले के समान होती है। वह विद्युत की भाँति एकाएक उदय होती है और नष्ट हो जाती है।

१५ लक्ष्मी का निवास

१. लक्ष्मीरनुसरति नयगुणसमृद्धिम्।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

लक्ष्मी न्याय-गुण से समृद्ध व्यक्ति का अनुसरण करती है।

२. परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति।

—चाणक्यसूत्र ११३

विचार कर काम करनेवाले के पास लक्ष्मी चिरस्थायी होती है।

३. यत्र नीति-बले चोभे, तत्र श्रीः सर्वतोमुखी।

—शुक्रनीति

जहाँ नीति और बल दोनों का सम्मिलन है, वहाँ लक्ष्मी सर्वतोमुखी होकर विहार करती है।

४. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ न्याय और शौर्य होते हैं, वहीं सम्पदाएँ निवास करती हैं।

५. गुरवो यत्र पूज्यन्ते, यत्र वाणी सुसंस्कृता।
अदन्तकलहो यत्र, तत्र, शक्र! वसाम्यहम्॥

जहाँ गुरुजनों की पूजा है, अच्छे संस्कारोंवाली वाणी है और दन्तकलह नहीं है, हे इन्द्र! मैं (लक्ष्मी) वहाँ निवास करती हूँ।

६. वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र संपदः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ सच्चे वक्ता-श्रोता हों, वहाँ सम्पदाएँ रमण करती हैं।

१६ लक्ष्मी के अप्रियस्थान

१. इह हि न निरीहदेहिनं श्रियः संश्रयन्ते।

—दशकुमारचरित

इस संसार में जो प्रयत्न नहीं करता, उसे लक्ष्मी नहीं मिलती।

२. अर्थतोषिणं श्रियः परित्यजति।

—कौटलीय-अर्थशास्त्र

धन के सन्तोषी व्यक्ति को लक्ष्मी छोड़ जाया करती है।

३. अतिदाक्षिण्ययुक्तानां, शङ्कितानां पदे-पदे।
परापवादभीरूणां, दूरतो यान्ति सम्पदः॥

—भोजप्रबन्ध २०

जो आदमी अति सयाने होते हैं, कदम-कदम पर शंकाशील होते हैं और लोकापवाद से डरनेवाले होते हैं, उनसे सम्पदाएँ दूर ही रहती हैं।

४. अभ्यागतो यत्र न तत्र लक्ष्मीः।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ अभ्यागत है, वहाँ प्रायः लक्ष्मी नहीं।

५. कुचेलिनं दन्तमलोपधारिणं, बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं, विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

—चाणक्यनीति १५।४

गन्दे वस्त्र रखनेवाला, दाँतों पर मैल धारण करनेवाला, अधिक खानेवाला, कठोरवाणी बोलनेवाला सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय सोनेवाला यदि चक्रपाणि-विष्णु हो तो भी लक्ष्मी उसका परित्याग कर देती है।

६. पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषाद्,
आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजा-—निमित्तं,
तस्मात्खिन्ना सदैव द्विजकुलनिलयं नाथ ! नित्यं त्यजामि ॥

—चाणक्यनीति १५।१६

लक्ष्मीदेवी कहती हैं—अगस्त्य ऋषि ने रुष्ट होकर मेरे पिता (समुद्र) को पी डाला, भृगु ऋषि ने क्रोध के मारे मेरे पति (विष्णु) को लात मारी तथा बाल्यवय से ही ब्राह्मण मेरी वैरिणी (सरस्वती) को अपने मुख में धारण करते हैं और उमापति (शिव) की पूजा करने के लिए मेरे गृह (कमल) को प्रतिदिन तोड़ते रहते हैं—इन्हीं कारणों से खिन्न होकर मैं ब्राह्मण-कुल से सदैव दूर रहा करती हूँ।

१७ लक्ष्मी के विकार

१. ऋद्धिश्चित्तविकारिणी।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

ऋद्धि चित्त को विकृत करनेवाली है।

२. जहाँ सम्पत्ति और वैभव होता है, वहाँ अभिमान भी आता है और चिन्ता भी।

—ताओ-उपनिषद् ३९

३. यत्रास्ति लक्ष्मीर्विनयो न तत्र।

—सुभाषितरत्नखण्डमंजूषा

जहाँ लक्ष्मी होती है, वहाँ विनय नहीं रहता।

४. वधिरयति कर्णविवरं, वाचं मूकयति नयनमन्धयति।
विकृतयति गात्रयष्टिं, संपद्रोगोयमद्भुतो राजन्!

—सुभाषितरत्नभाण्डागार पृष्ठ ६७

हे राजन्! यह सम्पदारूपी अद्भुत रोग कानों को बधिर (बहरा), वाणी को मूक (चुप), नेत्र को अन्ध एवं शरीर को विकृत बना डालता हैं।

५. लक्ष्मि! क्षमस्व वचनीयमिदं मदीय—
मन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन।
नो चेत् कथं कमलपत्रविशालनेत्रो,
नारायणः स्वपिति पन्नगभोगतल्पे।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६५

लक्ष्मी! मैं कटुवक्तव्य के लिए तेरे से क्षमा माँगता हुआ कहता हूँ कि

तेरी उपासना से पुरुष अन्धे हो जाते हैं। अन्यथा कमलपत्रवत् **विशालनेत्रवाले** नारायण शेषनाग की शय्या पर क्यों सोते ?

६. लक्ष्मी का **वाहन** उल्लू और सरस्वती का बाहन हंस अर्थात्—धन होने से व्यक्ति अन्धा एवं ज्ञान होने से विवेकशील बनता है।

—विवेकानन्द

७. पद्मे ! मूढ़जने ददासि द्रविणं विद्वत्सु किं मत्सरो ?
नाहं मत्सरिणी न चापि चपला नैवास्मि मूर्खे रता।
मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रूयतां,
विद्वान् सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्यागतिः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६६

किसी ने लक्ष्मी से पूछा कि तू मूर्खों को ही प्रायः धन देती है। क्या विद्वानों के साथ तेरा कुछ मत्सर-भाव है ? लक्ष्मी ने कहा—मैं मत्सरिणी, चंचल और मूर्खों में अनुरक्त नहीं हूं, किन्तु जो मूर्खों को धन देती हूं, उसका कारण यह है कि विद्वान् तो विद्या के कारण सब लोगों का पूज्य है ही, किन्तु मूर्ख की मेरे बिना कोई गति ही नहीं होती।

८. अकाण्डपातोपनता, न कं लक्ष्मीर्विमोहयेत् ?

—कथासरित्सागर

अचानक मिली हुई लक्ष्मी किसको विमोहित नहीं करती ?

९, दीनों की लक्ष्मी से प्रार्थना—

निद्राति स्नाति भुङ्क्ते चलति कचभरान् शोषयत्यन्तरास्ते,
दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरः प्रातरायाहि ! याहि !
इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिकृतैर्वारितान् द्वारि दीना—
नस्मान् पश्याब्धिकन्ये ! सरसिरुहरुचा ह्यन्तरङ्गैरपाङ्गैः॥

महाराज अभी सो रहे हैं, नहा रहे हैं, भोजन कर रहे हैं, टहल रहे हैं, केशों को सुखा रहे हैं, आराम कर रहे हैं; अभी उनसे बात नहीं होगी—जाओ ! सबेरे आना। हे कमलनेत्रे लक्ष्मी ! इस प्रकार धनाधीशों के

अधिकारी द्वारों पर हम दोनों को रोकते ही रहते हैं, अतः तू हमें कृपा-कटाक्ष से देख !

१०. इन्दासणी न तं कुज्जा, दित्तो वण्ही अणं अरी ।
आसादिज्जंतसंबंधो जं कुज्जा ऋद्धिगारवो ॥

—ऋषिभाषित ४५।४३

इन्द्र का वज्र, प्रज्वलित अग्नि, ऋण और शत्रु—ये इतनी हानि नहीं पहुँचा सकते, जितनी हानि मन से आस्वादित ऋद्धि का गर्व पहुँचाता है ।

११. **तीन प्रकार का नशा होता है—**

१. **लक्ष्मी का नशा**—संग्रह से चढ़ता है ।

२. **मदिरा का नशा**—पीने से चढ़ता है ।

३. **स्त्री का नशा**—देखने से चढ़ता है ।

धनवान्

१. वयोवृद्धास्तपोवृद्धा, ये च बृद्धा बहुश्रुताः ।
ते सर्वे धनवृद्धानां द्वारे तिष्ठन्ति किंकराः ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और ज्ञान में वृद्ध—ये सभी धनवृद्धों के द्वार पर किंकर होकर खड़े रहते हैं।

२. न विद्यया नैव कुलेन गौरवं, जनानुरागो धनिकेषु सर्वदा ।
कपालिना मौलिधृतापि जाह्नवी, प्रयाति रत्नाकरमेव सत्वरम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

संसार में न विद्या का गौरव है और न कुल का गौरव है। लोगों का प्रेम हमेशा धनिकों में रहता है। देखो ! महादेवजी द्वारा मस्तक पर धारण कर लेने पर भी गंगानदी शीघ्रता से समुद्र में ही जाती है, क्योंकि वह रत्नों का भण्डार है।

३. श्रीमतो ह्यरण्यान्यपि भवति राजधानी ।
—नीतिवाक्यामृत ३२।३६

श्रीमंतों के भयंकर अटवी भी राजधानी बन जाती है।

४. लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति, प्रायेण परवेदनाम् ।
शेषे धराभरक्लान्ते, शेते नारायणः सुखम् ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

लक्ष्मी वाले लोग प्रायः परपीड़ा को नहीं जाना करते। देखो ! पृथ्वी के भार से क्लान्त शेषनाग पर भी नारायण सुख से सोये रहते हैं।

५. ईश्वराणां हि विनोदरसिकं मनः ।

—किरातार्जुनीय

धनिकों का मन विनोदरसिक होता है ।

६. कोई भला आदमी अचानक धनी नहीं बन गया। जो धनी बनने की शीघ्रता में है, कभी निर्दोष नहीं रह सकता ।

—बाइबिल

७. लूट-लूट इस जगत को, बनते धनी कुबेर ।
बिना पड़े खड्डा कहीं, नहिं लग सकता ढेर ॥

—दोहासंदोह

८. मशीन की सहायता से एक मजदूर, आदमी से ३०० गुणा अधिक काम कर लेता है। यदि एक मिल में दो हजार मजदूर काम करते हों, तो छः लाख मनुष्यों जितना काम होता है। सबका अधिकांश लाभ मिल-मालिक लेजाते हैं एवं एशोआराम में बरबाद करते हैं ।

—'उज्ज्वलवाणी से'

९. धनी बनना चाहनेवाले को मितव्ययी होना जरूरी है। मैंचेस्टर के धनी '**बेकरब्रुक**' एक पौंड पैदा करके एक शिलिंग (२१वाँ हिस्सा) खर्च करते थे ।

१०. भाग्यवान वह, जिसका धन गुलाम है ।
अभागा वह, जो धन का गुलाम है ।

—वाल्टेयर

१९ दुनिया के बड़े धनी

१. **शाहजहाँ** के पास ७०० मन 'सोना', १४०० मन 'चाँदी', ८० रत्तल 'हीरे', १०० रत्तल 'माणिक' और ६०० रत्तल 'मोती' थे। एक करोड़ के 'कपड़े' एवं पच्चीस लाख से अधिक के 'मिट्टी के बर्तन' थे। उसके पास ७ फुट लम्बा और ५ फुट चौड़ा एक 'रत्न-जड़ित (नहाने का) टब' था, जिसकी कीमत आज की मूल्य-गणना में दस अरब रुपये होती है।

—अध्ययन के आधार पर

२. **टेक्सास** (सं. रा. अमेरिका) के '**हेरोल्डसन लफायतेहंट**' की सम्पत्ति **बीस अरब डालर** है। उसकी दैनिक आय **दो लाख चालीस हजार डालर** है।

● हैदराबाद (दक्षिण) के **निजाम** की सम्पत्ति **एक अरब डालर** है।

● **आगाखाँ एक अरब सत्तर करोड़** के स्वामी हैं।

● **हेनरी फोर्ड अड़तालीस करोड़ पौंड** के मालिक हैं। वार्षिक आय **दो करोड़ चालीस लाख पौंड** है।

इसी प्रकार **राकफेलर** एवं **ब्रिटिश-नरेश** आदि भी विश्व के बड़े धनिकों में गिने जाते हैं।

—लगभग २२ वर्ष पूर्व के समाचारपत्रों से संकलित

३. भारत के बड़े-बड़े उद्योगगृहों की कुल पूंजी—

(करोड़ रुपयों में)

नाम	पूंजी सन् १९६६-६७	पूंजी सन् १९६९-७०
१. टाटा	५०५·३६	६२८·५०
२. बिरला	४५७·८४	६२९·६०
३. मार्टिन बर्न	१५३·००	१७६·००
४. बांगड़	१०४·३१	१३९·९०
५. थापर	९८·८०	११५·७०
६. सूरजमल नागरमल	९५·६२	१०३·९०
७. मफतलाल	९२·७०	१५६·७०
८. ए. सी. सी.	८९·८०	१२०·७०
९. वालचन्द	८१·११	१००·७०
१०. श्रीराम	७४·१३	१०७·९०

—**नवभारतटाइम्स**, २७ **अगस्त १९७२**

४. **तीन प्रकार के इभ सेठ**—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ—

अम्बाबाड़ी सहित हाथी डूबे—इतना रत्न-पुञ्ज जिसके पास हो, वह **उत्तम,** इतना सोना जिसके पास हो वह **मध्यम** और इतनी चांदी जिसके पास हो वह **कनिष्ठ** ।

—**प्राचीन-संग्रह के आधार पर**

धनिकों की स्थिति

१. भक्ते द्वेषो जड़े प्रीतिः, प्रवृत्तिर्गुरुलङ्घने।
मुखे कटुकता नित्यं, धनिनां ज्वरिणामिव ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६७

भक्त के प्रति द्वेष, जड़ में प्रेम, गुरु-लंघन की प्रवृत्ति और मुख में कटुता, ज्वर-ग्रस्त पुरुषों की तरह धनिकों में भी ये चीजें प्रायः होती ही हैं। यहाँ सभी शब्दों के दो-दो अर्थ हैं। जैसे—**भक्त**—भक्ति करने-वाला और भोजन; **जड़**—मूर्ख और जल; **गुरुलंघन**—बड़ों का अपमान और गरिष्ठभोजन का लंघन; **मुखेकटुता**—मुख में कटुवाणी और कड़वापन।

२. प्रायेण श्रीमतां लोके, भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि, दरिद्राणां महीपते ॥

—विदुरनीति-२।५१

हे राजन्! धनिकों में प्रायः खाने की शक्ति नहीं होती। गरीबों को काष्ठखण्ड भी हजम हो जाते हैं।

३. यथामिषं जले मत्स्यै-र्भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि।
आकाशे पक्षिभिश्चैव तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥

—पञ्चतन्त्र, १।४३४

जैसे—मांस को जल में मत्स्य, पृथ्वी पर हिंसक पशु और आकाश में पक्षी भक्षण करते है, उसी प्रकार धनिकों को सभी लोग चूसते हैं।

४. ईसा का कहना है कि सूई के छेद में से ऊँट का निकलना सहज है, पर पैसेवालों को स्वर्ग मिलना कठिन है।

—लूका २८।२५, ईसाई धर्मग्रन्थ

२१ निर्धन और निर्धनता

१. अन्तरं नैव पश्यामि, निर्धनस्य मृतस्य च ।

निर्धन में और मृतक में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।

२. वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयं पक्वफलाम्बुसेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीन-जीवनम् ॥

—चाणक्यनीति-१०।१२

व्याघ्रादि युक्त वन में निवास, वृक्ष का घर, फल और पानी का भोजन तृणों पर शयन तथा जीर्ण-वल्कल का परिधान—ये सभी काम अच्छे हैं, किन्तु बन्धुओं में धनहीन होकर जीना अच्छा नहीं।

३. नयेन नेता विनयेन शिष्यः, शीलेन लिङ्गी प्रशमेन साधुः ।
जीवेन देहः सुकृतेन देही, वित्तेन गेही रहितो न किंचित् ॥

नयहीन नेता, विनयहीन शिष्य, आचारहीन लिङ्गी-वेषधारी, प्रशमहीन साधु, जीवनहीन शरीर तथा धर्महीन जीव की तरह धनहीन गृहस्थ भी कुछ नहीं अर्थात् निकम्मा है।

४. गगनमिव नष्टतारं, शुष्कसरः श्मशानमिव रौद्रम् ।
प्रियदर्शनमपि रूक्षं, भवति गृहं धनविहीनस्य ॥

—पञ्चतन्त्र ५।६

ताराविहीन आकाश एवं सूखे तालाब की तरह निर्धन मनुष्य का घर दीखने में अच्छा होने पर भी श्मशानवत् डरावना तथा रूखा सा प्रतीत होता है।

५. टकाधर्म टकाकर्म, टका ही परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति, हा टका ! टक-टकायते ॥

६. तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म,
सा बुद्धिरप्रहिता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव,
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक ४०

वे ही सब इन्द्रियाँ हैं, वही कर्म है, वही अप्रतिहत-बुद्धि है और वही वाणी है। आश्चर्य है, फिर भी धन की उष्मा से रहित वही आदमी क्षणभर में दूसरा-सा प्रतीत होने लगता है।

७. कौड़ी के सब जहान में, नक्शे-नगीन हैं,
कौड़ी न हो तो कौड़ी के, सब तीन-तीन हैं।

—उर्दू शेर

८. गतवयसामपि पुंसां, येषामर्थो भवन्ति ते तरुणाः।
अर्थे न तु ये हीना, वृद्धास्ते यौवनेऽपि स्युः ॥

—पंचतन्त्र १।१०

जिनके पास धन है, वे बुढ़ापे में भी जवान बने रहते है और जिनके पास धन नहीं है वे जवानी में भी बूढ़े से प्रतीत होने लगते हैं।

९. सम्पदा अनेक मित्र बना लेती है लेकिन निर्धन अपने पड़ोसी से भी वियुक्त हो जाता है।

—बाइबिल

१०. **निर्धनता—**

(क) निर्धनता कोई पाप नहीं है। **—हावर्ट**

(ख) धन दुर्गुणों पर पर्दा डाल देता है, परन्तु सद्गुण निर्धनता में आश्रय पाते हैं।

—थियोग्निस

(ग) हमारी वास्तविक निर्धनता यह है कि हम दूसरों को सुधारने का अधिक से अधिक प्रयत्न करते हैं और खुद को सुधारने का अल्प से अल्प।

—धूमकेतु

२२ गरीब और गरीबी

१. **मोहन** ! पास गरीब के, को आवत को जात ?
एक विचारो सांस हैं आत-जात-दिन-रात ॥

२. गरीब रो बेली परमेश्वर ।

—राजस्थानी कहावत

३. माया से माया मिलै, कर-कर लंबा हाथ ।
तुलसीदास गरीब की कोई न पूछे बात ॥

४. **दो कांटे शरीर को सुखा देते हैं**—गरीब की इच्छा और कमजोर का गुस्सा ।

५. गरीब वह नहीं, जिसके पास कम है, बल्कि वह है, जो अधिक चाहता है ।

—डेनियल

६. गरीब गमार मां खपे नें मोटानी शर्म पड़े ।

- मोटा कहे मोवाला नीं भाजी, श्रोता कहे सौ हांजी-हांजी ।
- गरीब बोले ते टपला पड़े अनें मोटा बोले त्यारे तालिओ पड़े ।
- सारा ने सागमटे (सपरिवार) नोंतरा नें गरीब ने कोई गणें नहिं ।

—गुजराती कहावतें

७. गरीब री लुगाई गाँवरी भोजाई ।

- सोहरै ऊंट माथै सहु कोई बैठे ।

—राजस्थानी कहावतें

८. गरीब को मत सताओ—

(क) मत सता गरीब को, गरीब रो देगा।
मालिक ने उसको सुन लिया, तो जड़ से खोदेगा।

—उर्दू शेर

(ख) तुलसी हाय गरीब की कबहुं न खाली जाय॥
मुए खाल की सांस सों, लोह भस्म हो जाय॥

(ग) गरीब नु खाय तेनु सत्यानाश जाय।

● गरीब ना पैसा ते लोही नां घूंटड़ा।

—गुजराती कहावतें

९. गरीबी—

(क) Poverty is the mother of health.

पावरटी इज दी मदर ऑफ हेल्थ।

—अंग्रेजी कहावत

गरीबी तन्दुरुस्ती की मां है।

(ख) गरीबी की शर्म उतनी ही बुरी है, जितना धन का अहंकार।

(ग) अमीरों की अमीरी जितनी बढ़ेगी, गरीबों की गरीबी भी उतनी बढ़ती चली जायेगी।

—दादा धर्माधिकारी

(घ) कंगाली में गीला आटा।

—हिन्दी कहावत

(ङ) क्या करै नर बांकड़ा, जद थेली का मुख सांकड़ा।

—राजस्थानी कहावत

२३ गरीबी के चित्र

१. गाँव की एक लड़की ने धोबी द्वारा नदी के किनारे सुखायी गयी साड़ियों में से एक साड़ी उठाकर पहन ली और चुपचाप घर चली आयी। कानूनन यह चोरी थी, उसकी गिरफ्तारी हुई। मुकदमा चला, जुर्माने की सजा हुई, मगर जुर्माने के लायक कोई भी सामान जब उसके घर से नहीं निकला, तब जज का हृदय दया से भर आया—उसने उस लड़की की सजा माफ करदी। अपने फैसले में उसने लिखा कि जिस नारी के पास अपनी लाज बचाने के लिए कपड़ा न हो और समाज आँख से अन्धा होकर यह सब देखता रहे—ऐसी स्थिति में वह नारी अगर एक साड़ी चुरा ले तो उसकी चोरी से बड़ा अपराध समाज की हृदयहीनता का ही है।

२. गांधीजी जब मद्रास प्रेसीडेंसी में एक गाँव की पैदल यात्रा कर रहे थे, वहां उन्होंने एक औरत को ऐसे फटे वस्त्रों में लिपटा देखा कि असल में वह नंगी ही नजर आ रही थी। गाधीजी ने अपनी एक धोती, जिसे वे ओढ़े हुए थे, उस औरत को उतार कर दे दी—तात्कालिक शान्ति तो उनको मिल गयी, किन्तु राजगोपालाचारीजी कहते हैं कि गांधीजी उस प्रसंग को याद करते-करते कई बार सजलनेत्र हो जाया करते थे।

३. स्वामी विवेकानन्द अपने शिष्यों के साथ राजस्थान के एक गांव से गुजर रहे थे। जब वे चमारों के मोहल्ले से निकले तो पुलिस का सिपाही दो चमार-युवतियों को घसीट कर ले जा रहा था, क्योंकि उन्होंने बेगार में काम करने से इन्कार कर दिया था। विवेकानन्द ने सिपाही को रोका। इतने में चार-पाँच चमार-औरतें और भी घरों से

बाहर निकल आयीं। दोनों युवतियों ने स्वामीजी से कहा कि घर से बाहर निकलने लायक उनके पास कपड़े नही हैं। उनके बयान की गवाही स्वयं उनके शरीर दे रहे थे। स्वामीजी को देखकर सिपाही तो भाग गया, मगर विवेकानन्द और उनके साथियों ने उस रात चमारों के चबूतरे से ही लोगों को उपदेश दिया।

—हिन्दुस्तान, ३० अगस्त १९७१ (संपादकीय लेख से)

४. अमरीका में १८ साल से कम अवस्था के लगभग एक करोड़ बीस लाख बच्चों के परिवार इतने गरीब हैं कि वे अपने बच्चों के लिए पर्याप्त अन्न-वस्त्र और चिकित्सा की व्यवस्था नहीं कर सकते।

—(राष्ट्रपति जानसन) हिन्दुस्तान, २४ जून १९६८

५. कन्थाखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृहाणार्भकं,
रिक्तं भूतलमत्र नाथ! भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशि यदा चौरः प्रविष्टस्तदा,
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

सर्दी से ठिठुरती हुई पत्नी ने कहा—हे नाथ! अपनी गुदड़ी का एक टुकड़ा मुझे दे दो, मेरी गोद में सोये बच्चे को सर्दी लग रही है। यदि गुदड़ी नाममात्र ही बच गयी है तो फिर आप ही इस बच्चे को अपने पास सुला लो। आपके नीचे फूस और पलाल है, मगर मेरे नीचे कुछ भी नहीं है।

संयोग ऐसा हुआ कि पत्नी जब यों अपना रोना रो रही थी, एक चोर चोरी करने के लिए उस घर में आया और पति-पत्नी की हृदयवेधक कहानी सुनकर अपनी गति-मति ऐसा भूला कि दूसरों के यहाँ से लाई हुई कपड़ों की गठरी को वहीं छोड़कर रोता हुआ वहाँ से चला गया।

—हिन्दुस्तान, ३० अगस्त १९७१ (सम्पादकीय लेख) पर आधारित

दरिद्र

१. शून्यमपुत्रस्य गृहं, चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम्।
मूर्खस्य दिशा शून्या, सर्वं शून्यं दरिद्रस्य॥

—मृच्छकटिक १।८

अपुत्र का घर शून्य है, सच्चे मित्र के बिना व्यक्ति का समय शून्य है, मूर्ख की दिशाएँ शून्य हैं, किन्तु दरिद्र व्यक्ति का सब कुछ शून्य है।

२. उत्पद्यन्ते विलीयन्ते, दरिद्राणां मनोरथाः।
बालवैधव्य-दग्धानां, कुलस्त्रीणां कुचा इव॥

बालविधवापन की ज्वाला से जले हुए कुलीन स्त्रियों के स्तनों की तरह दरिद्र व्यक्तियों के मनोरथ उठते हैं और मिट जाते हैं।

३. हेतु-प्रमाणयुक्तं, वाक्यं न श्रूयते दरिद्रस्य।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

दरिद्र व्यक्ति का हेतु-प्रमाणयुक्त वाक्य भी कोई नहीं सुनता।

४. द्वाविमौ पुरुषौ राजन्! स्वर्गस्योपरितिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो, दरिद्रश्च प्रदानवान्॥

—विदुरनीति १।६३

ये दो आदमी स्वर्ग में ठहरते हैं—शक्तिशाली होकर क्षमा करनेवाला और दरिद्र होकर दान देनेवाला।

५. को वा दरिद्रो? हि विशालतृष्णः।
श्रीमांश्च को? यस्य समस्ति तोषः॥ —शंकर प्रश्नोत्तरी-५

दरिद्र कौन है? विशाल तृष्णावाला।
श्रीमान् कौन है? जिसको सन्तोष है, वह।

६. छः दमड़ी में राजा भोज—

राजा भोज को एक लकड़हारा मिला। **राजा** ने पूछा—तुम कौन हो ?

लकड़हारा——राजा भोज।

राजा——तुम्हारी आय कितनी है ?

लकड़हारा——छः दमड़ी।

राजा——खर्च का क्या हिसाब है ?

लकड़हारा——एक दमड़ी बोहरों को (माँ-बाप को), एक आसामी को (पुत्रों को), एक मंत्री को (स्त्री को), एक खजाने को एवं एक स्वयं को देता हूँ तथा एक अतिथि-सत्कार में लगाता हूं।

७. छः प्रकार के दरिद्र——

(१) तन से, (२) मन से, (३) धन से, (४) वचन से, (५) बुद्धि से, (६) सदाचार से।

२५ दरिद्रता

१. दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ।

—घटखर्पर

दरिद्रता का दोष गुणों के समूह का नाश करनेवाला है ।

२. दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ।

—चाणक्यसूत्र २५७

दरिद्रता पुरुष का जीते हुए मरण है ।

३. दारिद्र्यान्मरणाद्वा, मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेशं मरणं, दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥

—मृच्छकटिक १।११

दरिद्रता और मरण की तुलना में मुझे मरण ही अच्छा लगता है, दरिद्रता नहीं । क्योंकि मरण में अल्प क्लेश होता है और दरिद्रता में अनन्त दुःख ।

४. हे दारिद्र्य ! नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः ।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं, न मे पश्यति कश्चनः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ६८

हे दरिद्रता ! तुझे नमस्कार है, तेरे प्रसाद से मैं तो सिद्ध हो गया । क्योंकि मैं समूचे जगत् को देखता हूँ अर्थात् सबके सामने माँगता रहता हूं और मुझे कोई भी नहीं देखता ।

५. दरिद्र और दारिद्र्य का संवाद—

दरिद्र—

५. रे दारिद्र ! सुलक्खरणा, इक मुझ बात सुणेह।
म्हे परदेशां संचरां, तूं घर-सार करेह।

दारिद्र्य—

संचरवो सयणां तणों, छोड़ं तेह अयाण।
थे परदेशां संचरो (तो) म्हे पिण आगेवाण ॥

—राजस्थानी दोहे

६. दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना दिव्यद्रुमैः सेवितं,
दग्धा वायुसुतेन, रावणपुरी लङ्का पुनः स्वर्णभूः।
दग्धः पञ्चशरः पिनाकपतिना तेनाऽप्ययुक्तं कृतं।
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं नहि ॥

—भोजप्रबन्ध

वीर अर्जुन ने दिव्यवृक्षों से विभूषित खाण्डववन को भस्म किया, वीर हनुमान ने रावण की स्वर्णमयी लंका नगरी को भस्म किया और महादेव ने भी कामदेव को भस्म करके अयुक्त किया। खेद है कि जगत् को सन्तापित करनेवाले इस दारिद्र्य को किसी ने भी भस्म नहीं किया।

१. विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति वार्षिक राष्ट्रीय आय—

नाम	आय रुपयों में
बर्मा	४३०
भारत	५५२
पाकिस्तान (बंगालसंयुक्त)	५६०
श्रीलंका	६४५
जापान	४२६०
फ्रांस	१०,०००
इंगलैण्ड	१०,०८०
आस्ट्रेलिया	११,६४०
अमरीका	२२,०००

—भारतीय अर्थशास्त्र, खण्ड २, पृष्ठ ३३

२. भारी आय—

मुगलेआजम—(फिल्म) ३६ सप्ताहों में सब खर्च निकाल कर १ **करोड़** ७५ **लाख** का नफा कर चुका।

—**रंगभूमि से**

३. आयकर (इन्कमटैक्स)—चक्रवर्त्ती लाभ का २०वां भाग, वासुदेव १०वाँ भाग एवं मांडलिक राजा छठवाँ भाग लिया करते थे। वर्तमान भारत सरकार के आय-कर का हिसाब, हिन्दुस्तान, २ मार्च १९६८ के अनुसार इस प्रकार है—

चार हजार रुपये तक की आमदनीपर कर नहीं।

५००० रु० पर	२५० रु०,
१०००० रु० पर	७५० रु०,
१५००० रु० पर	१५०० रु०,
२०००० रु० पर	२५०० रु०,
२५००० रु० पर	४००० रु०,
३०००० रु० पर	६००० रु०,
५० हजार रु० पर	१६००० रु०,
६० हजार रु० पर	२८००० रु०,
१ लाख रु० पर	४७५०० रु०,
२।। लाख रु० पर	१५०००० रु०,

ढाई लाख से ऊपर की आमदनी पर ७५ प्रतिशत।

सम्पत्ति कर—५० लाख पर १ लाख ६२ हजार।

मृत्यु कर—३० लाख पर १५ लाख २२ हजार।

—सन् १९६६ की सरकारी रिपोर्ट के आधार पर

२७ व्यय

१. इदमेव हि पण्डित्यं, चातुर्यमिदमेव हि ।
इदमेव सुबुद्धित्व-मायादल्पतरो व्ययः ॥
यही पण्डितता, चतुरता और सुबुद्धिमत्ता है कि आमदनी से कम खर्च किया जाये ।

2. Cut your coat according to your cloth.

कट योर कोट एकोर्डिंग टू योर क्लोथ ।

—अंग्रेजी कहावत

अपनी आमदनी के अनुसार खर्च करो ।

३. खर्च व अंदाजे दखल कुन ।

—पारसी कहावत

आमदनी को देख कर खर्च ।

४. बीस पौंड की आमदनी में यदि खर्च उन्नीस पौंड उन्नीस सिलिंग छः पेन्स है तो सुख होगा और यदि बीस पौंड उन्नीस सिलिंग छः पेन्स है तो दुःख होगा ।

—मिकावर

५. आयमनालोच्य व्ययमानो वैश्रवणोऽपि श्रमणायत एव ।

—नीतिवाक्यामृत १८।१०

आमदनी को न देखकर खर्च करनेवाला वैश्रवण (कुबेर) भी फकीर हो जाता है ।

६. नित्यं हिरण्यव्ययेन मेरुरपि क्षीयते ।

—नीतिवाक्यामृत ८।५

हमेशा व्यय करने से धन का मेरु भी क्षीण हो जाता है ।

७. अस्सी री आंवद चौरासी रो खर्च ।

- साहजी सूरा-लेखा पूरा ।
- घर तंग-बहू जबरजंग ।
- आभो टोपसी-सो दीखै है ।

—राजस्थानी कहावतें

८. सन् १९६८-६९ के बजट के अनुसार भारत-सरकार की कुल आमदनी ४२९९ करोड़, ५९ लाख थी तथा खर्च ४५९९ करोड़, ५९ लाख हुआ ।

—हिन्दुस्तान, २ मार्च १९६८

९. संसार का वार्षिक रक्षाव्यय १५ हजार खरब रु०—
संयुक्त राष्ट्र-महासभा ने शस्त्रास्त्र की होड़ तथा सुरक्षा बजट में निरन्तर वृद्धि के सामाजिक और आर्थिकपरिणामों के अध्ययन के लिए एक विशेषज्ञ समिति गठित की थी। उसने गत वर्ष अक्तूबर में महासचिव को एक रिपोर्ट दी। उसके अनुसार १९६१ से १९७१ के बीच के दस वर्षों में संसार का रक्षा-व्यय ५०० खरब डालर (३७५० खरब रुपये) से बढ़ कर २००० खरब डालर (१५००० खरब रुपये) वार्षिक हो गया है ।

—हिन्दुस्तान १ अगस्त १९७२

२८ अपव्यय-निषेध

१. व ला तुबज़्ज़िर तब् जीरन् ऽ० ।

—कुरान १७।२६

फिजूल-खर्ची न करो ।

२. न तो अपना हाथ गर्दन से बाँध रख और न (फिजूलखर्ची से) उसे बिलकुल खुला फैलादे।

—कुरान १७।२६

३. धन कमाने की अपेक्षा खर्च करने में अधिक बुद्धिमत्ता चाहिए। अयोग्य स्थान में खर्च करने से धन का दुरुपयोग होता है।

४. किसी भी चीज में पैसा लगाने से पहले अपने आप से दो प्रश्न पूछो—क्या मुझे इस चीज की जरूरत है ? क्या इसके बिना मेरा काम चल सकता है ?

—सिडनी स्मिथ

५. जान मुरेनी दो बत्तियाँ जला कर कुछ लिख रहे थे। दो कार्यकर्ता उनसे कुछ चन्दा लेने आये। आते ही एक बत्ती बुझा दी एवं उन्हें आशातीत चन्दा दिया। बत्ती बुझाने का कारण पूछने पर बोले—दो बत्तियाँ लिखने के लिए थीं, आपसे बातचीत एक बत्ती के प्रकाश में भी हो सकती है, व्यर्थ व्यय करना मेरे सिद्धान्त से विपरीत है।

२६ ऋण (कर्ज)

१. ऋण लेने का अर्थ है, दुःख मोल लेना।

—टसर

२. आदमी के लिए कर्ज ऐसा हैं, जैसा चिड़िया के लिए साँप।

३. न विषंविषमित्याहु—र्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।
विषमेकाकिनं हन्ति, ब्रह्मस्वं पुत्र-पौत्रकम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डार, पृष्ठ १०२

विष विष नहीं है, वास्तविक विष ऋण है। क्योंकि विष तो केवल खाने वाले को मारता है, किन्तु ऋण उसके पुत्र-पौत्रों को भी।

४. ऋणी होना ही सबसे बड़ी निर्धनता है।

—एम. जी. लीश्वर

५. ऋण लेनेवाला ऋण देनेवाले का दास है।

६. अधमर्णोग्राहकस्यादुत्तमर्णस्तुदायकः।

—हैमकोष-३।५४६

ऋण लेनेवाला अधमर्ण और देनेवाला उत्तमर्ण कहलाता है।

७. स्त्रियों को सोचना चाहिए कि हमारी वेषभूषा एवं शृङ्गार के लिए पतिदेव कर्जदार तो नहीं बन रहे हैं ?

८. सरकार चाहे तीन वर्ष बाद छुटकारा करदे तथा बेशर्म होकर यहाँ चाहे कोई दिवालिया कहलाकर ऋणमुक्त हो जाय, लेकिन धर्मशास्त्रानुसार अनन्तजन्मों तक भी कर्ज को चुकाये बिना प्राणी ऋण-मुक्त नहीं हो सकता।

९. एक व्यापारी को बड़ा घाटा लगा। वह राजा भोज के यहाँ से एक बड़ी रकम ऋण के रूप में लेकर घर की ओर चला। रास्ते में वह एक रात तेली के घर रुका। व्यापारी पशु-भाषा समझता था। उसने तेली के दो बैलों की बातें सुनीं। एक ने कहा—मैं इस तेली का कर्ज सुबह तक चुका कर इस योनि से छूट जाऊँगा। दूसरे ने कहा—यदि १००० रु० की शर्त पर राजा भोज के बैल की मेरे साथ दौड़ हो जाय तो जीत जाऊँ और मैं भी ऋण-मुक्त हो जाऊँ। पहला बैल अगले दिन सुबह व्यापारी के सामने ही मर गया। उसके मरते ही व्यापारी ने रात का सारा हाल तेली को कह सुनाया। यह सुनते ही तेली ने राजा के बैल के साथ दौड़ की होड़ लगाई। दौड़ में तेली का बैल जीत गया। १००० रु० तेली को मिल गये। रुपये मिलते ही बैल मर गया। यह देखकर व्यापारी ने राजा को रुपये लौटाते हुए बैलों का सारा हाल सुनाया और कहा—राजन् ! इस जन्म में तो मैं यह कर्ज हरगिज चुका नहीं सकता और अगले जन्म के लिए कर्ज का बोझ उठाना मुझे उचित नहीं लगता। **—कल्याण-सत्कथा अंक से**

१०. **अधिक ऋणवाले—**

(क) बहु दुखिया ने दुख नहीं, ने बहु ऋणीया ने ऋण नहिं।

—गुजराती कहावत

(ख) चड़िया सौ तें नट्ठा भउ। **—पंजाबी कहावत**

११. **भारत पर विदेशों का ऋण—**

१९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हुआ, उस समय भारत का विदेशों में १,७०० करोड़ रुपये जमा थे, अर्थात् प्रत्येक भारतवासी ५० रुपये का पावनेदार था। 'स्टेट्समैन' १२ जुलाई १९७१ के अनुसार अप्रैल १९७१ के अन्त तक भारत ९,९०२ करोड़ रुपये का विदेशी कर्जदार बन चुका है अर्थात प्रत्येक भारतीय १८० रुपये का देनदार हो चुका है।

—नवभारत टाइम्स १९ नवम्बर १९७१

(श्री रामेश्वर टांटियां के लेख से)

उधार

१. उधार न दो और न लो। देने से पैसा और मित्र दोनों खो जाते हैं तथा लेने से किफायत सारी कुण्ठित हो जाती है।

—शेक्सपियर

२. उधार देने के विषय में—

(क) नटे विटे च वेश्यायां, द्यूतकारे विशेषतः।
उद्धारके न दातव्यं, मूलनाशो भविष्यति॥

नट, विट, वेश्या और जुआरी—इनको उधार (ऋण) धन नही देना चाहिए, देने से मूलधन का ही नाश हो जाएगा।

(ख) रिश्तेदारों को दिए, रुपये अगर उधार।
तो समझो ! दुश्मन बने, अब वे रिस्तेदार॥

—दोहासंदोह

(ग) उधारी चें बोतें सब्बा हाथ रीते।

—मराठी कहावत

उधार देना अपना नुकसान करना है।

(घ) उधार दीजै र, दुश्मण कीजै।
- उधार दियो र, गिरायक गमायो।
- उधार देवणो, लड़ाई मोल लेवणी है।

—राजस्थानी कहावतें

३. उधार लेने के विषय में—

(क) उधार माँगना भीख माँगने से ज्यादा अच्छा नहीं है।

—लैसिंग

(ख) उधार लिया हुआ पैसा गम का सामान बन जाता है।
(ग) जिसे उधार लेना प्रिय लगता है, उसे अदा करना अप्रिय लगता है।
(घ) फूस का तपना और उधार का खाना।

—हिन्दी कहावतें

(ङ) उधारनी मां ने कूतरा परणे।

—गुजराती कहावत

(च) उधार घर की हार।

—राजस्थानी कहावत

४. नगद और उधार—

(क) ए बर्ड इन हैंड इज वर्थ टू इन दि बुश।

—अंग्रेजी कहावत

नौ नकद न तेरह उधार।

(ख) सपनै रा सात, परतख रा पाँच।

—राजस्थानी कहावत

(ग) रोकड़ा आज नें काले उधार।

● उधार तो कहे ओ! खूणै बैसीने रो,
नगद कहे जी! जी! खा खीचड़ी नें घी।

—गुजराती कहावतें

(घ) माँग खाओ, कमा खाओ, चाहे उधाय खाओ।

—राजस्थानी कहावत

५. उधार के प्रशंसक—

(क) उधारे हाथी बंधाय, रोकड़े बकरी पण न बंधाय।

—गुजराती कहावत

(ख) लाख लखांरा नीपजै, बड़-पीपल री साख।
नटियां मुंहतो नैणसी, तांबो देण तलाक।।
(उधार लेकर न देनेवालों के लिए)

३१ संग्रह

१. मैनी ए लिटल मेक्स ए मिक्ल।

—अंग्रेजी कहावत

बूंद-बूंद से तालाब भर जाता है।

२. अन्दक अन्दक खैले शवद व कतरा-कतरा सेले गरदद।

—पारसी कहावत

बूंद-बूंद से नाला और कण-कण से मन।

३. जलबिन्दुनिपातेन, क्रमशः पूर्यते घटः।

—सुभाषितरत्न-खण्डमंजूषा

जल की एक-एक बूंद गिरने से घड़ा भर जाता है।

४. कालेन संचीयमानः परमाणुरपि संजायते मेरुः।

—नीतिवाक्यामृत १।३०

संचय करते-करते कालान्तर में परमाणु भी मेरु बन जाता है।

५. कोड़ी-कोड़ी संचतां रुपियो थाय, कांकरे-कांकरे पाल बंधाय, टीपे-टीपे सरोवर भराय।

—गुजराती कहावत

६. कोड़ी-कोड़ी करतां लंक लागै।

—राजस्थानी कहावत

७. कर कसर ते बीजो भाई ने त्रेवड़ (संग्रह) त्रीजो भाई।

—गुजराती कहावत

८. धन का सहजसंग्रह करने के लिए गृहणियाँ घर-खर्च में से कुछ बचाती हैं, गृहस्थलोग जीवन-बीमा करवाते हैं, माँ-बाप बच्चों के 'गोलख' बनाते हैं तथा सरकार और बड़े-बड़े व्यापारी लोग अपने नौकरों के वेतन का कुछ भाग काटते हैं। अल्पबचतयोजना का भी मूल ध्येय यही है।

ब्याज

१. ब्याज ने घोड़ो न पहोंचे।

● ब्याज ने विसामो नहिं।

—गुजराती कहावतें

२. मिनख कमावै चार पोर, ब्याज कमावै आठ पोर।

—राजस्थानी कहावत

३. ब्याज भला-भलानी लाज मूकावै।

—गुजराती कहावत

४. ६५ वर्ष पूर्व सुक्खूराम ने मकान गिरवे रखकर १६५६ में उसे छुड़ाने गया। चक्र ब्याज के हिसाब से २२ करोड़ ३४ लाख ६७ हजार ७८३ रुपये हुए।

५. एक रामे लंका लीधी तो भाभा राम (आनो)।
चढ़े त्या शुं बाकी रहे।

—गुजराती कहावतें

६. मूलसूं ब्याज प्यारो।

—राजस्थानी कहावत

७. **हबीब अजमी** एक दिन कर्जदारों के यहाँ से आटा, चावल एवं लकड़ी उठाकर ले आये। रांधते समय हांडी में खून देखकर स्त्री चौंकी। हबीब ब्याज का धन्धा छोड़कर फकीर हो गये।

—**"इस्लाम धर्म क्या कहता है?"** के आधार पर

चौथा कोष्ठक

१ आत्मा

१. जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण वियाणइ से आया। तं पडुच्च पडिसंखाए ॥

—आचारांग-५।५

जो आत्मा है, वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है, वह आत्मा है। जिससे जाना जाता है, वह आत्मा है। जानने की इस शक्ति से ही आत्मा की प्रतीति होती है।

२. जो अहंकारो, भणितं अप्पलक्खणं।

—आचाराग चूर्णि-१।१।१

यह जो अन्दर में 'अहं' की चेतना है, यह आत्मा का लक्षण है।

३. यत्राहमित्यनुपरितप्रत्यय, स आत्मा।

—नीतिवाक्यामृत ६।४

जहां "मैं हूँ" ऐसा सुदृढ़ निश्चय हो, वह आत्मा है।

४. जिस हस्ती को वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, भक्त भगवान कहते हैं, उसे योगी आत्मा कहते हैं।

—रामकृष्ण

५. जिसे अपने जीवन के लिए मन, प्राण, और शरीर की गर्ज नहीं, अपने ज्ञान के लिए मन और इन्द्रियों की गर्ज नहीं और अपने आनन्द के लिए पदार्थमात्र के बाह्यस्पर्श की गर्ज नहीं, उसी तत्त्व का "आत्मा" नाम दिया गया है।

—अरविंद घोष

६. अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परे सिया ?

—धम्मपद-१२।४

आत्मा ही आत्मा का नाथ (स्वामी) है, दूसरा कौन उसका नाथ हो सकता है ?

७. जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लियजीव तारिसा होंति।

—नियमसार-४७

जैसी शुद्ध आत्मा सिद्धों (मुक्त आत्माओं) की है। मूलस्वरूप से वैसी ही संसारस्थ प्राणियों की है।

८. हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे।

—भगवती ७।८

आत्मा की दृष्टि से हाथी और कुंथुआ—दोनों की आत्मा एक समान है।

२ आत्मा का स्वरूप

१. अरुवी सत्ता, अपयस्स पयं नत्थि ।

—आचारांग-५।६

आत्मा का मूलस्वरूप अरूपी है । उसको कहने के लिए कोई शब्द नहीं है । वास्तव में वह अवाच्य है ।

२. सव्वे सरा नियट्टंति,
तक्का जत्थ न विज्जइ ।
मई तत्थ न गाहिया ॥

—आचारांग ५।६

आत्मा के वर्णन में सबके सब शब्द निवृत्त हो जाते है—समाप्त हो जाते हैं । वहां तर्क की गति भी नहीं हैं और न बुद्धि ही उसे ठीक तरह ग्रहण कर पाती है ।

३. नैषा तर्केण मतिरापनेया ।

—कठोपनिषद्-२।९

यह आत्म-ज्ञान कोरे तर्क-वितर्कों से झुठलाने जैसा नहीं है ।

४. अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ।
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म, आत्मा कपिलदर्शने ।

—स्याद्वादमंजरी १५ टीका

सांख्यदर्शन में आत्मा अरूपी है, चेतनायुक्त है, कर्मफल भोगनेवाली है, नित्य है, सर्वव्यापी है, क्रियाशून्य है, अकर्त्ता है, निर्गुण है और सूक्ष्म है ।

५. से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे ।

—आचारांग-५।६

आत्मा न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है और न स्पर्श है ।

६. आत्माऽगृह्यो, न हि गृह्यते; अशीर्यो न हि शीर्यते ।
असंगो, न हि सज्यते; असितो न हि व्यथते, न रिष्यते ॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-३।६।२६

आत्मा अग्राह्य है, अतः वह पकड़ में नहीं आता; आत्मा अशीर्य है, अतः वह क्षीण नहीं होता, आत्मा असंग है, अतः वह किसी से लिप्त नहीं होता, आत्मा असित है—बंधनरहित है, अतः वह व्यथित नहीं होता, नष्ट नहीं होता ।

७. नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा वि य होइ निच्चं ।

—उत्तराध्ययन-१४।१६

आत्मा आदि अमूर्त तत्त्व इन्द्रियग्राह्य नहीं होते और जो अमूर्त होते हैं, वे अविनाशी-नित्य भी होते हैं ।

८. अणिंदियगुणं जीवं, दुन्नेयं मंसचक्खुणा ।

—दशवैकालिक–निर्युक्ति भाष्य ३४

आत्मा के गुण अनिन्द्रिय-अमूर्त्त हैं, अतः उन्हें चर्म-चक्षुओं से देख पाना कठिन है ।

३ आत्मा की शाश्वतता आदि

१. नत्थि जीवस्स नासो त्ति ।

—उत्तराध्ययन २।२७

आत्मा का कभी नाश नहीं होता ।

२. णिच्चो अविणासि सासओ जीवो ।

—दशवैकालिक निर्युक्ति-भाष्य ४२

आत्मा नित्य है, अविनाशी है एवं शाश्वत है ।

३. न जायते म्रियते वा कदाचिद्, नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥२३॥

—गीता अ० २

यह आत्मा न कभी जन्म लेती है, न कभी मरती है अथवा न यह आत्मा होकर के दुबारा होने वाली है। क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है ॥२०॥

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न इसको आग जला सकती है न इसको जल गीला कर सकता है और न इसको वायु सुखा सकती है ॥२३॥

४. **आत्मा की परिमितता—**

(क) बालाग्रशतभागस्य, शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः, स चानन्त्याय कल्पते ॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद् ५।६

बालाग्र के सौवें भाग के सौवें भाग जितना जीव होता है, वह अनन्त परिणामवाला है।

(ख) अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ऽन्तरात्मा।
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद्-३।१३

अङ्गुष्ठ मात्र परिमाणवाला अन्तर्यामी परमात्मा मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है।

५. आत्मा की अलिङ्गिता—

(क) न इत्थी, न पुरिसे न, अन्नहा।

—आचारांग-५।६

आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है।

(ख) नैव स्त्री न पुमानेष, न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते, तेन-तेन स युज्यते॥

—श्वेताश्वतर उपनिषद् ५।१०

यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न यह नपुंसक है। जो-जो शरीर धारण करता है, उस-उस नाम से युक्त हो जाता है।

(ग) वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

—गीता २।२२

जैसे—मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्रों को धारण कर लेता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नए शरीरों को धारण कर लेता है।

४ आत्मा का कर्तृत्व

१. अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहाधेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं ॥३६॥
अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥३७॥

—उत्तराध्ययन २०

मेरी (पाप में प्रवृत्त) आत्मा ही वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष के समान (कष्टदायी) है। और (सत्कर्म में प्रवृत्त) कामधेनु मेरी आत्मा ही एवं नन्दनवन के समान (सुखदायी) भी है।३६।

आत्मा ही सुख-दुःख की कर्त्ता और भोक्ता है। सदाचार में प्रवृत्त आत्मा मित्र के तुल्य है और दुराचार में प्रवृत्त होने पर वही शत्रु है।३७।

२. आत्मानमेव मन्येत, कर्त्तारं सुख-दुःखयोः ।

—चरकसंहिता

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्मा को ही सुख-दुःख की कर्त्ता माने।

३. स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥

—चाणक्यनीति ६।६

आत्मा स्वयं कर्म करती है और स्वयं उसका फल भोगती है। स्वयं संसार में भ्रमण करती है और स्वयं उससे मुक्त होती है।

४. से सुयं च मे अज्झत्थियं च मे,
बंध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव।

—आचारांग-५।२

मैंने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्धन की मुक्ति आत्मा के अन्दर ही है।

५. उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-रात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य, येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे, वर्त्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

—गीता-अ० ६

आत्मसंयम द्वारा आत्मा का उद्धार करो। कुत्सित प्रवृत्तियों द्वारा आत्मा को विषाद—दुःख मत पहुँचाओ। आत्मा ही आत्मा की बन्धु है और आत्मा ही आत्मा की शत्रु है ॥५॥

जिसने आत्मा को अर्थात् मन-इन्द्रियों को आत्म-संयम द्वारा जीत लिया है, उसके लिए उसकी आत्मा बन्धु है और जिसके मन-इन्द्रियां अपने वश में नहीं हैं, उसके लिए उसकी आत्मा शत्रु है ॥६॥

६. एगप्पा अजिए सत्तू।

—उत्तराध्ययन-२३।३८

स्वयं की अविजित—असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है।

७. न तं अरी कंठछित्ता करेई,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।

—उत्तराध्ययन-२०।४८

गर्दन काटनेवाला शत्रु भी उतनी हानि नहीं करता, जितनी हानि दुराचार में प्रवृत्त अपनी आत्मा कर सकती है।

५ आत्मा का दर्शन

१. आत्मा व अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेन इदं सर्वं-
विदितम् ॥

—बृहदारण्यक उपनिषद्-२।४।५

आत्मा का ही दर्शन करना चाहिए, आत्मा के सम्बन्ध में ही सुनना चाहिए, मनन-चिन्तन करना चाहिए और आत्मा का ही निदिध्यासन-ध्यान करना चाहिए। एकमात्र आत्मा के ही दर्शन से, श्रवण से, मनन-चिन्तन से और विज्ञान से—सम्यक् जानने से सब कुछ जान लिया जाता है।

२. आत्मावलोकने यत्नः, कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता।

—योगवाशिष्ठ ५।७५।४६

कल्याण की इच्छा रखनेवाले को आत्मदर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

३. पुष्पे गन्धं तिले तैलं, काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे, पश्यात्मानं विवेकतः ॥

—चाणक्यनीति ७।२१

जैसे—पुष्प में गन्ध, तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि और ईख में गुड़ विद्यमान है, वैसे ही देह में आत्मा विद्यमान है। उसे विवेकपूर्वक देखो।

४. अणोरणीयान् महतो महीया-नात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमऽक्रतुं पश्यति वीतशोको, धातुप्रसादान्महिमानमीशम् ॥
—कठोपनिषद् २।२०

आत्मा अणु से भी अणु (छोटी) है और महान् से भी महान् (बड़ी) है। प्रत्येक प्राणी के भीतर छिपी है। जो निरीह है, उसे अपने मन और इन्द्रियों की शक्ति से इसके दर्शन होते हैं।

५. रागद्वेषादि कल्लोलै-रलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत्तत्त्वं नेतरो जनः ॥
—समाधिशतक ३५

राग-द्वेषादि की कल्लोलों से जिसका मनरूप जल चंचल नहीं होता; वही व्यक्ति आत्मा के तत्त्व को देख सकता है, दूसरा नहीं।

६. नष्टे पूर्वविकल्पे तु, यावदन्यस्य नोदयः।
निर्विकल्पकचैतन्यं, स्पष्टं तावद्विभासते ॥
—लघुवाक्यवृत्ति

पूर्व विकल्प नष्ट होने के बाद, जब तक दूसरा विकल्प उत्पन्न नहीं होता, उस समय तक निर्विकल्पआत्मा स्पष्टरूप में दृष्टिगोचर होती है।

७. शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः,
समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं-पश्यति।
—बृहदारण्यक उपनिषद्-४।४।२३

शम, दम, उपरति, तितिक्षा (श्रद्धा) तथा समाधानरूप षट्सम्पत्तियुक्त जिज्ञासु ही आत्मा का आत्मा में दर्शन करता है।

६ आत्मा का ज्ञान

१. एतदात्मविज्ञानं पाण्डित्यम् ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् ३।५।१

बस्तुतः आत्म-ज्ञान ही पाण्डित्य है ।

२. अज्ञातस्वरूपेण, परमात्मा न बुध्यते ।
आत्मैव प्राग् विनिश्चेयो; विज्ञातुं पुरुषं परम् ।।

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ३१६

अपने स्वरूप को नहीं जाननेवाला परमात्मा को नहीं जान सकता । अतः परमात्मा को जानने के लिए पहले अपनी आत्मा को ही निश्चय-पूर्वक जानना चाहिए ।

३. वाग्वैखरी शब्दझरी, शास्त्र—व्याख्यानकौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वत्, भुक्तये न तु मुक्तये ।।
अविज्ञाते परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।
विज्ञातेपि परे तत्त्वे, शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ।।

—विवेकचूड़ामणि-६०-६१

आत्मज्ञान के बिना विद्वानों की वाक्कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता—ये सब चीजें भोग का ही कारण हो सकती हैं, मोक्ष का नहीं ।।६०।।

आत्मतत्त्व न जानने पर शास्त्राध्ययन व्यर्थ है तथा उसे जान लेने पर भी शास्त्राध्ययन व्यर्थ है ।।६१।।

४. ज्यां लगे आतम तत्त्व चीन्ह्यो नहीं, त्यां लगे साधना सर्व झूठी।

—नरसी भगत

५. वद-णियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे, णिव्वाणं ते ण विंदंति॥

—समयसार-१५३

भले ही व्रत-नियम को धारण करें, तप और शील का आचरण करें, किन्तु जो परमार्थरूप आत्म-बोध से शून्य हैं, वे कभी निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते।

६. आत्मज्ञानात् परं कार्यं, न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात् किंचिद् वाक्कायाभ्यामतत्परः॥

—समाधिशतक ५०

आत्मज्ञान के अतिरिक्त कोई भी कार्य का चिन्तन नहीं करना चाहिए, प्रयोजनवश कोई कार्य करना ही पड़े तो अनासक्त रहकर केवल वचन-काया द्वारा करना चाहिए।

७. अगर मुझे अपनी फिलॉसफी कोई एक शब्द में कहने को कहे, तो मैं कहूँगा—'आत्मनिर्भरता'—'आत्मज्ञान'।

—रामतीर्थ

८. दुक्खे णज्जइ अप्पा।

—मोक्षपाहुड-६५

आत्मा बड़ी कठिनाई से जानी जाती है।

९. तस्मै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा।

—केनोपनिषद्-४।८

आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा अर्थात् बुनियाद तीन बातों पर होती है—तप, दम (इन्द्रियनिग्रह) तथा कर्म-सत्कर्म।

१०. आत्मज्ञान के लिए इन्द्र को १०१ वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालना पड़ा।

—छान्दोग्योपनिषद् ८

११. कहं सो घिप्पइ अप्पा ? पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा।

—समयसार २६६

यह आत्मा किस प्रकार जानी जा सकती है ? आत्म-प्रज्ञा अर्थात् भेद-विज्ञानरूप बुद्धि से ही जानी जा सकती है।

१२. आत्माविद्या ब्राह्मणों में क्षत्रियों से आई हो—ऐसा संभव है। छान्दोग्योपनिषद् (५।३।७) में अपने पुत्र 'श्वेतकेतु' से प्रेरित होकर 'आरुणि' 'पंचाल के राजा प्रवाहण' के पास गया। आत्मविद्या देते हुए राजा ने कहा—मैं तुम्हें जो आत्मविद्या और परलोकविद्या दे रहा हूं, उस पर आज तक क्षत्रियों का अधिकार रहा है, आज पहली बार वह ब्राह्मणों के पास जा रही है।

भागवत–११।२।१६ में ऋषभप्रभु को सर्वक्षत्रियों का पूर्वज कहा है। (ऋषभं पार्थिव श्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्) यही ऋषभप्रभु भरतक्षेत्र में जैनधर्म के आदिकर्त्ता हैं। इन्हीं से आत्मविद्या का प्रारम्भ हुआ है।

१३. षड्दर्शन नां जुआ-जुआ मता, माहों मांहीं खाधा खता,
एक नों थाप्यो बीजो हणें, अन्यथी आपनें अधिको गणें।
अक्खा ! एज अंधारो कुओ, झगड़ो भांगी नें कोई न मुओ ॥१॥
देहाभिमान हतो पा सेर, विद्या भणतां बाध्यो सेर,
चर्चा बधतां अधमण थयो, गुरु थयां थी मण मां गयो।
अक्खा ! एम हलका थी भारी होय, आत्मज्ञान मूल गो खोय॥२॥

—अखा भक्त के गूजराती पद्य

७

आत्मज्ञ

१. यः आत्मवित् स सर्वविद् ।

जिसने आत्मा को जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया ।

२. तरति शोकमात्मविद् ।

—छांदोग्योपनिषद्-७।१।३

जो आत्मा को--अपने आपको जान लेता है, वह दुःख-सागर को तैर जाता है ।

३. तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः,
आत्मानं धीरमजरं युवानम् ।

—अथर्ववेद-१०।८।४४

जो धीर, अजर, अमर, सदा तरुण रहनेवाली आत्मा को जानता है, वह कभी मृत्यु से नहीं डरता ।

४. नीतिज्ञा नियतिज्ञा, वेदज्ञा, अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः ।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः, स्वज्ञानज्ञानिनो विरलाः ॥

जगत में नीति के जानकार हैं, नियति-होनहार के जानकार हैं, वेदों व अन्य शास्त्रों के जानकार हैं, ब्रह्मज्ञानी भी मिल जाते है, लेकिन आत्मा को जाननेवाले विरले हैं ।

५. पठन्ति चतुरो वेदान्, धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।
आत्मानं नैव जानन्ति, दर्वी पाकरसं यथा ॥

--चाणक्यनीति १५।१२

जैसे—भोजन में रहता हुआ भी चाटू उसके रस को नहीं जानता, उसी प्रकार बहुत से व्यक्ति चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, फिर भी आत्मा का ज्ञान नहीं कर पाते।

६. श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः, शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।

—कठोपनिषद् २।७

यह आत्मज्ञान अत्यन्त गूढ़ है। बहुतों को तो यह पहले सुनने को भी नहीं मिलता, बहुत से लोग सुन तो लेते हैं, किन्तु कुछ जान नहीं पाते। ऐसे गूढ़तत्त्व का प्रवक्ता कोई आश्चर्यमय विरला ही होता है, उसको पानेवाला तो कोई कुशल ही होता है और कुशल गुरु के उपदेश से कोई विरला ही उसे जान पाता है।

७. जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ,
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ।

—आचारांग-१।७

जो अध्यात्म को (आत्मा के मूलस्वरूप को) जानता है वह बाह्य को (पुद्गलादि द्रव्यों को) जानता है और जो बाह्य-पदार्थों को जानता है, वह आत्मा के मूलस्वरूप को—अध्यात्म को जानता है।

८. ण याणंति अप्पणो वि, किन्नु अण्णेसिं।

—आचारांगचूर्णि-१।३।३

जो आत्मा को नहीं जानता, वह दूसरों को क्या जानेगा?

१. आत्मरक्षण कुदरत का सबसे पहला कानून है और आत्मबलिदान सौम्यता का सर्वोच्च नियम।

२. अप्पाहु खलु सययं रक्खियव्वो, सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ, सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ॥

—दशवैकालिक, चूलिका २ गाथा १६

सब इन्द्रियों को वश में करके आत्मा की पापो से सदा रक्षा करनी चाहिए।

३. आपदर्थे धनं रक्षेद्, दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्, दारैरपि धनैरपि॥

—चाणक्यनीति १।६

आपत्काल के लिए धन की रक्षा करो। धन से स्त्री की रक्षा करो तथा स्त्री एवं धन से भी सदा आत्मा की रक्षा करो।

४. अत्तहियं खु दुहेण लब्भई।

—सूत्रकृतांग २।२।३०

आत्महित का अवसर मुश्किल से मिलता है।

५. अत्तत्ताए परिव्वए।

—सूत्रकृतांग ११।३२

आत्मरक्षा के लिए संयमशील होकर विचरे।

६. आत्मरक्षायां कदाचिदपि न प्रमाद्येत ।

—नीतिवाक्यामृत २५।७२

मनुष्य को आत्मरक्षा करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए।

७. त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥

—चाणक्यनीति ३।१०

कुलरक्षा के लिए एक व्यक्ति का, ग्रामरक्षा के लिए एक कुल का और देशरक्षा के लिए एक ग्राम का त्याग कर देना चाहिए। किन्तु आत्मरक्षा के लिए यदि समूची पृथ्वी का भी त्याग करना पड़े, वह भी कर देना चाहिए।

८. यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम् ।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम् ॥

—इष्टोपदेश १९

जो कार्य आत्मोपकारी है, वह शरीर का अपकार करनेवाला है एवं जो कार्य शरीरोपकारी है, वह आत्मा का अपकार करनेवाला है।

९ आत्मरक्षक

१०. (क) अप्पाणरक्खी चरेऽप्पमत्तो ।

—उत्तराध्ययन ४।१०

अपनी आत्मरक्षा करनेवाला अप्रमादी होकर विचरे ।

(ख) तओ आयरक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवइ, तुसिणीए वा सिया, उट्ठित्ता वा आया एगंतमवक्कमेज्जा ।

—स्थानांग ३।३।१७०

तीन प्रकार के आत्मरक्षक कहे हैं—(१) अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग करनेवाले अनार्य पुरुष को धर्मोपदेश देनेवाला, (२) उपदेश देने पर न माने तो चुप रहकर ध्यान करनेवाला, (३) ध्यान न कर सके तो विधियुक्त अन्य एकान्त स्थान में चला जानेवाला ।

१० आत्मसम्मान

१. आत्म-सम्मान दुर्गुणों को वश में रखने की पहली लगाम है।

२. आत्म-सम्मान समस्त गुणों की आधारशिला है।

—सरजॉन हरशल

३. सब बातों से पहले आत्म-सम्मान है।

—पीथागोरस

४. यदि आत्म-सम्मान खो दिया तो सब कुछ खो दिया।

५. सर्वत्र स्वस्यात्मानुमानेन वर्तितुं युक्तम्।

—विक्रमोर्वशीयनाटिका

सभी स्थितियों में मनुष्य को अपनी आत्मा के अनुमान से ही व्यवहार करना चाहिए।

६. वित्तात् पुत्रः प्रियः पुत्रात्, पिण्डः पिण्डात् तथेन्द्रियम्।
इन्द्रियाच्च प्रियः प्राणः, प्राणादात्मा परः प्रिय॥

—पञ्चदशी

धन से पुत्र, पुत्र से शरीर, शरीर से इन्द्रियाँ और इन्द्रियों से प्राण प्यारे हैं। किन्तु आत्मा प्राणों से भी अधिक प्रिय मानी गई है।

७. जिओ और जी चाहे जैसे जिओ, पर अन्तर-आत्मा को शर्मिन्दा मत होने दो।

८. धूल से नीचा और कौन होगा? पर वह भी अपना तिरस्कार नहीं सहती। लात मारते ही सिर पर चढ़ती है।

—रामचरित मानस

११ आत्मविश्वास

१. आत्मविश्वास वीरता की जान है।

—एमर्सन

२. आत्मविश्वास जैसा दूसरा मित्र नहीं, आत्मविश्वास ही भावी उन्नति का मूल पाया है।

३. महान कार्य करने के लिए जरूरी चीज है—आत्मविश्वास।

—जानसन

४. जहां भी आप जाएं, आत्मविश्वास साथ लेते जाएं।

५. जस्सेवमप्पा उ हविज्ज निच्छिओ,
चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।

—दशवैकालिक-चूलिका १।१६

जिसकी आत्मा सुनिश्चित होती है, वह देह को छोड़ देता है पर धर्म-शासन को नहीं छोड़ता।

६. जिसमें आत्मविश्वास नहीं है, उसका अन्य चीजों के प्रति विश्वास कैसे उत्पन्न हो सकता है?

—विवेकानन्द

७. जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोगं अब्भाइक्खइ।

—आचारांग-१।४।२

जो व्यक्ति आत्मा का अपलाप (अस्वीकार) करता है, वह लोक का अपलाप करनेवाला है।

८. आत्मा का अस्तित्व—ये शब्द पुनरुक्त हैं, कारण आत्मा माने अस्तित्व ही है।

—विनोबा

९. **आत्मविकास**—

आत्मविकास का पौधा सांसारिक विषयवासना की भूमि पर नहीं उगता।

—रामतीर्थ

१०. **आत्मशक्ति**—

नो निन्हवेज्ज वीरियं।

—आचारांग ५।३

आत्मशक्ति को कभी मत छिपाओ।

आत्मप्राप्ति

१. सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा,
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

—मुण्डकोपनिषद् ३।१।५

शरीर के अन्दर विराजमान यह ज्योतिर्मय पवित्रआत्मा सत्य, तप सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त की जा सकती है।

२. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।

—कठोपनिषद्-२।२३

यह आत्मा लम्बे-चौड़े भाषणों से, बुद्धि से एवं अधिक सुनने से भी प्राप्त नहीं होती।

३. नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो, न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।

—मुण्डकोपनिषद् ३।२।४

यह आत्मा बलहीन, प्रमादी तथा सात्त्विकलक्षणहीन तप करनेवालों को भी नहीं मिलती, किन्तु पूर्वोक्त सत्यादि द्वारा मिलती है।

४. तच्चिन्तनं तत्कथन-मन्योऽन्यं तद् बिबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च, ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधा॥

—लघुवाक्यवृत्ति १७

आत्मा का ही चिन्तन, उसी का कथन, परस्पर उसी का विबोध देना और उसी में एकलीनता होना ब्रह्माभ्यास माना गया है।

५. परः परस्ततो दुःख-मात्मैवात्मा ततः सुखम् ।
अत एव महात्मान-स्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥

—इष्टोपदेश ४५

पर दूसरा है, उससे दुःख होता है और आत्मा अपनी है, उससे सुख होता है, इसीलिए महात्मा लोग आत्मा की प्राप्ति के लिए उद्यम करते हैं।

६. **आत्मस्थित होने के चार साधन**—(१) विवेक, (२) वैराग्य, (३) शमादिषट्क सम्पत्तियाँ, (४) मुमुक्षुता।

(१) **विवेक**—ब्रह्मसत्य–जगत्‌मिथ्या का निश्चय **विवेक** है।

(२) **वैराग्य**—भोग्यपदार्थों में घृणा-बुद्धि वैराग्य है।

(३) **शमादिकषट्क सम्पत्तियाँ**—(१) विषयों से विरक्त होकर चित्त का स्वलक्ष्य में स्थिर होना **शम** है। (२) कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों को विषयों से खींचकर स्व-स्व गोलक में स्थिर करना **दम** है। (३) चित्तवृत्ति का बाह्यविषयों का आश्रय न लेना **उपरति** है। (४) बिना किसी प्रतिकार के समस्त कष्टों को समभाव से सहन करना **तितिक्षा** है। (५) आप्तवाक्यों के प्रति अटल-विश्वास रखना **श्रद्धा** है। (६) निश्चलचित्त होकर शुद्धब्रह्म में बुद्धि को स्थिर रखना **समाधान** है।

(४) **मुमुक्षता**—आत्मस्वरूप के ज्ञान द्वारा अहंकार आदि अज्ञान-कल्पित बन्धनों को त्यागने की इच्छा **मुमुक्षुता** है।

—विवेकचूड़ामणि, श्लोक १८ से २५ तक के आधार से

१३ आत्मशुद्धि

१. छाती पर गोली झेलने से भी आत्मशुद्धि कठिन है।

—गांधी

२. आत्मशुद्धि की सबसे पहली सीढ़ी यह है कि हम अपनी अशुद्धि को कबूल करें।

—गांधी

३. आत्मानं स्नपयेन्नित्यं, ज्ञाननीरेण चारुणा।

—तत्त्वामृत

ज्ञानरूप पवित्र जल से आत्मा को नहलाओ।
आत्मा को नरम सोना बनाओगे, तब ही उसमें दया-शील-सन्तोष आदि हीरे जड़े जायेंगे।

४. जैसे—पढ़ने-लिखने का, देखने-सुनने का, बोलने-चलने का तथा खाने-पीने का मार्ग गरीबों एवं श्रीमंतों के लिए एक ही होता है। उसी प्रकार आत्म-शुद्धि का मार्ग भी सबके लिए सदृश है।

५. आत्मशुद्धि का मार्ग—अन्धे, बहरे, गूंगे और लंगड़े बनो (पर स्त्री-पर-धन एवं परदोष मत देखो! परनिन्दा-स्वप्रशंसा मत सुनो! कर्कश एवं असत्य मत बोलो तथा दुर्व्यसनों में मत जाओ!) तुम्हारी आत्मा शुद्ध हो जाएगी।

—'उपदेशसुमनमाला' से संकलित

६. सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये।

—धम्मपद-१२।९

शुद्धि और अशुद्धि अपनी आत्मा से ही होती है, दूसरा कोई किसी अन्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

७. क्वचित् कषायैः क्वचन प्रमादैः, कदाग्रहैः क्वापि च मत्सराद्यैः।
आत्मानमात्मन् ! कलुषीकरोषि, विभेषि धिङ् नो नरकादधर्मा॥
—अध्यात्म-कल्पद्रुम

कभी कषायों द्वारा, कभी प्रमादों द्वारा, कभी कदाग्रह एवं मत्सरादि दुर्गुणों द्वारा तू अपनी आत्मा को कलुषित कर रहा है। तुझे धिक्कार है कि तू नरक से नहीं डरता।

१४ आत्मदमन

१. पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमुच्चसि।

—आचारांग ३।३

हे पुरुष ! अपनी आत्मा का ही निग्रह कर ! ऐसा करने से ही तू दुःखों से मुक्त होगा।

२. कसेहि अप्पाणं जरेहि अप्पाणं !

—आचारांग ४।३

आत्मा को कृश करो अर्थात् तन-मन को हल्का करो।
आत्मा को जीर्ण करो अर्थात् भोगवृत्ति को जर्जर करो।

३. अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥
वर मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य॥

—उत्तराध्ययन १।१५-१६

विपरीत मार्ग में जानेवाली आत्मा का ही दमन करो, क्योंकि आत्म-दमन बहुत कठिन है। आत्मा का दमन करनेवाला इसलोक-परलोक में सुखी होता है। १५।

परवश होकर दूसरों से वध-बन्धनों द्वारा दमन किए जाने की अपेक्षा अपनी इच्छा से संयम-तप द्वारा आत्मा का दमन करना ही मेरे लिये श्रेष्ठ है। १६।

४. आत्मानं भावयेन्नित्यं, ज्ञानेन विनयेन च ।

—तत्त्वामृत

आत्मा को ज्ञान और विनय से सदा भावित करते रहना चाहिए ।

५. रागद्वेषौ प्रवृत्तिःस्या-न्निवृत्तिस्तन्निरोधनम् ।
तौ च बाह्यार्थसंबद्धौ, तस्मात् तांश्च परित्यजेत् ॥

—आत्मानुशासन

राग-द्वेष प्रवृत्तिरूप है एवं उनका निरोध करना निवृत्ति है । राग-द्वेष बाह्यवस्तुओं से सम्बन्धित है अतः बाह्यवस्तुओं का परित्याग करना चाहिए ।

६. आत्मा संयमितो येन, तं यमः किं करिष्यति ?

—आपस्तम्बस्मृति

जिसने आत्मा का संयम कर लिया उसका यम क्या करेगा ?

७. अत्तानं दमयंति पंडिता ।

—मज्झिमनिकाय २।३६।४

पंडितजन आत्मा का दमन किया करते हैं ।

८. अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
न मूलओ छिंदइ बंधणं से । —उत्तराध्ययन २०।३६

आत्मा का निग्रह न करनेवाला और रस में गृद्ध व्यक्ति कर्म-बन्धनों के मूल को नहीं छेद सकता ।

९. अत्तानं चे तथा कयिरा यथाञ्ञमनुसासति । —धम्मपद-१२।३

जैसा अनुशासन तुम दूसरों पर करना चाहते हो, वैसा ही अपने ऊपर भी करो ।

१०. अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणसासिउं ?

—सूत्रकृताङ्ग १।२।१७

जो अपने पर अनुशासन नहीं रख सकता, वह दूसरों पर अनुशासन कैसे रख सकता है ?

१५ आत्मविजय

१. अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए॥

—उत्तराध्ययन ६।३५

अपनी आत्मा से ही युद्ध करो। बाह्य युद्ध में क्या पड़ा है? आत्मा से आत्मा को जीतकर सुख की वृद्धि करो।

२. एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ।

—उत्तराध्ययन ६।३४

एक आत्मा पर ही विजय प्राप्त करो! यह सर्वश्रेष्ठ विजय है।

३. जे एगं नामे, से बहुं नामे।

—आचारांग १।३।४

जो एक अपने को नमा लेता है, (जीत लेता) है, वह समग्र संसार को नमा लेता है।

४. सव्वमप्पे जिए जियं।

—उत्तराध्ययन ६।३६

एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

५. एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ता णं, सव्वसत्तू जिणामहं॥

—उत्तराध्ययन २३।३६

एक को जीत लेने से पांच को जीता, पांच को जीत लेने से दस को और दस को जीतकर मैंने सब शत्रुओं को जीत लिया।

६. एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।

—उत्तराध्ययन २३।३८

एक आत्मा दुर्जय शत्रु है, इसे जीतने से चार कषाय (क्रोध-मान-माया लोभ) पर विजय हो जाती है। इन पांचों (आत्मा एवं कषाय) पर विजय होने से पांच इन्द्रियाँ भी जीत ली जाती हैं और आत्मा-कषाय-इन्द्रियाँ-इन दस शत्रुओं को जीत लेने पर, हे महामुने ! मैं सुख-पूर्वक विचर रहा हूँ।

७. जितात्मासर्वार्थैः संयुज्यते।

—चाणक्यसूत्र १०

जिसने आत्मा को जीत लिया है, उसके सब अभीष्ट अर्थसिद्ध हो जाते हैं।

१६ आत्मचिंतन

१. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मनः ।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं, किन्नु सत्पुरुषैरिति ॥

—शार्ङ्गधर

मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिए और सोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओं के समान कितना है और सत्पुरुषों के समान कितना है ?

२. के वा अहं आसी, के वा इओ चुओ हविस्सामि ?

—आचारांग-२।१

मैं कौन था एवं यहां से च्यवकर क्या होऊँगा ?

३. जो झायइ अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ।

—नियमसार १२३

जो अपनी आत्मा का ध्यान करता है; उसे परमसमाधि की प्राप्ति होती है ।

४. जो पुव्वरत्तावररत्तकाले, संपेहए अप्पगमप्पएणं ।
किं मे कडं किं च मे किच्चसेसं, किं सक्कणिज्जं न समायरामि ॥
किं मे परो पासइ किं च अप्पा, किं वाऽहं खलियं न विवज्जयामि ।
इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो, अणागयं नो पडिबंध कुज्जा ॥

—दशवैकालिकचूलिका २।१२-१३

साधु पहली और पिछली रात के समय अपनी आत्मा द्वारा आत्मा को देखे कि मैंने क्या-क्या करने योग्य कार्य किए हैं ? क्या-क्या कार्य करने शेष हैं तथा वे कौन-कौन से कार्य हैं, जो कर सकने पर भी नहीं कर रहा हूँ ? १२।

मुझे दूसरे कैसा पाते हैं और मेरी आत्मा कैसा पाती हैं ? और मैं अपनी किन-किन भूलों को छोड़ रहा हूं—इस प्रकार अपनी आत्मा को अच्छी तरह देखनेवाले को भविष्य में दोष नहीं लगता।१३।

५. निरामयो निराभासो, निर्विकल्पोऽहमानतः।
निर्विकारो निराकरो, निरवद्योऽहमव्ययः॥

—अपरोक्षानुभूति

मैं निरोग हूँ, निराभास हूँ, निर्विकल्प हूँ, नम्र हूं, निर्विकार हूँ, निराकार हूं, पापरहित हूँ और अव्यय-अक्षय-शाश्वत हूँ।

६. एगो मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥

—नियमसार १०२

ज्ञान-दर्शनस्वरूप मेरी आत्मा ही शाश्वत तत्त्व है, इससे भिन्न जितने भी (राग-द्वेष-कर्म-शरीर आदि) भाव हैं, वे सब संयोगजन्य बाह्य-भाव हैं, अतः वे मेरे नहीं हैं।

७. उवओग एव अहमिक्को।

—समयसार-३७

मैं (आत्मा) एकमात्र उपयोगमय—ज्ञानमय हूँ।

८. अहं अव्वए वि, अहं अवट्ठिए वि।

—ज्ञाता धर्मकथा-१।५

मैं (आत्मा) अव्यय-अविनाशी हूं, अवस्थित-एकरस हूँ।

९. आदा हु सरणं ।

—मोक्षपाहुड-१०५

आत्मा ही मेरा शरण है ।

१०. चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

—वेदान्तदर्शन

अनन्तज्ञान, अन तआनन्द एवं अनन्तकल्याणरूप शिव मैं ही हूँ ।

११. यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं, सोहमस्मीति चिन्तयेत् ।

—हरितस्मृति

जो सभी प्राणियों द्वारा जानने योग्य है, वह परब्रह्मरूप ईश्वर मैं ही हूँ ।

१२. यः परमात्मा स एवाहं, योहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्यो, नास्यः कंचिदिति स्थितिः ॥

जो परमात्मा है, वह मैं ही हूं, जो मैं हूँ, वही परमात्मा है । वस्तुतः मैं ही मेरा उपास्य—उपासना करने योग्य हूँ, दूसरा कोई नहीं ।

१३. अहमेवचित्सरूप-श्चिद्रूपस्याश्रयो मम स एव ।
नान्यत् किमपि जडत्वात्, प्रीतिः सदृशेषु कल्याणी ॥

—निश्चयपञ्चाशत्

मैं ही चित्—ज्ञानस्वरूप हूँ, चिद्रूप आत्मा का जो आधार चेतनत्व है, वही मेरा है । अन्य वस्तुएँ जड़ होने से कोई भी मेरी नहीं है । समान रूपवालों की प्रीति ही कल्याणकारिणी होती है ।

१४. एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः ।
बाह्याः संयोगजा भावा, मताः सर्वेऽपि सर्वथा ॥

—इष्टोपदेश २७

मैं एक निर्ममत्व, शुद्ध, ज्ञानी एवं योगीन्द्रों के दृष्टि का विषय हूं, संयोग से उत्पन्न सारे पदार्थ मेरे से सर्वथा भिन्न—बाह्य हैं ।

१५. न मे मृत्युः कुतो भीति-र्न मे व्याधिः कुतो व्यथा ।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले ॥

—इष्टोपदेश २६

मेरी मृत्यु ही नहीं, फिर भय कहाँ से ? मेरे रोग ही नहीं, फिर पीड़ा कहाँ से ? न मैं बालक हूँ, न वृद्ध हूं और न जवान—ये सब अवस्थाएं पुद्गल में होती हैं, मैं तो आत्मा हूं ।

१६. पुद्गलैः पुद्गलास्तृप्तिं, यान्त्यात्मा पुनरात्मना ।
परतृप्तिसमारोपो, ज्ञानिनस्तन्न युज्यते ॥

—अध्यात्मसार

पुद्गलों से पुद्गल तृप्त होते हैं और आत्मा से आत्मा तृप्त होती है, अतः ज्ञानियों को परवस्तु से तृप्त होने का विचार करना योग्य नहीं है ।

१७. तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ?

—यजुर्वेद ३४।६

मेरे मन के संकल्प शुभ एवं कल्याणमय हों ।

१८. दुःखे-सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ !

—परमात्मद्वात्रिंशिका

हे नाथ ! जिसकी समस्त ममत्वबुद्धि नष्ट हो गई है ऐसा मेरा यह मन दुःख-सुख में, शत्रु-मित्रसमूह में, संयोग-वियोग में तथा भवन एवं वन में सदा समभाव में लीन बना रहे ।

१९. हुस्तनाम् हुख्तनाम् ह्वरस्तनाम् ।

—यश्न. हा. ३५।२ पारसी धर्मग्रन्थ

हम पवित्र विचार करें, पवित्र वचन बोलें और पवित्र कर्म करें—अर्थात् हमारे विचार, वचन और कर्म पवित्र हों ।

२०. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः,
भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।

—यजुर्वेद २५।२१

हे यजनीय देवगण ! हम कानों से शुभ ही सुनें और आंखों से शुभ ही देखें ।

२१. जीवेम शरदः शतं बुध्येम शरदः शतं,
रोहेम शरदः शतं, पूषेम शरदः शतं,
भवेम शरदः शतं, भूषेम शरदः शतं,
भूयसी शरदः शतात् ॥

—अथर्ववेद १६।६७।२-८

हम सौ और सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवन यात्रा करते रहें, ज्ञान की वृद्धि करते रहें। उत्कृष्ट उन्नति प्राप्त करते रहें पुष्टि और दृढ़ता प्राप्त करते रहें। आनन्दमय जीवन व्यतीत करते रहें और समृद्धि, ऐश्वर्य तथा सद्गुणों से अपने आपको भूषित करते रहें ।

२२. उदायुषा स्वायुषोदस्थाम् ।

—यजुर्वेद ४।२८

हम उत्कृष्ट और शुभजीवन के लिए उद्योगशील हों ।

२३. यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मसुमना असत् ।

—यजुर्वेद १६।४

हमारी जीवनचर्या ऐसी हो—जिसमें यह सारा जगत् हमें व्याधियों से बचाकर प्रसन्नता देनेवाला बने ।

२४. मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।

—ऋग्वेद ८।४८।१४

हम पर न तो निद्रा हावी हो, और न व्यर्थ की बकवास करनेवाला निन्दक !

आत्मा की महिमा

१. योऽयमात्मा इदममृतम्, इदं ब्रह्म, इदं सर्वम् ।

—बृहदारण्यक उपनिषद्-२।५।१९

आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही यह सब कुछ है ।

२. स्वस्मिन् सदभिलाषित्वा-दभीष्टज्ञापकत्वतः ।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वा-दात्मैव गुरुरात्मनः ॥ **—इष्टोपदेश ३४**

अपने में सद्भावना करानेवाला होने से, इच्छित वस्तु का ज्ञान करानेवाला होने से और स्वयं को हित में लगानेवाला होने-से आत्मा ही आत्मा का गुरु है ।

३. अयमात्मा स्वयं साक्षात्, गुणरत्नमहार्णवः ।
सर्वज्ञः सर्वदृक् सार्वः, परमेष्ठी निरञ्जनः ॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ २२०

यह आत्मा स्वयं साक्षात् गुणरूपी रत्नों से भरा हुआ समुद्र है । यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वत्र गतिवाला, परमपद में लीन और सर्वप्रकार की कालिमा से रहित (निरञ्जन) है ।

४ स्वादुष्किलायं, मधुमाँ उतायं, तीव्रः किलाऽयं रसवाँ उतायम् ।

—ऋग्वेद ६।४७।१

यह अध्यात्मरस स्वादिष्ट है, मीठा है, तेज है और रसीला है ।

५. सैक्रीन-चीनी से ५०० गुणी मीठी होती है । एक वैज्ञानिक इसका प्रयोग कर रहा था । बीच में भोजन करने बैठा तो सब चीजें मीठी लगीं । (उस समय ३०० गुणी मीठी ही थी) तारकोल आदि पदार्थों में से भी ऐसा मिठास मिल सकता है, तो फिर आत्मा की मधुरता का कहना ही क्या ?

आत्मा के भेद

१. एगे आया ।

—स्थानांग १।१

आत्माएँ यद्यपि अनन्त हैं, फिर भी चैतन्यगुण की समानता से आत्मा एक है—ऐसे कहा गया है ।

२. अट्ठविहा आया पण्णत्ता, तंजहा—
दवियाया, कसायाया, जोगाया, उवओगाया, णाणाया, दंसणाया, चरित्ताया वीरियाया ।

—भगवती १२।१

आत्माएँ आठ कही हैं—
(१) द्रव्यआत्मा (२) कषायआत्मा (३) योगआत्मा (४) उपयोग-आत्मा (५) ज्ञानआत्मा (६) दर्शनआत्मा (७) चारित्रआत्मा (८) वीर्य-आत्मा ।

३. अन्तर-बाहिरजप्पे, जो वट्टइ सो हवइ बाहिरप्पा ।
जप्पेसु जो ण वट्टइ, सो उच्चइ अंतरंगप्पा ॥

—नियमसार १५०

जो अन्तर एवं बाहिर के जल्प (वचनविकल्प) में रहता है, वह बहिरात्मा है और जो किसी भी जल्प में नहीं रहता, वह अन्तरात्मा कहलाता है ।

४. बहिर्भावानतिक्रम्य, यस्यात्मन्यात्मनिश्चयः ।
सोन्तरात्मा मतस्तज्ज्ञ-विभ्रमध्वान्त भास्करैः ॥१॥
आत्मबुद्धिः शरीरादौ, यस्य स्यादात्मविभ्रमः ।
बहिरात्मा स विज्ञेयो, मोहनिद्रास्तचेतनः ॥२॥
चिद्रूपानन्दमयो, विशेषोपाधिवर्जितः शुद्धः ।
अत्यक्षोऽनन्तगुणः, परमात्मा कीर्तितस्तज्ज्ञैः ॥३॥

बाह्यभावों से ऊपर उठकर जिसके अन्तर में आत्मा का निश्चय हो गया है, अज्ञान-अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य के तुल्य ज्ञानी पुरुष उसे **अन्तरात्मा** कहते हैं। १ ।

जो शरीर में आत्मा की बुद्धि रखता है, मोहनिद्रा के कारण जिसकी चेतना विलुप्त हो गई है एवं जो आत्मा में सन्देहशील है, वह व्यक्ति **बहिरात्मा** माना जाता है। २ ।

जो ज्ञानरूप आनन्द से युक्त है, विशेषउपाधि से रहित है, शुद्ध है, इन्द्रियों को जीतनेवाला है तथा अनन्त गुणसम्पन्न है—उसे ज्ञानियों ने **परमात्मा** कहा है। ३ ।

१९

इन्द्रिय

१. प्रतिनियतार्थग्रहणमिन्द्रियम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका २।२४

जो अपने-अपने निश्चित शब्दादि विषयों का ग्रहण करती हैं, उन्हें इन्द्रियाँ कहते हैं ।

२. मनः पुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति ।

—चरकसंहिता, सूत्रस्थान ८।७

मन को आगे करके ही इन्द्रियाँ अर्थ ग्रहण करने में समर्थ होती हैं ।

३. तत्र चक्षुः श्रोत्रं घ्राणं रसनं स्पर्शनमिति पञ्चेन्द्रियाणि ।८।
पञ्चेन्द्रिय– द्रव्याणि · खं वायुर्ज्योतिरापो भूः ।९।
पञ्चेन्द्रियाधिष्ठानानि-अक्षिणी कर्णौ नासिके जिह्वा त्वक्चेति।१०
पञ्चेन्द्रियार्थाः शब्द—स्पर्श रूप—रस-गन्धाः ।११।

—चरकसंहिता, सूत्रस्थान ८।८-९-१०-११

चक्षु आदि पाँच इन्द्रियाँ हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी—ये पाँच इन्द्रियों को उत्पन्न करनेवाले द्रव्य हैं। आँख आदि पाँच इन्द्रियों के अधिष्ठान एवं शब्द आदि इन्द्रियों के विषय हैं।

४. बुद्धीन्द्रियं स्पर्शनादि, पाण्यादि तु क्रियेन्द्रियम् ।

—अभिधानचिन्तामणि ६।२०

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—ये (पाँच) बुद्धीन्द्रियाँ हैं और पायु-गुदा, उपस्थ-मूत्रेन्द्रिय, हाथ, पग, वाणी—ये (पाँच) कर्मेन्द्रियाँ हैं।

५. मुक्तबुद्धीन्द्रियोमुक्तो, बद्ध-कमन्द्रियोऽपि हि ।
बद्धबुद्धीन्द्रियो बद्धो, मुक्तकर्मेन्द्रियोऽपि हि ॥

—योगवाशिष्ठ

बुद्धीन्द्रियों के विषयों में अनासक्त मनुष्य मुक्त ही हैं, फिर वह चाहे कर्मेन्द्रियों से युक्त क्यों न हो ? तथा जो कर्मेन्द्रियों से मुक्त होकर भी यदि बुद्धीन्द्रियों के विषयों में आसक्त है तो वह वास्तव में बँधा हुआ है ।

२० इन्द्रियों की शक्ति

१. इन्द्रियाणि प्रमाथीनि, हरन्त्यपि यतेर्मनः ।

—श्रीमद्भागवत ७।१२।७

अत्यन्त तंग करनेवाली इन्द्रियाँ यति-संन्यासी के मन को भी हर लेती हैं अर्थात् विषयों की ओर ले जाती हैं ।

२. जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हितर्षा-
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कामशक्ति-
र्बह्वः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ।

जैसे—विभिन्न सौतें (सपत्नियाँ) गृहस्वामी को भिन्न-भिन्न दिशाओं में खींच ले जाती हैं, वैसे—जीभ अपने स्वामी शरीर को एक ओर खींचती है तो प्यास अपनी ओर ले जाती है । जननेन्द्रिय उसको एक ओर प्रेरित करती है, उसी प्रकार—स्पर्श, पेट और कान उसे दूसरी ओर प्रेरित करते हैं । घ्राणेन्द्रिय उसको भिन्न दिशाओं में खींचती है तो चपल आँखें और कामशक्ति उसको अन्यत्र ही ले जाती हैं ।

३. शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च,
पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धा ।
कुरङ्ग—मातङ्ग—पतङ्ग—मीन—
भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥

—विवेकचूड़ामणि ७८

शब्दादि एक-एक इन्द्रियों के विषयों से बंधे हुए मृग, हाथी, पतंग, मछली और भ्रमर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। तो फिर इन पाँचों से जकड़ा हुआ मनुष्य कैसे बच सकता है?

४. एक सदन में पाँच का, पृथक-पृथक आदेश।
सम्भव चन्दन! क्यों नहीं, होना क्लेश विशेष॥

—दोहा-द्विशती

५. इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि नश्यति।

—कौटलीय-अर्थशास्त्र

इन्द्रियों के विषयों में आसक्त व्यक्ति चतुरंगवान् होता हुआ भी नष्ट हो जाता है।

२१ इन्द्रिय-दमन

१. दुद्दंता इंदि पंच, संसाराए सरीरिणं।
ते चेव णियमिया संता, णेज्जाणाए भवन्ति हि ॥

—ऋषिभाषित १६।१

दुर्दान्त, इन्द्रियाँ प्राणियों को संसार में भटकानेवाली हैं एवं वे ही संयमित होने पर मोक्ष की हेतु बन जाती हैं।

२. सारथीव नेत्तानि गहेत्वा, इन्द्रियानि रक्खन्ति पण्डिता।

—दीघनिकाय २।७।१

जिस प्रकार सारथि लगाम पकड़कर रथ के घोड़ों को अपने वश में किये रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी-साधक ज्ञान के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं।

३. कद अल्फ हमन् जक्का हा।

—कुरान ९१।९

निश्चय ही उस आदमी का जन्म सफल हुआ, जिसने अपनी इन्द्रियों को पवित्र किया।

४. इन्द्रियों को वश करना सुज्ञपुरुषों का काम है और उनके वश हो जाना मूर्खों का काम है।

—एपिक्टेट्स

५. वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

—गीता २।६०

जिस पुरुष के इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

६. जहाँ बुद्धि और भावना का मेल नहीं खाता, वहाँ इन्द्रियनिग्रह का अभाव है।

—विनोबा

७. विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
स्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललित दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा—
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरे ॥

—भर्तृहरि–शृंगारशतक ६५

केवल वायु, जल और पत्तों को खाकर जीनेवाले विश्वामित्र-पराशर आदि बड़े-बड़े ऋषि भी स्त्रियों के मनोहर मुख-कमल को देखकर मोहित हो गए, तो फिर घी-दूध—दधिमिश्रित चावलों का भोजन करनेवाले मनुष्य अपनी इन्द्रियों का दमन कर ही कैसे सकते हैं ? उनसे यदि इन्द्रिय निग्रह हो जाय, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्र में तैरने लग जाय।

२२ जितेन्द्रिय

१. जीयन्तां दुर्जया देहे, रिपवश्चक्षुरादयः ।
जितेषु ननु लोकोऽयं, तेषु कृत्स्नस्त्वया जितः ॥

—किरातार्जुनीय ११।३२

अपने शरीर में रहे हुए चक्षु आदि इन्द्रियाँ दुर्जय शत्रु हैं। इन्हें सर्व-प्रथम जीतना चाहिए। इन्हें जीत लेने पर समझो कि तुमने सारा संसार जीत लिया।

२. सुच्चिय सूरो सो चेव पंडिओ, तं पसंसिमो निच्चं ।
इन्दियचोरेहिं सया, न लुट्टियो जस्स चरणधनं ॥

—प्रकरणरत्नाकर

वही शूर है, वही पण्डित है, हम सदा उसी की प्रशंसा करते हैं, जिसका चरण-धन इन्द्रियरूप चोरों द्वारा नहीं लूटा गया।

३. श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च, भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा, स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥

—मनुस्मृति २।९८

निन्दा-स्तुति सुनकर, सुखद-दुखद वस्त्रादि को छूकर, सुरूप-कुरूप को देखकर, सरस-नीरस वस्तु को खाकर एवं सुगन्ध-दुर्गन्ध वस्तु को सूंघकर जिसे हर्ष-विषाद नहीं होता, उसे जितेन्द्रिय समझना चाहिए।

२३ कान और बधिरता

१. कान गुणीजनों के गुण एवं गुरुओं का ज्ञान सुनने के लिए हैं, स्वप्रशंसा और परनिन्दा सुनने के लिए नहीं ।

—धनमुनि

२. बोला भी बोला, सुणता भी बोला, जो न सुण्यो गुरुज्ञान !

—मारवाड़ी भजनमाला

३. कानां में ठेठी घाल राखी है ।

—राजस्थानी कहावत

४. दो भले कान सौ जबानों को सुखाकर खुश्क कर देते हैं ।

—फ्रैंकलिन

५. भारत में १ करोड़ ४५ लाख ८० हजार स्कूली बच्चे बहरे हैं ।
(डा. वाई. पी. कपूर) **—नवभारत टाइम्स, २ फरवरी १९६९**

६. बोलो पूछे बोली ने कांई रांधां होली नें ।

—राजस्थानी कहावत

७. पंडितजी ! पाए लागुं–तो कहे कपासिया है ।
पंडितजी मजे में हो, तो कहे भड़ीता करने खासूं ।

(बैंगन हाथ में थे)

८. **बहरे के प्रश्नोत्तर—**

बहरा आदमी सुनता तो है नहीं अतः अपने प्रश्नों का उत्तर घड़कर ही किसी से बात करता है ।

एक बहरा अपने बीमार मित्र से मिलने गया किन्तु वह मर चुका था। बहरे ने उपस्थित लोगों से पूछा कि भाईजी किस तरह हैं? लोगों ने कहा—वे तो मर चुके। बहरे ने सोचा, कुछ ठीक बतला रहे हैं, अतः तपाक से कह दिया, बहुत खुशी की बात है, भगवान ने अच्छा किया। लोग हँसने लगे, लेकिन बहरा नहीं समझा और पूछने लगा—किसका इलाज चल रहा है? उपस्थित मजाकिये ने कहा—यमराजजी का। बहरा अमुक डाक्टर का नाम समझकर बोल पड़ा—ये डाक्टर बहुत अच्छे हैं, इनके हाथ में यश भी है। तबीयत नरम-गरम हो तो आप भी इन्हीं की दवा लिया करें। (हँसी बढ़ती जा रही थी)

सहजभाव से बहरे ने पुनः प्रश्न किया—भाईजी को पथ्य क्या दिया जाता है? उत्तर मिला—कंकर-पत्थर। इसने दलिया-खिचड़ी आदि समझकर कहा—पथ्य बिल्कुल ठीक है। आप लोग भी मौके-मौके इसी का प्रयोग किया करें। अस्तु! भाईजी सोते कहाँ हैं? उत्तर दिया गया—श्मशान में। बहरे ने कमरा आदि समझकर कह डाला—स्थान सुरक्षित है। बाल-बच्चों को भी यहीं सुला दिया करें। उपस्थित लोगों के हँसी के मारे पेट दुखने लगे। आखिर ज्यों-त्यों समझाकर बहरे को घर भेजा।

२४ आंख

१. आँखें सारे शरीर का दीपक है।

—गांधी

२. आँख कैमरा है, इससे अच्छी फोटो खींचो।

३. आँख-कान में चार आंगल् रो फरक।

● आँख्यां देखी परसराम, कदे न झूठी होय।

—राजस्थानी कहावतें

४. जिह्वा की अपेक्षा नेत्रों को तीव्र रखो।

—सर्वेन्टिस

५. मन का भाव बदलते ही आँख बदलती है, आँख देखले !

६. यथा नेत्रं तथा शीलं, यथा नाशा तथार्जवम्।
आँखों के रंग-ढंग के अनुसार ही मनुष्य का स्वभाव होता है एवं नाक की सरलता-वक्रता के अनुसार मनुष्य का हृदय सरल-वक्र होता है।

७. तेजस्वी और अपराधी आंख नहीं मिलाते। पहला अपने प्रभाव को बढ़ाना चाहता है और दूसरा अपनी कमजोरी को छिपाना।

८. गावः पश्यन्ति गन्धेन, वेदैः पश्यन्ति वै द्विजाः।
चारैः पश्यन्ति राजान-श्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥

—पंचतन्त्र ३।६५

गाय गन्ध से, ब्राह्मण वेदों से, राजा गुप्तचरों से और अन्य लोग आंखों से देखा करते हैं।

१०. जिसकी आँख नहीं उसकी साख नहीं।

● आँख का काम भौंह से नहीं होता।

—हिन्दी कहावतें

११. न पुंसां वामलोचनम्।

—संस्कृत पद्य

पुरुषों का वामनेत्र फरकना अच्छा नहीं। जबकि स्त्रियों का अच्छा है।

१२. एक आँख में किसी खोलै र किसी मींचे

—राजस्थानी कहावत

१३. लक्ष्मण का चक्षुःसंयम—

नाहं जानामि केयूरे, नैव जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

—वाल्मीकिरामायण ६।२२

मैं सीता के केयूर (भुजबंद) को नहीं जानता, कुंडल को नहीं जानता, केवल नूपुर को पहचानता हूं, क्योंकि प्रतिदिन उनके चरणों की ही वन्दना किया करता हूँ। (इस कथन से पता चलता है कि लक्ष्मण का चक्षुः-संयम अद्भुत था)।

२५ अन्धा

१. को वा महान्धो ? मदनातुरो यः ।

—शंकरप्रश्नोत्तरी ६

प्रश्न—बड़ा अन्धा कौन ?
उत्तर—कामातुर व्यक्ति ।

२. रत्तिधा दीहंधा, जच्चंधा माण-माय-कोहंधा ।
कामंधा लोहंधा, इमे कमेण विसेसंधा ॥

१. रात्र्यान्ध, २. दिवसान्ध, ३. जन्मान्ध, ४. मानान्ध, ५. मायान्ध, ६. क्रोधान्ध, ७. कामान्ध, ८. लोभान्ध—ये क्रमशः विशेष अन्धे माने गए हैं ।

३. न पश्यति जन्मान्धः, कामान्धो नैव पश्यति ।
न पश्यन्ति मदोन्मत्ता, अर्थी दोषान् न पश्यति ॥

—चाणक्यनीति ६।८

जन्म का अन्धा नहीं देखता, कामान्ध नहीं देखता, मदोन्मत्त नहीं देखते तथा याचक दोषों को नहीं देखता ।

४. आंधा भी आंधा सुभांखा भी आंधा, जो प्रभु-दर्शन नांय ।

—मारवाड़ी भजनमाला

५. आंधो बांटै सीरणी, घर-घर रां ने देय ।

● आंधी पीसै कुत्ता खाय, पापी रो धन परले जाय ।

● आंधो नूंतै दो जिमावै ।

- आंधां में काणो राव।
- आंधे री माख्यां राम उड़ावे।
- आंधे नें कांई जोईजे ? दो आख्यां।

—राजस्थानी कहावतें

६. अंधे के आगे रोना, अपनी आंखें खोना।

- अन्धा क्या जाने बसन्त की बहार ?

—हिन्दी कहावतें

२६ जिह्वा

१. जिह्वायत्तौ वृद्धि-विनाशौ।

—चाणक्यसूत्र ४४०

मनुष्य की उन्नति-अवनति जिह्वा के अधीन है।

२. जीभ के वश में जीवन भी है और मृत्यु भी।

—पुरानी बाइबिल, नविश्ते, नीतिवचन ८।२१

३. जबान सीरी, मुल्क गिरी। जबान टेढ़ी, मुल्क बांका।

—हिन्दी कहावत

४. उपजावै अनुराग, कोयल मन हर्षित करै।
कडुवो लागै काग, रसना रा गुण 'राजिया'!

—सोरठासंग्रह

५. यदि रसना रसहीन है, वृथा सकल बकवाद।
दाँत नहीं फिर मुंह में, क्या खाने का स्वाद॥

—दोहा-संदोह

६. कागा किसका धन हरे, कोयल किसको देत।
एक जीभ के कारणै, जग अपनो कर लेत॥

७ रे जिह्वे! कुरु मर्यादां, वचने भोजने तथा।
वचने प्राणसंदेहो, भोजने स्यादजीर्णता॥

हे जीभ! बोलने एवं खाने की मर्यादा कर। अमर्यादित बोलने से प्राणों में संदेह होने लगता है और अमर्यादित खाने से अजीर्ण हो जाता है।

८. जबान को इतना तेज मत चलने दो कि वह मन से आगे निकल जाय।

९. नीकली होठे, चढ़ी कोठे।

—गुजराती कहावत

१०. यह जवाँ नहीं, लोहे की शमसीर है,
जो कह दिया, पत्थर की लकीर है।

● छुरी कातुरी का, तलवार का घाव लगा सो भरा।
लगा है जख्म जवां का, वो रहता है हमेशा हरा॥

—उर्दू शेर

११. तीन इंच लम्बी जबान छः फिट ऊँचे आदमी को मार सकती है।

—जापानी कहावत

१२. लम्बी जबान छोटी जिन्दगी।

—अरबी कहावत

१३. जीभ नें बरजजे, नीकर दांत पड़ावशे।

● जीभ करे छे आल-पंपाल, ने खाँसड़ा खाय सिर-कपाल।

● जीभ सौ मण घी खाय पण चीकणी न थाय।
चमक हजारों वर्ष पाणी माँ रहे पण आग जाय ज नहीं।

—गुजराती कहावतें

१४. **रसना में तीन इन्द्रियाँ**—अन्य इन्द्रियों के गोलकों में एक-एक इन्द्रिय ही होती है, पर जिह्वा में तीन इन्द्रियाँ (इन्द्रियों की शक्तियाँ) हैं। इसलिए अन्य सब इन्द्रियों की अपेक्षा-जिह्वेन्द्रिय अतिप्रबल है। यह रसनेन्द्रिय है, स्पर्शनेन्द्रिय है और वागीन्द्रिय भी है। जिह्वेन्द्रिय से रसास्वादन कर सकते हैं, शीत-उष्ण-मृदु-कठिन स्पर्श को जान सकते हैं और बोल भी सकते हैं। अतः एक रसनेन्द्रिय को जीतने से अन्य सब विषय और इन्द्रियाँ जीती जाती हैं। श्रीमद्भागवत ११।८।२१ में कहा भी है—

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्, विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥

अन्य इन्द्रियों को जीत लेने पर भी मनुष्य जब तक जिह्वा को नहीं जीत लेता, तब तक जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। जिसने रस-स्वाद को जीत लिया, उसने सबको जीत लिया।

१५. संन्यासी को एक भक्त सदा चाय पिलाया करता था। एक दिन चीनी के बदले भूल से नमक डाल दिया। संन्यासी ने चुपचाप चाय पी ली। पता लगने पर भक्त दौड़ता हुआ आया और पूछने लगा—बाबाजी ! आपने खारी चाय कैसे पी ली ? बाबाजी ने कहा—भाई ! सौदा लेने वाला पेट तो खारा-मीठा करता नहीं, ये तो बीच में दलाल (जीभ) के तूफान हैं।

१६. गूंगा भी गंगा, बोलता भी गूंगा, जो न कर्‌यो प्रभुगान।

—मारवाड़ी भजनमाला

१. अन्तःकरण क्या चीज है ?

परिपक्वबुद्धि के रास्ते अन्तरपट पर पड़नेवाली प्रतिध्वनि ।

—**गाँधी**

२. सर्वार्थग्रहणं-आलोचात्मकं मनः ।

—**जैनसिद्धान्तदीपिका २।३०**

जिसके द्वारा शब्दादि सभी विषयों का ग्रहण हो और जो आलोचना करने में समर्थ हो, उसे **मन** कहते हैं ।

३. मन के विषय—

(क) चिन्त्यं विचार्यमूह्यं च, ध्येयं संकल्प्यमेव च ।
यत्किंचिन्मनसो ज्ञेयं, तत्सर्वं ह्यर्थसंज्ञकम् ।

—**चरकसंहिता, शरीरस्थान १।२०**

यह करने योग्य है या नहीं-ऐसा चिन्तन करना, इस कार्य से लाभ है या अलाभ है-यह तर्क द्वारा विचारना, यह कार्य ऐसे होना चाहिए-यों संभावना करना, ध्यान करना, यह दोषयुक्त है और यह दोषमुक्त-यों निश्चय करना, सुख-दुख आदि का ज्ञान करना—ये सभी मन के विषय हैं ।

(ख) श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च, रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं, विषयानुपसेवते ॥

—**गीता १५।९**

श्रोत्रादि-इन्द्रियों का सहारा लेकर ही यह मन विषयों का सेवन करता है।

४. मन के गुण—

(क) धैर्योपपत्तिर्व्यक्तिश्च, विसर्गः कल्पना क्षमा।
सद्सच्चाशुता चैव मनसो नव वै गुणाः॥

—महाभारत, शान्तिपर्व २५५।६

१ धैर्य, २ तर्क-वितर्क में कुशलता, ३ स्मरण, ४ भ्रांति, ५ कल्पना, ६ क्षमा, ७ शुभ एवं ८ अशुभ संकल्प ९ चंचलता–ये मन के नौ गुण हैं।

(ख) अणुत्वमथ चैकत्वं, द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ।

—चरकसंहिता-शरीरस्थान १।१५

अणु होना और एक होना—ये दोनों मन के गुण हैं।

५. मन की पहचान—

(क) आकारैरिङ्गितैर्गत्या, चेष्टया भाषणेन च।
नेत्र-वक्त्रविकारेण, लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥

आकार-दिगवलोकनादि। इंगित-भ्रू-शिरःकंपनादि, गति, चेष्टा, भाषण, नेत्रविकार एवं मुखविकार से अन्तर्गत मन को जाना जाता है।

(ख) भय-चिन्ता-आलस-अमन, सुख-दुख-हेत-अहेत।
मन-महीप के आचरन, दृग-दिवान कहि देत॥

६. मन का वेग—

विज्ञान के अनुसार प्रकाश का वेग एक सैकिण्ड में १ लाख ८६ हजार मील है। विद्युत का वेग २ लाख ८८ हजार मील है। जबकि विचारों का वेग २२ लाख ६५ हजार १२० मील है।

—सामायिकसूत्र, पृष्ठ ५५

७. **मन की ताकत**—विश्व में दो बड़ी ताकतें हैं। एक मन की और दूसरी तलवार की। दोनों में मन की ताकत बड़ी है। इसके द्वारा जो कुछ चाहो, कर सकते हो। देखो! **मुसोलिनी** एक गरीब लोहार का लड़का था, जिसने इटली की बागडोर हाथ में ली। **हिटलर** एक वीर सिपाही था, जो जर्मनी का भाग्यविधाता हो गया। अमेरिका के धनकुबेर **राक-फेलर** सड़कों पर मामूली चीजें बेचते थे, जो संसार में सबसे बड़े धनी बने। मैं सही कहता हूं कि तुम राजनैतिकसंसार में नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी, महात्मा गाँधी एवं पंडित जवाहरलाल नेहरू बन सकते हो। आर्थिक-विश्व में हैनरीफोर्ड, राकफेलर और निजाम हैदरा-बाद बन सकते हो। साहित्यिक-दुनिया में शेक्सपियर, वर्नाडशॉ, कालि-दास एवं टैगोर बन सकते हो। साधकजीवन में महावीर, गौतम, जम्बूकुमार और स्थूलिभद्र बन सकते हो। एक क्षण में उन्नति-अवनति, पतन-उत्थान एवं सुख-दुःख मन के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

—**संकलित**

२८ मन का स्वभाव

१. विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।

—किरातार्जुनीय

चित्त की वृत्तियाँ विचित्र रूपवाली होती हैं ।

२. क्षणमानन्दितामेति, क्षणमेति विषादिताम् ।
क्षणं सौम्यत्वमायाति, सर्वस्मिन् नटवन्मनः ।

—योगवाशिष्ठ १।२८।३८

मन की स्थिति नट के समान है—यह क्षणभर में आनन्दी, क्षणभर में विषादी एवं क्षणभर में सौम्य—ऐसे रूप बदलता ही रहता है ।

३. चित्त नदी उभयतो वाहिनी, वहति पुण्याय वहति पापाय च ।

—योगदर्शनभाष्य

चित्त नदी दोनों तरफ बहनेवाली है—पुण्य की तरफ और पाप की तरफ ।

४. मनो मधुकरो मेघो, मानिनी मदनो मरुत् ।
मर्कटो मा मदो मत्स्यो, मकारा दश चञ्चलाः ।

—सुभाषितरत्नभांडागार, पृष्ठ ६३

मकार आदिवाली—ये दस चीजें चंचल स्वभाववाली हैं—(१) मन (२) मधुकर-भौंरा (३) मेघ (४) मानिनी-स्त्री (५) मदन-कामदेव (६) मरुत्-हवा (७) मर्कट-बानर (८) मा-लक्ष्मी (९) मद-अभिमान (१०) मत्स्य-मछली ।

५. अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि, बलात् प्रह्लादते मनः ।

—किरातार्जुनीय

बन्धु स्वजन को न पहचानने पर भी यह मन आह्लादित हो जाता है ।

२६ मन के आश्रित बन्ध-मोक्षादि

१. बन्धाय विषयासक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।
मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्ध-मोक्षयोः ॥

—चाणक्यनीति १३।१२ तथा बृहन्नारदीय पुराण १।४७।४

यह मन ही मनुष्य को बांधने—छोड़नेवाला है । विषयासक्त होने पर बांधता है एवं निर्विषयदशा में मुक्त बनाता है ।

२. न देहो न च जीवात्मा, नेन्द्रियाणि परंतप !
मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्ध-मोक्षयोः ।

—देवीभागवत १।१५

मनुष्यों को बांधने—छोड़ने वाला न शरीर है, न जीवात्मा है और न इन्द्रियां हैं, मुख्यतया मन ही बन्ध—मोक्ष का कारण है ।

३. नायं जनो मे सुख-दुःख हेतु, न देवतात्मा-ग्रह-कर्म-कालाः ।
मनः परं कारणमामनन्ति, संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत् ।

—श्रीमद्भागवत ११।२३।४३

मेरे सुख-दुःख के कारण न तो ये मनुष्य हैं और न देवता, न शरीर है और न ग्रह-कर्म-काल आदि । मन ही सुख-दुःख का मुख्य कारण माना गया है, क्योंकि यही सारे संसार-चक्र को चला रहा है ।

४. निर्मलमन जन सो मोहि पावा,
मोहि कपट छल-छिद्र न भावा ।

—रामचरितमानस

५. मनस्तु सुख-दुःखानां, महतां कारणं द्विज !
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्, सर्वं भवति निर्मलम् ।
भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु, स्नात्वा-स्नात्वा पुनः-पुनः ;
मनो न निर्मलं यावत्, तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥

—**देवीभागवत १।१५**

हे ब्राह्मण ! मन महान् सुख-दुःखों का कारण है। इसके निर्मल होने पर सब कुछ निर्मल हो जाता है। पुनः-पुनः नहा-नहा कर सभी तीर्थों में भ्रमण करने पर भी जब तक मन निर्मल नहीं है, तब तक समस्त क्रियाएँ निरर्थक हैं।

६. स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संभवन्ति, नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।

स्वस्थ और निर्विकारचित्त में बुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। चित्त के विकारग्रस्त होने पर धातुएँ नष्ट होने लग जाती हैं।

७. सुस्थे हृदि सुधासिक्तं, दुःस्थे विषमयंजगत् ।

—**नलविलास**

हृदय शान्त हो तो संसार अमृत से सींचा हुआ प्रतीत होता है और यदि वह अशान्त हो तो संसार जहर से भरा हुआ लगता है।

३० मन की मुख्यता

१. मनोयोगो बलीयाँश्च, भाषितो भगवन्मते।
जैनदर्शन में मनोयोग बलवान माना गया है।

२. वाग् वै मनसो ह्रसीयसी। अपरिमिततरमिव मनः परिमिततरैव हि वाक्।

—शतपथब्राह्मण १।४।७।७

मन से वाणी कहीं छोटी है, दोनों में मन कहीं अपरिमित और वाणी अधिक परिमित है।

३. मनसा वाग् धृता। मनो वा इदं पुरस्ताद् वाचः।

—शतपथब्राह्मण ३।२।४।११

वाणी को मन पकड़े रहता है। वाणी से मन पहले आता है।

४. वस्तु रम्यमरम्यं वा मनः संकल्पतः।

—नलविलास

वस्तु अच्छी-बुरी वास्तव में मन की मान्यता के अनुसार ही होती है।

५. सर्वः स्वसंकल्पवशाल्लघुर्भवति वा गुरुः।

—योगवाशिष्ठ ३।७०।३०

सब कोई अपने मन के संकल्प से ही छोटे-बड़े बनते हैं।

६. सिद्धि वा यदि वासिद्धिं, चित्तोत्साहो निवेदयेत्।
कर्म की सिद्धि होगी या असिद्धि—यह मन का उत्साह बता देता है।

७. मनः कृतं कृतं लोके, न शरीर-कृतं कृतम् ।

—लघुयोगवशिष्ठसार

मन से किया हुआ काम ही वास्तव में किया हुआ है, शरीर से किया हुआ नहीं।

८. मनसैव कृतं पापं, न वाण्या न च कर्मणा ।
येनैवालिङ्गिता कान्ता, तेनैवालिङ्गिता सुता ।।

मन के भाव से ही पाप माना जाता है, वचन और कर्म से नहीं। पत्नी और पुत्री के आलिंगन में भाव की ही भिन्नता है।

९. मन के जीते जीत है, मन के हारे हार ।

—हिन्दी पद्य

१०. मन अपनी निज रुचि से अपने ही में स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बना सकता है।

—मिल्टन

११. प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने मन ही मन सातवीं नरक एवं छब्बीसवें स्वर्ग में जाने की तैयारी करली। तन्दुलमत्स्य मात्र अन्तर्मुहूर्त की आयु में इस मन के ही कारण सातवीं नरक में जाता है जबकि मन के अभाव में विशालकाय असंज्ञी-मत्स्य प्रथम नरक से आगे नहीं जाते।

—धनमुनि

१२. **शरीर की क्रियाएँ भी मुख्यतया मन के पीछे**—देखिए मन के कांपने से वाणी-हाथ-पैर आदि सारे कांपने लग जाते हैं। मन संदिग्ध होने पर वाणी अस्पष्ट, आँखें स्थिर और अंग-प्रत्यंग की क्रियाएँ ढीली हो जाती हैं, रोयें खड़े हो जाते हैं। मन के चौंकने से कान खड़े हो जाते हैं, जब मन क्रुद्ध होता है तो सांस की गति बढ़ जाती है—चेहरा लाल हो जाता है। पुत्र प्रेम से आनन्दविह्वल मन होने पर माता के स्तनों से दूध टपकने लगता है। मन के भाव दब जाने से अनेक विकार उत्पन्न

हो जाते हैं। कई माताएँ एवं पत्नियाँ पुत्र-पति की मृत्यु के समय मनोदुःख से स्तब्ध हो जाती हैं, तब उन्हें रुलाने की कोशिश की जाती है, अन्यथा उनके पागल हो जाने की या मर जाने की आशंका रहती है।

—आत्मविकास, पृष्ठ २८८

१३. **मन का पानी पर अद्भुत असर**—तीन व्यक्तियों ने पौधों पर जल सींचा। एक के सींचे पौधे कुम्हला गये, दूसरे के सींचे हुए लहलहा गये और तीसरे के सींचे हुए मूल रूप में रहे। वैज्ञानिकों द्वारा तीनों के मन का अध्ययन किया गया, तब पता चला कि पानी सींचते समय पहले के मन में क्रूरता-निर्दयता थी, दूसरे के मन में करुणा एवं मैत्री भावना थी तथा तीसरे के मन में न क्रूरता थी और न करुणा।

—जैनभारती ७ मई १९७२ के आधार से

३१ मन के बिना कुछ नहीं

१. मन बिना मेलो नहीं, बाड़ बिना वेलो नहिं, ने गुरु बिना चेलो नहीं ।

- मन बिना नुं मलवुं नकामुं ने हेत बिना नुं हलवुं नकामुं.
- मन विना नुं मलवुं ते भींतें भटकावुं ।

—गुजराती कहावतें

२. मन मिलियां रा मेला, नंहि तो चलो अकेला ।

- मन होय तो मालवै जाय परो ।
- मन विना रा पावणा, घी घालं के तेल ?
- बकरी मींगण्यां देवै पण रो-रो देवै ।
- रोवतो जावै जिको मरणै री सुणावणी ल्यावै ।
- उठाया कुत्ता कितीक सिकार करै !
- थूक सूं गांठ्योड़ा किता क दिन चालै !

—राजस्थानी कहावतें

१. य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ।

—ऋग्वेद ५।४४।८

अपने मन से ही काम को करनेवाला उसे ठीक तरह से करता है ।

४. सच्चे दिल बिन हो नहीं—सकता अच्छा काम।
एक काम मालिक करे, एक नौकर करे हराम ॥

—दोहा-संदोह

५. खुशी नो सोदो ते हाथी नों होदो।

● पराणे प्रीति थाय नहिं, बांध्या कणबीए गाम वसे नहिं,
ने जबरदस्ती नो सोदो नभे नहिं।

● मारी ने मुसलमान करवो तेमां लाभ नहिं।

● सासू सिखामण दे अने बहू कीड़ियों गणे।

● बात करवा मांडे, त्यारे तारा गणे।

—गुजराती कहावतें

६. मन चंगा तो कठौती में गंगा।

—संत रैदास

७. मन पक्का तो पखाने में मक्का।

—हिन्दी कहावत

८. फेन्सी पासेथ ब्यूटी ?

—अंग्रेजी कहावत

मन मिले उसकी जाति क्या पूछना ?

६. मनरा लाड खावणां तो ओछा क्यूं खावणा ?

—राजस्थानी कहावत

१०. सुनना सबकी और करना अपने मनकी।

—हिन्दी कहावत

३२ मनःशुद्धि

१. चित्तमेतदमलीकरणीयम् ।
इस चित्त को निर्मल बनाना चाहिए ।

२. दिल साफ कसूर माफ ।

—हिन्दी कहावत

३. मनः शुद्ध्यैव शुद्धिः स्याद्, देहिनां नात्र संशयः ।
वृथा तद्व्यतिरेकेण, कायस्यैव कदर्थनम् ॥

—ज्ञानार्णव पृष्ठ २३४

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है । उसके बिना केवल शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है ।

४. तीर्थानामपि तत्तीर्थं, विशुद्धिर्मनसः परा ।

—स्कन्दपुराण-काशीखण्ड-अ. ६

मन की परमविशुद्धि सभी तीर्थों में बड़ा तीर्थ है ।

५. दिल बदश्त आर्बुद कि हज्जे अकबर अस्त ।
अज हजारों काबा, यक दिल बेहतर अस्त ।।

—उर्दू शेर

निर्मल एवं स्थिर जल में सूर्य की तरह शुद्ध मनवाले को परमेश्वर दीखता है और उसके चरणों में हजारों तीर्थ हाजिर रहते हैं ।

६. **चित्तशुद्धि के चार स्मृत्युपस्थान—**

(१) **देहावलोकन**—शरीर के अशुचित्व का विचार ।

(२) **वेदनावलोकन**—साता-असाता का विचार।

(५) **चित्तावलोकन**—चित्त सकाम-समोह-असमाधियुक्त है या इससे विपरीत—इस विषय का विचार।

(४) **मनोवृत्त्यवलोकन**—खाली तालाब आदि में जीव-जन्तुवत् मन में दुर्भाव आ जाते हैं, उनका ध्यान रखना।

—महात्मा बुद्ध

७. मन का निरीक्षण आवश्यक—

(क) आइने में चेहरा देखकर एक नजर मन पर भी डाल।

(ख) तू आइने के बदले दिल में मुंह देख ताकि अन्दर का हाल दीखे।

(ग) एक टोपी के पीछे दो चेहरे मत लिये फिरो।

(घ) अच्छे चेहरे के पीछे भद्दा दिल भी हो सकता है।

—हिन्दी कहावतें

३३ मनःशुद्धि दुष्कर

१. झर गई पूंछ रोमांत झरे, पशुता का झरना बाकी है।
बाहर-बाहर तुम संवर चुके, मन अभी संवरना बाकी है॥

—दिनकर

२. मस्जिद तो बनाली पल भर में, इमाँ की हरारतवालों ने।
यह मन तो पुराना पापी है, वर्षों में नमाजी बन न सका॥

—इकबाल

३. घृष्टे नेत्रे करौ घृष्टौ, घृष्टा जिह्वा रदैः समम्।
घृष्टानि विपदायूंषि, घृष्टं नान्तर्गतं मनः॥

नेत्र घिस गए, हाथ घिस गए, दांतों सहित जीभ घिस गई, और विपत्तियों में आयु भी घिस गई, लेकिन अन्तर्मन अभी तक नहीं घिसा।

४. मंत्रित राई से तुरत, भग जाता है भूत।
कैसे निकले अगर हो, राई में भी भूत॥
वचन-क्रिया के पाप को, मन करता निष्पाप।
जो मन में भी पाप हो, कौन करे इन्साफ।

—दोहा-संदोह

५. दूध में जितना अधिक पानी होगा, रबड़ी या मावा बनाते समय उतना ही अधिक उबालना पड़ेगा। इसी प्रकार मन में जितना अधिक पाप होगा, उतने ही अधिक धर्म-ध्यान की आवश्यकता होगी।

३४ मन:शुद्धि के अभाव में

१. वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च, नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य, सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

—मनुस्मृति २।९७

जिसका मन अपवित्र है, उस मनुष्य के वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, नियम और तप कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

२. किं जिनेन्द्रेण रागाद्यै-र्यदि स्वं कलुषं मनः?

—योगसार

यदि हमारा मन रागादिदोषों से कलुषित है तो जिनेन्द्रभगवान भी क्या कर सकते हैं?

३. मन मैले सब किछु मैला, तनि धोतै मन हच्छा न होई।

—गुरुग्रन्थसाहिब, महल्ला ३

४. जैसे-चिकनी पट्टी पर लिखा नहीं जाता, उसी प्रकार मन को शुद्ध बनाए बिना उस पर उपदेश का असर नहीं होता।

५. अगर मन है मैला न तन को संवार,
पिया है जो अन्धा तो कैसा शृंगार?

६. पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं।

—उत्तराध्ययन ३२।५९

दुष्ट चित्त कर्मों का उपार्जन करता है।

३५ मन को शिक्षा

१. पतितः पशुरपि कूपे, निःसर्तुं चरणचालनं कुरुते।
धिक् त्वां चित्त ! भवाब्धे-रिच्छामपि नो बिभर्षि निःसर्तुम्।

कुँए में गिरा हुआ पशु भी उसमें से निकलने के लिए पग-पछाड़ा करता है, किंतु रे चित्त ! तुझे धिक्कार है कि तू भवसागर से निकलने की इच्छा भी नहीं करता।

२. चित्तागुत्त पहली चेततां, चित्त ! तूं पहली चेत।
इण धन्धा रे ऊपरे, रालै क्यूंनी रेत।।

३. मनः कुत्रोद्योगः सपदि वद मे गम्यपदवीं,
नरे वा नार्यां वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम्।
यतस्ते क्लीबत्वं सकृदपिगतो हास्यपदवीं,
जनस्तोमे मागास्त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम्।।

अरे मन ! तू कहाँ जाने का प्रयत्न कर रहा है ? पुरुषों में या स्त्रियों में—दोनों ही जगह जाकर नपुंसक होने के कारण तू हास्य का पात्र बना है, अब वहाँ जाना तेरे लिए अनुचित है, अतः जनसमूह में न जाकर तुझे ब्रह्म भगवान का अनुसरण करना चाहिए।

३६ मनोनिग्रह

१. मनोरोधः परं ध्यानं, तत्कर्मक्षयसाधनम् ।

—महाभारत

मन का निरोध करना उत्कृष्ट ध्यान है एवं कर्मक्षय का साधन है।

२. चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दंतं सुखावहं ।

—धम्मपद ३५

साधुओ ! चित्त का दमन करो ! दमन किया हुआ चित्त सुख देनेवाला होता है ।

३. हस्तं हस्तेन संपीड्य, दन्तैर्दन्तान् विचूर्ण्य च ।
अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य, जयेदादौ स्वकं मनः ।

—मुक्तिकोपनिषद् २।५।६

आत्मार्थिपुरुष को चाहिए कि वह हाथ से हाथ को पीड़ित करके, दांतों से दाँतों को पीसते हुए और समस्त शरीर से तत्पर होकर सर्व-प्रथम अपने मन को जीत ले।

४. न चञ्चलमनोऽनुभ्रामयेत् ।

—चरकसंहिता २६।२७

चंचल मन को स्वच्छन्दरूप से न भटकाओ ।

५. हे साधो ! मन का मान तियागउ,
काम-क्रोध-संगति दुर्जन की, तातें अह-निशि भागउ ।

—गुरुनानक

६. माथो मूंड्यो मन नैं मूंड, नहिं तो पड़सी नरकरी कूंड ।

—**राजस्थानी कहावत**

७. केसन कहाँ बिगारिया, जो मूंडै सौ बार ।
मन को काहे न मूंडिया, जामें विषय-विकार ॥

● तन को जोगी सब करे, मन को बिरला कोय ।
सहजे सबविधि पाइए, जो मन जोगी होय ॥

—**कबीर**

८. अरे सुधारक ! जगत की, चिन्ता मत कर यार !
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार ॥

९. मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर ।
मन के मते न चालिए, पलक-पलक मन और ॥

१०. मन के मते न मानिये, मन के मते हजार ।
जो यह गुड़ माँगे कबों, दीजे नमक उधार ॥

—**कबीर**

११. हियो हुव जो हाथ, कुसङ्गी केता मिलो ।
चन्दन भुजङ्गां साथ, कालो न लागे 'किसनिया' !

—**सोरठासंग्रह**

१२. जो 'रहीम' मन हाथ है, मनसा कहु कित जाय ।
जल में ज्यों छाया परी, काया भीजत नाँहि ॥

१३. मन अन्तर बोले सब कोई, मन मारे विन भगति न होई ।

—**कबीर**

१४. मन मारे धातु मरिजाई, बिन मूऐ कैसे हरि पाई ।

—**गुरुग्रन्थसाहिब, महल्ला ३**

१५. मन जावै तो जाण दे, दृढ़कर राख शरीर ।
खैंचे बिना कमान के, किस विध निकसे तीर ?

३७ मनोनिग्रह के मार्ग

१. चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ।। ३४ ।।
असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय ! वैराग्येण च गृह्यते ।। ३५ ।।

—गीता अध्याय ६

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! मन चंचल है, हैरान करनेवाला है एवं दृढ़बली है। उसका निग्रह वायुवत् अत्यन्त दुष्कर है। ३४।
कृष्ण बोले-हे अर्जुन ! निःसन्देह—यह मन चंचल एवं दुर्निग्रह है। इसे अभ्यास तथा वैराग्य से पकड़ा जा सकता है। ३५।

२. अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

—पातञ्जलयोगदर्शन १।१२

अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन का निरोध होता है।

३. मन की औषधि अभ्यास है, विश्राम नहीं।

—पोप

४. सेट बौन्ड्स टू यूअर जील बाई डिसक्रीशन।

—अंग्रेजी कहावत

मन के घोड़े के विवेक की लगाम।

५. वही सह सवारों में पाता है नाम,
जो काबू में घोड़े की रखे लगाम।

—उर्दू शेर

६. मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइं कंथगं ॥

—उत्तराध्ययन २३।५८

मन ही साहसिक एवं भयंकर-दुष्ट-घोड़ा है, जो चारों ओर दौड़ रहा है। मैं उस कंथक-घोड़े को धर्मशिक्षा से काबू में कर रहा हूं।

७. प्रचण्डवासनावातै-रूद्धूता नौ मनोमयी।
वैराग्यकर्णधारेण, विना स्थातुं न शक्यते ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३८

प्रचण्डवासनारूप वायु से दोलायमान मनरूप नावा वैराग्य-कर्णधार के बिना नहीं ठहर सकती।

८. मन राखवुं ने भ्रेर चाखवुं बराबर छे।

—गुजराती कहावत

९. **मन को रास्ते लाने की चार सीढ़ियाँ—**

१. सत्य को मंजूर करना।

२. संसार से लगाव न रखना।

३. आचरण को ऊँचा रखना।

४. अपने अपराधों के लिए अल्लाह से क्षमा माँगना।

—सहलतस्तरी

१०. **तुलाधार** वणिक तराजू की दंडी सीधी रखते-रखते मन को सीधा रखना सीख गया। **सेना** नाई लोगों के बाल बनाते-बनाते दिमाग को साफ करना सीख गया।

—महाभारत

१. श्रोत्रं त्वक्-चक्षुषी जिह्वा, नासिका चैव पञ्चमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ ९० ॥
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिन् जिते जितावेतौ, भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९१ ॥

—मनुस्मृति अध्याय २

१. कान, २. चमड़ी, ३. नेत्र, ४. जिह्वा, ५. नासिका, ६. पायु-गुदा ७. उपस्थ-मूत्रेन्द्रिय, ८. हाथ, ९. पैर, १०. वाणी-ये दश इन्द्रियाँ हैं। पहली पांच बुद्धीन्द्रियाँ एवं दूसरी पाँच कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं। ग्यारहवाँ मन है-यह अपने स्वभाव से ही उभयात्मक है अर्थात् दोनों ही इन्द्रियगणों का-प्रवर्त्तक है। इस मन को जीत लेने पर दोनों ही प्रकार के इन्द्रियगण जीत लिए जाते हैं।

२. मणगुत्तयाएणं जीवे एगग्गं जणइ।
एगग्गचित्तेणं जीवे संजमाराहए भवइ ॥

—उत्तराध्ययन २९।५३

मन का गोपन करने से जीव धर्म में एकाग्रता प्राप्त करता है। एकाग्रचित्त जीव मनोगुप्त होकर संयम का आराधक होता है।

३. अध्यातम विद्याधिगमः, साधुसंगम एव च ,
वासनासंपरित्यागः, प्राणस्पन्दनिरोधनम् ।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः, प्राणस्पन्दजये किल ॥

—योगवाशिष्ठ ४।११।२७

अध्यात्मविद्या की जानकारी, साधुसंगति, वासनाओं का परित्याग और प्राणस्पन्द-निरोध अर्थात् मन की चञ्चलता का रोकना—ये सभी क्रियाएँ (युक्तियाँ) मन को जीत लेने पर ही निश्चितरूप से आत्मा को पोषण करनेवाली होती हैं।

४. दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च, श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः, परो हि योगो मनसः समाधिः।

—श्रीमद्भागवत ११।२६।४६

दान, अपने धर्म का पालन, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म, एवं ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का अनुशीलन-इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन का निग्रह हो जाय। क्योंकि मन की समाधि ही सर्वोत्कृष्ट योग है।

५. वशं मनो यस्य समाहितं स्यात्, किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च।
हृतं मनो यस्य च दुर्विकल्पैः, किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च!

—अध्यात्मकल्पद्रुम

जिसका मन वश में है एवं समाधियुक्त है, उसे नियमों एवं यमों से क्या? तथा जिसका मन बुरे विचारों से ग्रस्त है, उसे भी नियमों और यमों से क्या?

६. आत्मायत्तं मनो यस्य स एव सुखमश्नुते।

—रश्मिमाला १३।१३

वही आदमी सुखी होता है, जिसने अपने मन को वश में कर लिया है।

७. मनोविजेता जगतोविजेता।
मन को जीतनेवाला सारे संसार को जीतनेवाला है।

८. मन की गति है अटपटी, चटपट लखै न कोय।
जो मन की खटपट मिटै, तो झटपट दर्शन होय॥

९. ऐ जजबाए दिल! गर मैं चाहूँ,
हर चीज मुकाबिल आ जाए।
मंजिल के लिए दो गाम* चलूं।
सामने मंजिल आ जाए। —उर्दू शेर

नोटः—* कदम

३९ मन का तार

१. दादी-पोती जा रही थी। थकावट के कारण पोती दादी को हैरान करने लगी, इतने में एक ऊँटवाला आगया। बुढ़िया ने उससे कहा कि इसे थोड़ी दूर ऊँट पर चढ़ाले। उसने कहा—मैं तो जवान लड़की को नहीं चढ़ाता। आगे जा कर ऊँटवाले का दिल बिगड़ा। वह कुछ दूर जाकर रास्ते में खड़ा रह गया। इधर बुढ़िया के मन में विचार आया कि यदि लड़की को लेकर वह भाग जाता, तो फिर मैं क्या करती ? यों सोचती हुई बुढ़िया कुछ आगे चली। इतने में ऊंटवाला आ मिला और कहने लगा—बूढ़ी माई ! तेरी पोती को चढ़ा दे ऊँट पर। बुढ़िया ने कहा–जो तुझे कह गया वह मुझे भी कह गया, चला जा चुपचाप।

२. नेमीचन्दजी मोदी की धर्मपत्नी अपने पीहर किशनगढ़ में थी। रात को बारह बजे पुत्र (सज्जनसिंह) का जन्म हुआ। वह बेहोश हो गई। लगभग डेढ़ घण्टे बाद होश आया, तब उसने अपने पति के कथनानुसार दृढ़ संकल्प किया कि पुत्रजन्म की खबर पतिदेव को अभी की अभी मिले।

मोदीजी इन्दौर में थे एवं गहरी नींद में सो रहे थे। उनकी अचानक आंखें खुलीं और आवाज-सी सुनाई दी कि पुत्र का जन्म हो गया। घड़ी देखी तो पौने दो बज रहे थे। दो दिन बाद किसनगढ़ से पत्र आया, उसमें पुत्र-जन्म का समय बारह बजे लिखा था। मोदीजी खुश हुए, किन्तु पौने दो घण्टे का फर्क क्यों रहा ? इस संशय में

निमग्न थे। एक-डेढ़ महीने बाद जब सज्जन की मां पीहर से इन्दौर आई, तब पता लगा कि पोने दो घंटा तक वह बेहोश थी।

३. रूस के मनोवैज्ञानिक ने १०० किलोमीटर दूर रहकर एक मनुष्य को मन से निर्देश दिया कि **सो जाओ** ! बस, निर्दिष्ट व्यक्ति बैठा-बैठा तत्काल लेट गया एवं उसे नींद आ गयी। कुछ समय के बाद निर्देशक ने कहा—**उठ जाओ** ! कहने की ही देरी थी, सोया हुआ व्यक्ति अचानक उठ खड़ा हुआ। निकटवर्ती मनुष्य ने (जो इस प्रयोग की सत्यता को परखने के लिए रखा गया था) पूछा ! तुम सोये क्यों और चौंक कर उठे क्यों ? उत्तर मिला कि मुझे किसी ने कहा—तुम सो जाओ। फिर मुझे आलस्य आने लगा एवं मैं सो गया। सोते-सोते पुनः आवाज आई कि–उठ जाओ जल्दी ! बस, मैं उठ गया।

—श्रुति के आधार पर

४० विलपावर-दृढ़संकल्प

१. **वीर नेपोलियन** शरीर से दुर्बल था, लेकिन विलपावर से सारे यूरोप में तहलका मचा दिया। उसने कहा था—"इम्पोसिबल इज दी वर्ड फाउन्ड ओनली इन दी डिक्सनरी ऑफ फूल्स" (Impossible is the word found only in the dictionary of fools) असम्भव शब्द केवल मूर्खों के शब्दकोष में मिलता है।

२. **पेगम्बर मुहम्मद** अरब के जाहिल आदमियों में (जो उन्हें मारने को तैयार थे) "खुदा एक है" यह उपदेश देते थे। **स्वामी दयानन्द** मस्जिदों में ठहर कर इस्लामी मत का खण्डन करते थे। **भगवान महावीर** हिंसात्मक यज्ञ-यागों के खिलाफ निर्भयतापूर्वक अहिंसाधर्म का मंडन करते थे। इन सभी का मुख्यसहायक विलपावर ही था। और तो क्या? **महात्मा गांधी** ने विलपावर से भारत जैसे महान देश को आजाद बना दिया। एक कवि ने कहा है—व्हेयर देयर इज ए विल, देयर इज ए वे (Where there is a will, there is a way) अर्थात् मनोबल चाहे जहाँ से मार्ग निकाल सकता है।

३. **लाहौर के सर गंगाराम** भूल से इंजीनियर की कुर्सी पर बैठ गये। इंजीनियर अंट-शंट बकने लगा। उन्होंने इंजीनियर बनने का दृढ़ संकल्प कर लिया एवं एकनम्बर इंजिनियर बने।

—**अध्ययन के आधार पर**

४१ मन की उपमाएँ

१. इन्सान का मन एक बाग है, आत्मा माली है। चतुर माली को चाहिए कि वह अपने बाग में अच्छे फल-फूल-लता-वृक्ष आदि लगाकर उसकी शान बढ़ाये।

२. यह मन एक हलवाई की दुकान है और आत्मा हलवाई है। कुशल-हलवाई को चाहिए कि वह अपनी दूकान में असली घी-चीनी-आटा आदि को व्यवहार में लाएँ।

३. यह मन एक बच्चा है और आत्मा इसका बाप है। बाप का फर्ज है कि वह अपने बच्चे का खूब लाड़-प्यार करे एवं उसे खाने-पीने-पहनने के लिए अच्छे-अच्छे पदार्थ दे, किंतु यदि बच्चा बदमाशी करने लगे, तो उसके थप्पड़ लगाने में भी संकोच न करे।

४. यह मन एक साँप है और शरीर इसकी बांबी है। केवल शरीर पर लाठी मारने से सांप नही मरता।

५. यह मन एक दारूखाना है। इसमें अशुद्ध-विचार रूप गंधक-फासफोर्स-तेजाब आदि मत आने दो।

६. यह मन एक इंजिन है इसे रोकना सीखो अन्यथा मरना पड़ेगा। (यूरोप में इंजिन-ड्राइवर के ७-८ वर्ष के बच्चे ने भूल से इंजिन का हाथ दबा दिया। इंजिन दौड़ने लगा। एक्सीडेंट हुआ बच्चा मरा)।

७. यह मन एक पारदर्शक काँच (सूर्य की किरणों से जिसमें आग उत्पन्न होती है) वह है। इसे ज्ञानरूप सूर्य की किरणों के नीचे रखो। क्रोध आदि बिकार फौरन जल जाएँगे।

८. यह मन आत्मा रूपी नाव का लंगर है। जब तक यह संसार की मोह-माया में बंधा रहेगा, आत्मा संसारसमुद्र से पार न हो सकेगी।

९. समुद्र में तूफान आने के समय जलचर-जंतु समुद्र तल में जा बैठते हैं। यह मन समुद्र है, इसमें तूफान आए, तब ज्ञानियों को चाहिए कि वे आत्मध्यान में रमण करें।

१०. यह मन एक चलती हुई चक्की है, इसे यदि शुभविचाररूप धान्य न मिला, तो यह विकारी बनकर स्वयं को पीस डालेगी। एक अंग्रेज ने कहा भी है—

Empty mind is the devil's work shop.

एम्पटी माइण्ड इज दी डेविल्ज वर्कशाप।

खाली मस्तिष्क शैतान की कर्मशाला है।

११. यह मन एक दर्पण है इस पर क्रोध की फूंक लगते ही यह धुंधला हो जाएगा।

१२. **जिनदास का घोड़ा**—चम्पानगरी में जिनदास श्रावक था। राज्य ऋद्धि की वृद्धि करनेवाला राजा का घोड़ा उसके यहाँ रखा हुआ था। जिनदास उस पर चढ़कर साधुओं के दर्शन करने जाया करता था। दर्शन करके तालाब तक घूमने जाता, वहाँ से आकर साधुओं के यहाँ सामायिक करता और फिर अपने घर आ जाता। प्रतिदिन इस प्रकार करने से घोड़ा इतना अभ्यस्त हो गया कि तीनों जगह अपने आप रुक जाता। शत्रु राजा ने उस घोड़े को प्राप्त करने के लिए एक धूर्त को भेजा। उसने जैनश्रावक का ढोंग करके जिनदास को अत्यन्त प्रभावित कर लिया। एक दिन रात के समय इसे घोड़े की रखवाली सौंपकर जिनदास किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर चला गया। पीछे धूर्त के मनचाहे हो गए। वह घोड़े पर सवार होकर भागा। घोड़ा साधुओं के स्थान पर आ ठहरा। फिर दौड़ाया तो तालाब पर जा पहुंचा। फिर चाबुक मारा तो साधुओं के स्थान पर आ गया। फिर एड़ी

लगाई तो घर आ गया। धूर्त ने रात भर घोड़े को दौड़ाया, लेकिन वह तीनों स्थानों के ही चक्कर लगाता रहा। आखिर धूर्त घोड़े को छोड़कर भाग गया।

मन को जिनदास का घोड़ा बना लो ताकि यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीनों से बाहिर न जा पाये।

१३. एक बाबा घोड़े पर चढ़कर कहीं जारहे थे। उनसे एक पथिक ने घोड़े की कीमत पूछी। बाबा ने कहा—"कोई भी संकल्प-विकल्प किए बिना अगले गाम (२।। कोश) तक राम-राम का जाप करलो, घोड़ा मिल जाएगा। पथिक राम-राम करता हुआ चलने लगा। थोड़ी देर बाद घोड़े से सम्बन्धित कई विकल्प उत्पन्न हुए और पूछ बैठा—बाबाजी! लगाम साथ देंगे या नहीं? बाबा बोला–अब घोड़ा भी नहीं दूंगा। (तत्त्व यह है कि मन को न रोक कर हम अव्ययपदरूप घोड़े को गँवा रहे हैं।)

१४. यह मन बिना नकेल का ऊँट है–इस पर काबू पाना कठिन है–एक बुढ़िया मन्दिर जा रही थी, बिना नकेल के कई ऊँट बैठे थे। बुढ़िया ने ऊँट की सवारी कभी नहीं की थी अतः उत्सुकतावश वह एक ऊँट पर चढ़ बैठी एवं वह चल पड़ा। बुढ़िया घबराई, किन्तु नकेल न होने से ऊँट पर काबू न पा सकी एवं मन्दिर पहुंचना कठिन हो गया।

४२ मन के विषय में विविध

१. नपुंसकमिति ज्ञात्वा, प्रियायै प्रेषितं मनः।
तत्तु तत्रैव रमते, हता पाणिनिना वयम् ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ २६०

मन को नपुंसक मानकर हमने उसे प्यारी-स्त्री के पास भेज दिया लेकिन वह तो वहीं रम गया। हाय! पाणिनिऋषि ने (मन को नपुंसक कहकर) हमें मार दिया।

२. उड़त फिरत यह तूलसम, जहां-तहाँ बेकाम।
ऐसे हरुए को धर्यो, कहा जान "मन" नाम॥

३. मन मतंग मानैं नहीं, जब लग खता न खाय।
जैसे विधवा कामिनी, गर्भ रहे पछताय॥

४. मन मोती चख मेर, फूटो घट भाँगो मुकुर।
फूटा एता फेर, मेल्या मिलै न मोतियाँ॥

—सोरठा संग्रह

५. डोल गया मन ही अगर, फिर है मुश्किल काम।
हिले दाँत को अन्त में, गिर के ही विश्राम॥

● थर्मामीटर मापता, बाहिर तन का ताप।
वह थर्मामीटर कहाँ, (जो) मापे मन का ताप॥

—दोहासंदोह

परिशिष्ट

☐ वक्तृत्वकला के बीज

भाग ६ और ७ में

उद्धृत ग्रन्थों व व्यक्तियों की नामावली

ग्रन्थ-सूची :

१. अंगुत्तरनिकाय
२. अत्रिसंहिता
३. अथर्ववेद
४. अध्यात्मकल्पद्रुम
५. अन्ययोगव्यवच्छेद—द्वात्रिंशिका
६. अपरोक्षानुभूति
७. अभिज्ञानशाकुन्तल (शाकुन्तल)
८. अभिधानचिन्तामणि (हेमकोष)
९. अभिधानराजेन्द्रकोष
१०. अमितगति-श्रावकाचार
११. अमूल्यशिक्षा
१२. अष्टकप्रकरण-(वादाष्टक)
१३. अष्टाङ्गहृदय
१४. आइने-अकबरी
१५. आकर्षणशक्ति
१६. आचारांग-चूर्णि
१७. आचारांगसूत्र
१८. आचार्यशिवनारायण की रिपोर्ट
१९. आत्मविकास
२०. आत्मानुशासन
२१. आपस्तम्बस्मृति
२२. आवश्यकनिर्युक्ति
२३. आवश्यकसूत्र
२४. इतिहासतिमिरनाशक
२५. इष्टोपदेश
२६. इस्लामधर्म क्या कहता है?
२७. उज्ज्वलवाणी
२८. उत्तररामचरित
२९. उत्तराध्ययनसूत्र
३०. उद्भटसागर
३१. उर्दू शेर
३२. उपदेशतरंगिणी
३३. उपदेशप्रासाद
३४. उपदेशसुमनमाला
३५. ऋग्वेद
३६. ऋषिभाषित
३७. ऐतरेयब्राह्मण
३८. ओघनिर्युक्ति
३९. औपपातिकसूत्र
४०. कठोपनिषद्

४१. कथासरित्सागर
४२. कल्पतरु
४३. कल्याण—संत अंक
४४. कल्याण—बालकअंक
४५. कहावतें—
(क) अंग्रेजी कहावत
(ख) इटालियन ,,
(ग इरानी ,,
(घ) उर्दू ,,
(ङ) गुजराती ,,
(च) चीनी ,,
(छ) जापानी ,,
(ज) पंजाबी ,,
(झ) पारसी ,,
(ञ) बंगला ,,
(ट) मराठी ,,
(ठ) राजस्थानी ,,
(ड) संस्कृत ,,
(ढ) हिन्दी ,,
४६. कात्यायनस्मृति
४७. किरातार्जुनीय
४८. किशनबावनी
४९. कुमारसंभव
५०. कुरानशरीफ
५१. केनोपनिषद्
५२. कौटलीय-अर्थशास्त्र
५३. खुले आकाश में
५४. गणधरवाद
५५. गरुडपुराण
५६. गीता (श्रीमद्भगवद्गीता)
५७. गुरुग्रन्थसाहिब
५८. घटखर्पर का नीतिसार
५९. चन्दचरित्र (संस्कृत)
६०. चरकसंहिता
६१. चरकसूत्र
६२. चाणक्यनीति
६३. चाणक्यसूत्र
६४. छान्दोग्य-उपनिषद्
६५. जातक
६६. जीवनलक्ष्य
६७. जैन पाण्डव-चरित्र
६८. जैन-भारती
६९. जैनसिद्धान्त-दीपिका
७०. ज्ञानप्रकाश
७१. ज्ञानार्णव
७२. तत्त्वामृत
७३. तत्त्वार्थसूत्र
७४. तन्दुलवैचारिक-प्रकीर्णक
७५. ताओ-उपनिषद्
(ताओतेह किंग)
७६. तात्त्विक त्रिशती
७७. तीन बात
७८. तैत्तिरीय-उपनिषद्
७९. त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र

८०. थेरगाथा
८१. दक्षस्मृति
८२. दशकुमारचरित्र
८३. दशवैकालिकचूलिका
८४. दशवैकालिक-निर्युक्ति
८५. दशवैकालिकसूत्र
८६. दशाश्रुतस्कन्ध
८७. दीघनिकाय
८८. दृष्टान्तशतक
८९. देवीभागवत
९०. देश-विदेश की अनोखी प्रथाएं
९१. दोहा-द्विशती
९२. दोहा-संदोह
९३. धम्मपद
९४. धर्मकल्पद्रुम
९५. धर्म के नाम पर
९६. धर्मयुग (साप्ताहिक)
९७. नन्दीटीका
९८. नलविलास
९९. नवभारत टाइम्स (दैनिक)
१००. नालन्दा-विशालशब्दसागर
१०१. नियमसार
१०२. निशीथ-भाष्य
१०३. निश्चयपञ्चाशत्
१०४. नीतिवाक्यामृत
१०५. नीतिसार
१०६. नैषधीयचरित्र (नैषध)
१०७. न्युयार्क ट्रिब्यून हेराल्ड
१०८. पंचतंत्र
१०९. परमात्म-द्वात्रिंशिका
११०. पराशरस्मृति
१११. पहेलवी टैक्स्ट्स
११२. पातंजलयोगदर्शन
११३. प्रकरणरत्नाकर
११४. प्रज्ञापना
११५. प्रशमरति
११६. प्रसंगरत्नावली
११७. प्रास्ताविकश्लोकशतक
११८. बृहत्कल्पभाष्य
११९. बृहत्कल्प-सूत्र
१२०. बृहदारण्यकोपनिषद्
१२१. बृहन्नारदीय-पुराण
१२२. बृहस्पतिस्मृति
१२३. बाइबिल
१२४. ब्रह्मवैवर्त पुराण
१२५. ब्रह्मानन्दगीता
१२६. भक्तिसूत्र
१२७. भक्तामर-विवृति
१२८. भगवतीसूत्र
१२९. भर्तृहरि-नीतिशतक
१३०. भर्तृहरि-वैराग्यशतक
१३१. भर्तृहरि-श्रृंगारशतक
१३२. भवभूति के गुणरत्न

१३३. भारतज्ञान-कोष
१३४. भारतीय अर्थशास्त्र
१३५. भाषाश्लोकसागर
१३६. भोज-प्रबन्ध
१३७. मज्झिमनिकाय
१३८. मनुस्मृति
१३९. मनोनुशासन
१४०. मरुभारती
१४१. महाभारत
१४२. मारवाड़ी-भजनमाला
१४३. मिदरास निर्गमन रब्बा (यहूदी धर्मग्रन्थ)
१४४. मुक्तिकोपनिषद्
१४५. मुण्डकोपनिषद्
१४६. मुद्राराक्षसनाटक
१४७. मुनिश्रीजंवरीमलजी का संग्रह
१४८. मृच्छकटिक
१४९. मेघदूत
१५०. मोक्षपाहुड
१५१. यजुर्वेद
१५२. याज्ञवल्क्यस्मृति
१५३. यालकत्त शिमेओ P R O (यहूदी धर्मग्रन्थ)
१५४. यू. एन. डेमोग्राफिक इयर बुक-१९६६ तथा १९७०-७१
१५५. यू० री० पी० डी० ज
१५६. योगदर्शनभाष्य
१५७. योगवाशिष्ठ
१५८. योगशास्त्र
१५९. योगशिखोपनिषद्
१६०. योगसार
१६१. रघुवंश
१६२. रश्मिमाला
१६३. राजप्रश्नीयसूत्र
१६४. रामचरितमानस
१६५. लघुयोगवाशिष्ठसार
१६६. लघुवाक्यवृत्ति
१६७. लूका (बाइबिल)
१६८. लोकप्रकाश
१६९. लोकोक्तियाँ—
(क) अरबी लोकोक्ति
(ख) चेक ,,
(ग) लैटिन ,,
(घ) स्पेनिश ,,
१७०. वायु पुराण
१७१. वाल्मीकिरानायण
१७२. विक्रमोर्वशीय-नाटिका
१७३. विचित्रा (त्रैमासिक)
१७४. विज्ञान के नये आविष्कार
१७५. विदुरनीति
१७६. विवेकचूड़ामणि
१७७. विवेकविलास
१७८. विशेषावश्यक
१७९. विश्वज्ञानकोष

१८०. विश्वदर्पण
१८१. वीरअर्जुन
१८२. वेद
१८३. वेदान्तदर्शन
१८४. व्यवहारभाष्य
१८५. व्याख्यान का मसाला
१८६. व्यासस्मृति
१८७. व्रताव्रत की चौपाई
१८८. शंकरप्रश्नोत्तरी
१८९. शतपथ ब्राह्मण
१९०. शान्तसुधारस
१९१. शार्ङ्गधर
१९२. शिशुपालवध
१९३. शुक्रनीति
१९४. सुश्रुत
१९५. श्राद्धविधि
१९६. श्रीमद्भागवत (भागवत)
१९७. श्री विलक्षणअवधूत-स्वरोदयअंग
१९८. श्वेताश्वतरोपनिषद्
१९९. संयुक्तनिकाय
२००. संवेगद्रुमकन्दली
२०१. सभातरंग
२०२. समयसार
२०३. समवायांगसूत्र
२०४. समाधिशतक
२०५. सरलमनोविज्ञान
२०६. सरिता
२०७. सवैयाशतक
२०८. सहलतस्तरी
२०९. साँख्यकारिका
२१०. सामायिकसूत्र
२११. सिन्दूर प्रकरण
२१२. सुभाषितरत्नखण्ड-मंजूषा
२१३. सुभाषितरत्न-भाण्डागार
२१४. सुभाषित संचय
२१५. सूक्तरत्नावलि
२१६. सूत्रकृतांगसूत्र
२१७. सोरठा-संग्रह
२१८. सोवियत भूमि
२१९. स्कन्धपुराण
२१०. स्थानांगसूत्र
२२१. स्याद्वादमंजरी
२२२. स्वरशास्त्र
२२३. हजरत बुखारी और मुस्लिम
२२४. हठयोगप्रदीपिका
२२५. हरितस्मृति
२२६. हर्षचरित
२२७. हितोपदेश
२२८. हिन्दी मिलाप (दैनिक)
२२९. हिन्दुस्तान (दैनिक)
२३०. हिन्दुस्तान (साप्ताहिक)

व्यक्ति नामावली :

१. अकबर
२. अक्खाभक्त
३. अमरमुनि
४. अरविन्दघोष
५. अरस्तू
६. अशोन-द-चाँसेल
७. अष्टावक्र
८. आचार्यतुलसी
९. इकबाल
१०. इब्बेसिना
११. ई. एच. चेपिन
१२. ईसरदास
१३. ईसा
१४. एक युवक सन्यासी
१५. एच. जी. बोन
१६. एच. डब्ल्यू. वीचर
१७. एडविन मार्कहम
१८. एडीसन
१९. एमी एल
२०. एम. जी. लीश्वर
२१. एमर्सन
२२. एपिक्टेट्स
२३. एरियन यूनानी
२४. एलकाट (अलकाट)
२५. कन्फ्यूसियस (कांगफ्यूत्सी)
२६. कबीर
२७. कवि कृपाराम
२८. कवि गंग
२९. कवि घासीराम
३०. कवि देवीदास
३१. कवि दीन
३२. कवि नाथूलाल
३३. कवि बांकीदास
३४. कविराज हरनामदास
३५. कार्डिनल
३६. कार्लमार्क्स
३७. कार्लाइल
३८. कालीदास
३९. कालूगणि
४०. किडलीयर
४१. किसनिया
४२. कुसुमदेव
४३. कोल्टन
४४. कोलम्बस

४५. गांधी
४६. गुरुनानक
४७. गुरुवशिष्ठ
४८. गेटे
४९. गोवर्धनाचार्य
५०. चकवस्त
५१. चाणक्य
५२. चेम्फर्ट
५३. चेस्टर फील्ड
५४. जगन्नाथ
५५. जर्मीटेलर
५६. जवाहरलाल नेहरू
५७. जानलोक
५८. जानसन
५९. जी. गफ
६०. जेम्जगार फील्ड
६१. टसर
६२. टाल्पेज
६३. टी कोगन
६४. टेनीशन
६५. टैगोर
६६. डा. हेराल्ड व्हीलर
६७. डार्विन
६८. डिकेन्स
६९. डिजरायली
७०. डेलकारनेगी
७१. डेविस ग्रेसन
७२. डैनियल
७३. ड्राइडेन
७४. तिरुवल्लुवर
७५. तुलसीदास
७६. थामसपेन
७७. थियोग्निस
७८. थ्यू फ्रास्टस
७९. दांते
८०. दादा धर्माधिकारी
८१. दिनकर
८२. देवेश्वर
८३. धनमुनि
८४. धूमकेतु
८५. ध्रमसीह
८६. नरसी भगत
८७. नलिन
८८. नेपोलियन
८९. पंडित श्रद्धारामजी
९०. पीथागोरस
९१. पेट्रार्च
९२. प्रेमचन्द
९३. पुरुषोत्तमदास टंडन
९४. प्लूटार्च
९५. प्लेटो
९६. पैट्रार्क
९७. पोप
९८. फीनेलन

९९. फ्रैंकलिन
१००. बटलर
१०१. बर्नार्डशा
१०२. बाइल्ड
१०३. बुल्लवर लिटन
१०४. बृहस्पति
१०५. बेकन
१०६. भूदरदास
१०७. मयाराम
१०८. म. नेकर
१०९. महात्मा बुद्ध
११०. महेन्द्रकुमार वशिष्ठ
१११. मान्टेस्क्यू
११२. मिकावर
११३. मिल्टन
११४. रयूफस कोयेट
११५. रस्किन
११६. रहीम
११७. राजिया
११८. रामकृष्ण परमहंस
११९. रामतीर्थ
१२०. रामानन्द दोषी
१२१. रोमसिन
१२२. रोबर्ट क्लाईज
१२३. रोशफूको
१२४. लांग थेले
१२५. ला. फांते
१२६. लाबुयेर
१२७. लायड जार्ज
१२८. लावेल
१२९. लीटन
१३०. लुई ब्लेक
१३१. लुकमान हकीम
१३२. लूथर
१३३. लैंसिग
१३४. वरले
१३५. वर्क
१३६. वर्डसवर्थ
१३७. व्यास
१३८. वाल्टेयर
१३९. विक्टरह्यूगो
१४०. विज्म
१४१. विनोबा भावे
१४२. विलियम पेन
१४३. विवेकानन्द
१४४. विशपकम्बर लैंड
१४५. वीरजी
१४६. वृन्दकवि
१४७. वेदव्यास
१४८. शंकराचार्य
१४९. शार्ङ्गधर
१५०. शुक्राचार्य
१५१. शुभचन्द्राचार्य
१५२. शेक्सपियर

१५३. शेखसादी
१५४. शोपेन हॉवर
१५५. श्रीमद् राजचन्द्र
१५६. संत अगस्त
१५७. संत मेथ्यू
१५८. संत रैदास
१५९. सर अर्नेस्ट बोर्न
१६०. सर जान हरशल
१६१. सर पी सिन्डनी
१६२. सवेन्टिस
१६३. सिडनी स्मिथ
१६४. सिसरो
१६५. सी. सिमन्स
१६६. सुकरात
१६७. सुबन्धू
१६८. सुभाषचन्द्र बोस
१६९. सूरदास
१७०. सेनेका
१७१. सेन्टपाल
१७२. सेमुएल जानसन
१७३. स्टर्नर
१७४. स्वेट मार्टन
१७५. हक्सले
१७६. हजरत मसीद
१७७. हरिभद्रसूरि
१७८. हरिभाऊ उपाध्याय
१७९. हली बटेन
१८०. हार्वर्ट
१८१. हिटलर
१८२. हुट्टन
१८३. हेनरी वार्ड वीचर
१८४. होमर
१८५. व्हिट मैन
१८६. व्हैटले

लेखक की अप्रकाशित रचनाएँ :

□ **संस्कृत**

१. देवगुरुधर्म-द्वात्रिंशिका
२. प्रास्ताविक-श्लोकशतकम्
३. एकाह्निक-श्रीकालुशतकम्
४. श्री कालुगुणाष्टकम्
५. श्री कालुकल्याणमन्दिरम्
६. भाविनी
७. ऐक्यम्
८. श्री भिक्षुशब्दानुशासन-लघुवृत्तितद्धितप्रकरणम्

□ **गुजराती**

९. गुर्जरभजनपुष्पावली
१० गुर्जरव्याख्यानरत्नावली

□ **हिन्दी**

११. वैदिकविचारविमर्शन
१२. संक्षिप्त-वैदिक विचारविमर्शन
१३. अवधान-विधि
१४. संस्कृत बोलने का सरल तरीका
१५. दोहा-संदोह
१६. व्याख्यानमणिमाला
१७. व्याख्यानरत्नमंजूषा
१८. जैन महाभारत—जैन रामायण आदि बीस व्याख्यान
१९. उपदेशसुमनमाला
२०. उपदेशद्विपञ्चाशिका
२१. पच्चीस बोल का सरल विवेचन

● **राजस्थानी**

२२. धनबावनी
२३. सवैयाशतक
२४. औपदेशिक ढालें
२५. प्रास्ताविक ढालें
२६. कथाप्रबन्ध
२७. छः बड़े व्याख्यान
२८. ग्यारह छोटे व्याख्यान
२९. सावधानी रो समुद्र

● **पञ्जाबी**

३० पञ्जाब-पच्चीसी

लेखक की प्रकाशित रचनाएँ :

☐ **हिन्दी**

१. सच्चा-धन
२. प्रश्न-प्रकाश
३. लोक-प्रकाश
४. ज्ञान-प्रकाश
५. श्रावक धर्म-प्रकाश
६. मोक्ष-प्रकाश
७. दर्शन-प्रकाश
८. चारित्र-प्रकाश
९. मनोनिग्रह के दो मार्ग
१०. चौदह नियम
११. भजनों की भेंट
१२. ज्ञान के गीत
१३. एक आदर्श आत्मा
१४. चमकते चांद
१५. जैन-जीवन
१६. सोलह सतियां
१७ से २३ वक्तृत्वकला के बीज (१ से ७ भाग तक)

☐ **गुजराती**

२४. तेरापंथ एटले शुं ?
२५. धर्म एटले शुं
२६. परीक्षक बनो !

☐ **संस्कृत**

२७. गणिगुणगीतिनवकम्

☐ **उर्दू**

२८. जीवन-प्रकाश
२९. सच्चा धन

●

वक्तृत्व कला के बीज

कृति और कृतिकार

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ युग-प्रधान आचार्य श्री तुलसी के नेतृत्त्व में आज प्रगति-शिखर पर पहुँच रहा है। मुनि श्री धनराज जी 'प्रथम' (श्री धनमुनि) इस धर्म-संघ के बहुश्रुत विद्वान, सरसकवि, लेखक कुशल संग्रहकार, मधुर-प्रवक्ता और सुयोग्य शिक्षक संत हैं। आप संघ के सर्व-प्रथम शतावधानी हैं। वि०सं०२००४ माघ कृष्णा १४ रविवार को बम्बई में सर्व-प्रथम आ... शतावधान का प्रयोग कर लोगों को ... कर दिया। संस्कृत ... गुजराती, पंजाबी ... आपने अनेक ग्र... है।

... के बीज

आ... कृति

है...

उप...

भ...

हे...

(Encyc...

...ग्रहकार, मधुर-प्रवक्ता और सु... शिक्षक संत हैं। आप संघ के सर्व- ...शतावधानी हैं। वि०सं०२००४ माघ ... १४ रविवार को बम्बई में सर्व- ... शतावधान का प्रयोग कर ... कर दिया। ... गुजराती, ... आपने

इन...

श्री...

जन्म...

दीक्षा-...

कृतियां-...

आवरण पृष्ठ के मुद्रक : मोहन मुद्रण...लय, आगरा-२